श्री उमास्वामी विरचित

मोक्षशास्त्र

(तत्वार्थसूत्र)

सचित्र और सटिक

-: प्रातिस्थान :-

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

खपाटिया चकला, गांधीचौक

सूरत-३९५००३

(0261) 2427621

Mob. (0261) 3124727

परस्प्परोपग्रहो जीवानाम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ

श्री उमास्वामी विरचित-

मोक्षशास्त्र

(तत्त्वार्थसूत्र)

सचित्र और सटीक

(पं. फूलचन्द्रजी सिद्धान्तशास्त्री कृत ५६ प्रश्नोत्तर सहित)

टीकाकार:-

पं. पन्नालालजी जैन वसन्त

साहित्याचार्य पी.एच.डी. (सागर)

* * *

टाईप सेटिंग एवं ऑफसेट प्रिन्टींग

शैलेश डाह्याभाई कापड़िया

दिगम्बर जैन पुस्तकालय,

जैनविजय लेसर प्रिन्टस्, गांधीचौक, सुरत-३

टे.नं. (0261) 2590621 मो. 09374724727

मूल्य - ६०-००

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय निवेदन-

जैनसमाजको यह बतानेकी आवश्यकता नहीं हैं कि मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) कितना महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। तत्वार्थसूत्र पर बीसों छोटी बड़ी टिकाएँ हुई हैं, और इसीके आधारपर कई ग्रंथ लिखे गये हैं-सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अर्थप्रकाशिका आदि ग्रन्थ इसीकी टीकाएं हैं। इस मोक्षशास्त्रको बालकोंसे लेकर महा पंडित तक पढ़ते हैं। बहुत समयसे ईसकी बालकोपयोगी टीकाकी आवश्यक्ता थी, अतः सर्वप्रथम स्व. पं. पन्नालालजी बाकलीवालने इसकी बालबोधिनी टीका की। इसके बाद भी १-२ टीकाएं और प्रकट हुईं, मगर वे बहुत अपूर्ण थी।

इसलिये हमारे अनुरोधसे साहित्यचार्य पं. पन्नालालजी जैन 'बसन्त' सागरने यह सुबोध सरल एवं सर्वांग-सुन्दर टीका तैयार की। यह टीका इतनी उत्तम सिद्ध हुई है कि अल्प समयमें ही इसकी दश आवृतियाँ समाप्त हो गई। अतः इस अपार मंहगाईमें भी हम इसकी ग्यारहवीं आवृति प्रकट कर रहे हैं।

तीसरी आवृतिसे इसमें श्री पं. फूलचन्दजी जैन सिद्धान्त शास्त्री वाराणसीकृत ५६ प्रश्नोत्तर जोड़ दिये गये थे जो इस आवृति में भी प्रकट किये गये हैं, जिससे छात्रों व स्वाध्याय-प्रेमियोंको तत्त्वार्थसूत्रके गहन विषयोंका ज्ञान हो सकेगा।

चित्र, नक्से, चार्ट, नोट, प्रश्नोत्तर, तत्त्वार्थसूत्र मूल, लक्षणसंग्रह, विषयसूची, तीन परीक्षालयोंके प्रश्नपत्र एवं कम्प्युटर टाईप सेटिंग और ओफसेट प्रिन्टींग आदिसे यह ग्यारहवीं आवृति ऐसी सर्वांग सुन्दर बनाई गई है कि यह ग्रन्थ छात्रोंके समझने में बहुत सुलभ हो जायगा और इन्हें ध्यानसे समझनेवाले छात्र कभी अनुत्तीर्ण नहीं हो सकेंगे।

इस ग्रन्थके विद्वान टीकाकर श्री पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य जैन "बसंत" सागर तथा प्रश्नोत्तर तैयार करनेवाले श्री पं. फूलचन्दजी जैन सिद्धान्तशास्त्री बनारसने इसके निर्माणमें जो अथक परिश्रम किया है उसके लिये हम तथा जैन समाज आपकी चिरकाल तक अत्यन्त आभारी रहेगी। हर्ष है कि अब सभी दिगम्बर जैन शिक्षा-संस्थाओंमें यही टीका चालू हो गई हैं।

वीर सं. २५२७ — निवेदक-

सूरत — शैलेश डाह्याभाई कापड़िया, प्रकाशक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुवादकके दो शब्द

"तत्त्वार्थसूत्र" जैनागमका अत्यन्त प्रसिद्ध शास्त्र है। इसकी रचनाशैलीने तात्कालिक तथा उसके बादके समस्त विद्वानोंको अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि उसके उपर पूज्यपाद, अकलंकस्वामी तथा विद्यानन्द आदि आचार्योंने महाभाष्य रचे है। तत्त्वार्थसूत्र जिस तरह दिगम्बर आम्नायमें सर्व मान्य है उसी तरह श्वेताम्बर आम्नायमें भी सर्व मान्य है।

इस ग्रन्थमें आचार्य उमास्वामीने पथभ्रांत संसारी पुरुषोंको मोक्षका सच्चा मार्ग बतलाया है-"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता ही मोक्षका मार्ग है। मोक्षमार्गका प्ररूपण होनेके कारण ही मोक्षका दूसरा नाम 'मोक्षशास्त्र' भी प्रचलित हो गया है। मोक्षमार्ग-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का इस ग्रन्थमें विशद विवेचन किया गया है।

प्रथम अध्यायमें सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान विवेचन है।

दूसरे अध्यायमें सम्यग्दर्शनके विषयभूत जीवतत्वके असाधारण भाव, लक्षण, इन्द्रियां, योनि, जन्म तथा शरीरादिका वर्णन है।

तीसरे अध्यायमें जीवतत्त्वका निवासस्थान बतलानेके लिये नरकलोक और मध्यलोकका सुन्दर प्ररूपण है।

चतुर्थ अध्यायमें ऊर्ध्वलोक तथा चार प्रकारके देवोंके निवासस्थान, भेद, आयु, शरीर आदिका वर्णन किया गया है।

पाँचवें अध्यायमें अजीव तत्त्वका सुन्दर निरूपण है।

छठवें अध्यायमें आस्रव का वर्णन करते हुए आठों कर्मोके आस्रवके कारण बतलाये हैं जो सर्वथा मौलिक हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सातवें अध्यायमें शुभास्त्रवका वर्णन करनेके लिये सर्वप्रथम व्रतसामान्यका स्वरूप बतलाकर श्रावकाचारका स्पष्ट वर्णन किया गया है।

आठवें अध्यायमें बन्धतत्त्वके प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश नामक भेदोंका रोचक व्याख्यान है।

नववें अध्यायमें संवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन है। इन दोनों तत्त्वोंका वर्णन अपने ढंगका निराला ही है। और दसवें अध्यायमें मोक्षतत्त्वका सरल संक्षिप्त विवेचन किया गया है।

संक्षेपमें इस ग्रन्थमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र तथा उनके विषयभूत जीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षतत्त्वका वर्णन हैं।

अभीतक जैन सम्प्रदायमें धर्मशास्त्रके जितने ग्रन्थ देखनेमें आये हैं उन सबमें तत्त्वोंका निरूपण दो रीतियोंसे किया गया हैं। एक रीति तो यह है जिसे आचार्य श्री उमास्वामीने प्रचलित किया हैं और दूसरी रीति यह है जिसे आचार्य नेमिचन्द्राचार्यने धवलसिद्धांतके आधार पर गोम्मटसारमें बीस प्ररूपणाओंका वर्णन करते हुए प्रचलित किया है। तत्त्वनिरूपणकी दोनों रीतियाँ उत्तम हैं, अपने अपने ढंगकी अनुपम हैं। इसमें संदेह नहीं, परन्तु आचार्य उमास्वामी द्वारा प्रचलित हुयी रीतिको उनके बादके विद्वानोंने जितना अपनाया है। अपनी रचनाओंमें उस रीतिको स्थान दिया है उतना दूसरी रीतिको नहीं।

गोम्मटसारकी शैलीका गोम्मटसार ही है अथवा उसका मूलभूत धवलसिद्धांत, परन्तु उमास्वामीकी शैलीसे तत्त्वप्रतिपादन करनेवाले अनेक ग्रन्थ हैं।

पूज्यपाद अकलंक, विद्यानन्द तो उनके व्याख्याकार-भाष्यकार ही कहलाये, परन्तु अमृतचन्द्रसूरि, अमितगत्याचार्य, जिनसेन आदिने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी अपने ग्रन्थोंमें उसी पद्धतिको अपनाया है। अस्तु, इन सब बातोंसे प्राकृत ग्रन्थ और आचार्य उमास्वामीका गौरव अत्यन्त बढ़ गया है।

मोक्षशास्त्र-तत्त्वार्थसूत्रके उपर अनेक टीकाये प्रकाशित हो चूकी हैं, जो एकसे एक उत्तम हैं। परन्तु फिर भी छात्रोंको कई विषय समझनेमें कठिनाई पड़ती थी अतः उनकी कठिनाईयों को कुछ अंशोंमें दूर करनेके लिये मैंने यह प्रयत्न किया है।

पुस्तककी टिप्पणीकी, नोट, चार्ट, नकशा तथा आवश्यक भावार्थ वगैरहको सरल और रोचक बनानेका उद्योग किया गया है। साथमें पं. फूलचन्दजी सिद्धांतशास्त्री बनारस द्वारा लिखित परिशिष्ट भी संयुक्त कर दिया है जिससे स्वाध्याय-प्रेमी सज्जन भी यथोचित लाभ उठा सकते हैं।

अल्पकालमें ही बारहवी आवृति निकालनेका जो अवसर प्राप्त हुआ है उससे हमारे पाठकोंका आचार्यश्री उमास्वामी और उनके इस अनुपम ग्रन्थरत्नपर स्वाभाविक प्रेम प्रकट होता है। यदि छात्रोंको कुछ अंशोंमें लाभ हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा।

एक बात और है वह यह कि इस ग्रन्थका प्रचार देख कुछ लोगोंने इसमेंसे कितने ही अंश ले-लेकर अपनी पुस्तकोंमें आत्मसात् कर लिये है और उसपर कुछ उल्लेख भी नहीं किया है जो ठीक नहीं है। विद्वानोंमें इतनी कृतज्ञता तो चाहिये ही।

प्रमाद एवं अज्ञानसे अनेक त्रुटियोंका रह जाना सम्भव है, अतः विद्वद्‌गण मुझे क्षमा करते हुये सौहार्दभावसे उन त्रुटियोंको सूचित करनेकी कृपा करें, जिससे आगामी संस्करणमें वे त्रुटियां न रह सकें।

श्री वर्णी दि. जैन गुरुकुल
मढिया, जबलपुर, (म. प्र.)
वीर निर्वाण २५२७

विनीत,
पन्नालाल जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय	अध्याय	सूत्र
मोक्षकी प्राप्तिका उपाय	१	१
सम्यग्दर्शनका लक्षण	१	२
सम्यग्दर्शनके भेद	१	३
सात तत्व	१	४
चार निक्षेप	१	५
सम्यग्दर्शन आदिके- जाननेके उपाय	१-६	८
सम्यग्दर्शनके भेद व नाम	१	९
प्रमाणका स्वरुप	१	१०
परोक्ष प्रमाण	१	११
प्रत्यक्ष प्रमाण	१	१२
मतिज्ञानके दूसरे नाम	१	१३
मतिज्ञानकी उत्पति, कारण व स्वरुप	१	१४
मतिज्ञानके भेद	१	१५
अवग्रहके विषयभू पदार्थ	१	१६
बहुआदि पदार्थके भेद	१	१७
अवग्रहमें विशेषता	१	१८-१९
श्रुतज्ञानकी उत्पति, भेद	१	२०
भवप्रत्यय अवधिज्ञानकेस्वामी	१	२१
क्षयोपशम निमित्तक- अवधिज्ञानके भेद	१	२२
मनःपर्यय ज्ञानके भेद	१	२३
ऋजुमति और विपुलमतिमें- विशेषता	१	२४
अवधि और मनःपर्यय- ज्ञानमें विशेषता	१	२५
मतिश्रुतज्ञानका विषय	१	२६
अवधिज्ञानका विषय	१	२७
मनःपर्यय ज्ञानका विषय	१	२८
केवलज्ञानका विषय	१	२९
एकसाथ कितने ज्ञान- हो सकते हैं ?	१	३०
मति श्रुति और अवधिज्ञानमें- मिथ्यापन	१	३१
मिथ्यादृष्टिका ज्ञान- मिथ्याज्ञान है	१	३२
नयोंके भेद	१	३३
प्रश्नावली- प्रथम अध्याय ।		
जीवके असाधारण भाव	२	१
औपशमिकादि भावोंके- भेदोंकी गणना	२	२
औपशमिकादि भावके भेद	२	३
क्षायिक भावके भेद	२	४
क्षायोपशमिक के भेद	२	५
औदयिक भावके भेद	२	६
पारिणामिक भावके भेद	२	७
जीवका लक्षण	२	८
उपयोगके भेद	२	९
जीवके भेद	२	१०
संसारी जीवोंके भेद	२	११
संसार जीवोंके भेद	२	१२
स्थावर जीवोंके भेद	२	१३
त्रस जीवोंके भेद	२	१४
इन्द्रियोंकी गणना	२	१५
इन्द्रियोंके मूल भेद	२	१६
द्रव्येन्द्रियका स्वरुप	२	१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	अध्याय	सूत्र
भावेन्द्रियके स्वरुप	२	१८
पांच इन्द्रियोंके नाम	२	१९
पांच इन्द्रियोंके विषय	२	२०
मनका विषय	२	२१
इन्द्रियोंके स्वामी	२	२२-२३
समनस्क परिभाषा	२	२४
विग्रहगतिका वर्णन	२	२५-३०
जन्मके भेद	२	३१
योनियोंके भेद	२	३२
गर्भ जन्मके स्वामी	२	३३
उपपाद जन्मके स्वामी	२	३४
संमूर्च्छन जन्मके स्वामी	२	३५
शरीरके नाम व भेद	२	३६
शरीरोका वर्णन	२	३७
औदारिक शरीरका लक्षण	२	४५
वैक्रियिकका लक्षण	२	४६-४७
तैजस शरीर भी ऋद्धि-निमित्तक होता है	२	४८
अहारक शरीरका लक्षण	२	४९
लिङ्गके स्वामी	२	५०-५२
अकाल मृत्यु किनकी-नहीं होती	२	५३
प्रश्नावली- द्वितीय अध्याय ।		
सात नरक	३	१
नरकोंमें बिलोंकी संख्या	३	२
नारकियों के दुःख	३	३-५
नारकियोंकी आयु	३	६
कुछ द्वीप समुद्रोंकेनाम	३	७
द्वीप और समुद्रोंकेविस्तार-और आकाश	३	८
जम्बूद्वीपका विस्तार	३	९
सात क्षेत्रोंके नाम	३	१०
कुलाचलोंके नाम	३	११
कुलाचलोंके वर्णन	३	१२
कुलाचलोंका आकार	३	१३
सरोवरोंका वर्णन	३	१४
प्रथम सरोवरका नाम	३	१५
प्रथम सरोवरकी गहराई	३	१६
प्रथम सरोवरके कमल	३	१७
महापद्म आदि सरोवर-तथा उनमें रहनेवाले-कमलोंका वर्णन	३	१८
कमलोंकी देवियाँ	३	१९
चौदह महानदियोंके नाम	३	२०
नदियोंके बहनेका क्रम	३	२१-२२
सहायक नदियां	३	२३
भरतक्षेत्र का विस्तार	३	२४
आगे के क्षेत्र और-पर्वतों का विस्तार	३	२५
विदेह क्षेत्रकेआगे केपर्वत-और क्षेत्रोका विस्तार	३	२६
भरत ऐरावत क्षेत्रमें कालका-परिवर्तन	३	२७
अन्य भूमि व्यवस्था	३	२८
हैमवत आदि क्षेत्रों में-आयुकी व्यवस्था	३	२९
हैरण्यवत आदि क्षेत्रों में -आयुकी व्यवस्था	३	३०
विदेह क्षेत्रमें आयुकी व्य.	३	३१
भरतक्षेत्र का विस्तार	३	३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	अध्याय	सूत्र
धातकीखण्डका वर्णन	३	३३
पुष्कारार्धका वर्णन	३	३४
मनुष्य क्षेत्र	३	३५
मनुष्यों के भेद	३	३६
कर्मभूमिका वर्णन	३	३७
मनुष्यों को उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति	३	३८
तिर्यञ्चकी उत्कृष्ट स्थिति	३	३९

प्रश्नावलि- तृतीय अध्याय ।

विषय	अध्याय	सूत्र
देवोंके भेद	४	१
भवनत्रिक देवोंमें लेश्याका- विभाग	४	२
चार निकायोंके प्रभेद	४	३
देवोंमें सामान्य भेद	४	४-५
देवोंके इन्द्रोकी व्यवस्था	४	६
देवोंमें स्त्री सुखका वर्णन	४	७-९
भवनवासीके १० भेद	४	१०
व्यन्तर देवोंके ८ भेद	४	११
ज्योतिषी देवोंके ५ भेद	४	१२
ज्योतिषी देवोंके वर्णन	४	१३-१५
वैमानिक देवोंका वर्णन	४	१६
वैमानिक देवोंके भेद	४	१७
कल्पोंका स्थितिक्रम	४	१८
स्वर्ग आदिके नाम	४	१९
ग्रैवेयक और अनुदिश	४	१९टि.
वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर- अधिकता	४	२०
वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर- हीनता	४	२१
वैमानिक देवोंमें लेश्याका- वर्णन	४	२२
कल्पसंज्ञा कहां तक ?	४	२३
लौकांतिक देवोंका निवास- और नाम	४	२४-२५
अनुदिश तथा अनुत्तर- वासी देवोंके नियम	४	२६
तिर्यच कौन हैं ?	४	२७
भवनवासी देवीकी- उत्कृष्ट आयु	४	२८
वैमानिक देवोंकी आयु	४	२९-३२
स्वर्गोमें जघन्य आयु	४	३३-३४
नारकियोंकी आयु	४	३५-३६
भवनवासियों की आयु	४	३७
व्यन्तरोंकी जघन्य आयु	४	३८
व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु	४	३९
ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट आयु	४	४०
ज्योतिषियोंको जघन्य आयु	४	४१
लौकांतिक देवोंकी आयु	४	४२

प्रश्नावली- चतुर्थ अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
अजीवास्तिकाय	५	१
द्रव्यों की गणना	५	२-३-३९
द्रव्यों की विशेषता	५	४-७
द्रव्योंके प्रदेश वर्णन	५	८-११
द्रव्योंके उपकार वर्णन	५	१७-२२
पुद्गलकी पर्याय	५	२४
पुद्गलकी उत्पत्तिके कारण	५	२६-२८
द्रव्यका लक्षण	५	२९
सत्का लक्षण	५	३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	अध्याय	सूत्र
नित्यका लक्षण	५	३१
एक ही द्रव्य में विरुद्ध - धर्मोंका संबन्ध	५	३२
परमाणुओंमें बन्ध	५	३३-३७
द्रव्यका प्रकारांतरसे लक्षण	५	३८
कालद्रव्यका वर्णन	५	३९-४०
गुणका लक्षण	५	४१
पर्यायका लक्षण	५	४२

प्रश्नावली- पंचम अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
योगके भेद व स्वरूप	६	१
आस्रवका स्वरूप	६	२
आस्रवके भेद	६	३
स्वामीकी अपेक्षा- आस्रवके भेद	६	४
साम्परायिक आस्रवके भेद	६	५
आस्रवकी विशेषता	६	६
अधिकरणके भेद	६	७
जीवाधिकरणके भेद	६	८
अजीवाधिकरणके भेद	६	९
ज्ञानावरण और दर्शना- वरणके आस्रव	६	१०
असातावेदनीयके आस्रव	६	११
सातावेदनीयके आस्रव	६	१२
दर्शनमोहनीय आस्रव	६	१३
चारित्र मोहनीयके आस्रव	६	१४
नरक आयुका आस्रव	६	१५
तिर्यंच आयुका आस्रव	६	१६
मनुष्य आयुका आस्रव	६	१७-१८
सब आयुओंका- सामान्य आस्रव	६	१९
देव आयुका आस्रव	६	२०-२१
अशुभनाम कर्मका आस्रव	६	२२
शुभ नामकर्मका आस्रव	६	२३
तीर्थङ्कर नामकर्मका आस्रव	६	२४
नीचगोत्रका आस्रव	६	२५
उच्चगोत्रका आस्रव	६	२६
अन्तरायका आस्रव	६	२७

प्रश्नावली षष्ठ अध्याय।

विषय	अध्याय	सूत्र
व्रतका लक्षण	७	१
व्रतके भेद	७	२
व्रतोंकी स्थिति	७	३
अहिंसाव्रतकी पांच भावनाएं	७	४
सत्यव्रतकी भावनाएं	७	५
अचौर्य व्रतकी भावनाएं	७	६
ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएं	७	७
परिग्रह त्यागकी भावनाएं	७	८
हिंसादि पांच पापोंके- विषयमें विचार	७	९-१०
निरन्तर चिन्तवन करने- योग्य भावनाएं	७	११
संसार और शरीरके- स्वरूपका विचार	७	१२
हिंसा पापका लक्षण	७	१३
झूठ पापका लक्षण	७	१४
चोरी पापका लक्षण	७	१५
कुशीलका लक्षण	७	१६
परिग्रहका लक्षण	७	१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	अध्याय	सूत्र
व्रतोंकी विशेषता	७	१८
व्रतोंके भेद लक्षण	७	१९
अगारीका लक्षण	७	२०
सात शीलव्रत	७	२१
सल्लेखनाका उपदेश	७	२२
सम्यग्दर्शनके अतिचार	७	२३
पांचव्रत और सात शीलोंके-अतिचारोंकी संख्या	७	२४
अहिंसाणुव्रत अतिचार	७	२५
सत्याणुव्रतके अतिचार	७	२६
अचौर्याणुव्रतके अतिचार	७	२७
ब्रह्मचर्याणव्रतके अतिचार	७	२८
परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके-अतिचार	७	२९
दिग्व्रतके अतिचार	७	३०
सामायिक शिक्षाव्रतके-अतिचार	७	३३
प्रोषधोपवासके अतिचार	७	३४
उपभोगपरिभोगपरिमाण-व्रतके अतिचार	७	३५
अतिथिसंविभाग अतिचार	७	३६
सल्लेखना अतिचार	७	३७
दानका लक्षण	७	३८
दानकी विशेषता	७	३९
प्रश्नावली सप्तम अध्याय।		
बन्धके कारण	८	१
बन्धका स्वरूप	८	२
बन्धके भेद	८	३
प्रकृति बन्धके मूलभेद	८	४
प्रकृति बन्धके उत्तरभेद	८	५

विषय	अध्याय	सूत्र
ज्ञानावरणके पांचभेद	८	६
दर्शनावरणके ९ भेद	८	७
वेदनीयके २ भेद	८	८
मोहनीयके २८ भेद	८	९
आयुकर्मके ४ भेद	८	१०
नामकर्मके ४२ भेद	८	११
गोत्रकर्मके २ भेद	८	१२
अन्तरायके ५ भेद	८	१३
ज्ञाना०, दर्शना०,-वेदनीय-अन्तरायकी स्थिति	८	१४
नाम और गोत्रकी स्थिति	८	१५
आयु कर्मकी	८	१६
वेदनीयकी जघन्य स्थिति	८	१७
नाम और गोत्रकी ज. स्थिति	८	१९
शेष कर्मोंकी स्थिति	८	२०
अनुभव बंधका लक्षण	८	२१-२२
फलके बाद निर्जरा	८	२३
प्रदेशबन्ध	८	२४
पुण्यप्रकृतियां	८	२५
पापप्रकृतियां	८	२६
प्रश्नावली अष्टम अध्याय।		
संवरका लक्षण	९	१
संवरके कारण	९	२-३
गुप्तिका लक्षण	९	४
समितिके भेद	९	५
धर्मके भेद	९	६
अनुप्रेक्षाओंके भेद	९	७
परिग्रह सहन उपदेश	९	८
बाईस परिषह	९	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	अध्याय	सूत्र
गुणस्थानोंकी अपेक्षा परिषहोंका वर्णन	९	१०-१२
परिषहोंमें निमित्त	९	१३-१६
एकसाथ होनेवाले- परिग्रहोंकी संख्या	९	१७
पांच चरित्र	९	१८
बाह्य तपके भेद	९	१९
अन्तरंग तपके भेद	९	२०
अन्तरंग तपके उत्तर भेद	९	२२
प्रायश्चितके ९ भेद	९	२२
विनयके ४ भेद	९	२३
वैयावृत्यके दस भेद	९	२४
स्वाध्यायके ५ भेद	९	२५
व्युत्सर्ग तपके दो भेद	९	२६
ध्यानका लक्षण	९	२७
ध्यानके भेद	९	२८
ध्यानका फल	९	२९
आर्तध्यानके ४ भेद	९	३०-३३
आर्तध्यानके स्वामी	९	३४
रौद्रध्यानके भेद	९	३५
धर्म्यध्यानका स्वरूप	९	३६
शुक्लध्यानका वर्णन	९	३७-४४

विषय	अध्याय	सूत्र
पात्रकी अपेक्षा- निर्जरामें न्यूनाधिकता	९	४५
निर्ग्रंथ साधुओंके भेद	९	४६
पुलकादिकी विशेषता	९	४७
प्रश्नावली नवम अध्याय ।		
केवलज्ञानकी उत्पत्तिका- कारण	१०	१
मोक्षका लक्षण	१०	२
मोक्षमें कर्मोंके सिवाय- किसका अभाव	१०	३-४
कर्मोंका क्षय होनेके- बाद ऊर्ध्वगमन	१०	५
ऊर्ध्वगमनके कारण	१०	६
उक्त चारों कारणोंके- क्रमसे दृष्टांत	१०	७
लोकाग्रके आगे नहीं- जानेमें कारण	१०	८
मुक्त जीवोंके भेद	१०	८
अन्तिम श्लोक	पृष्ठ	२०४
प्रश्नावली- दशम अध्याय ।		
शंका-समाधान	पृष्ठ	१८६
लक्षण-संग्रह	पृष्ठ	२३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षशास्त्रके कर्ता श्री उमास्वामीका
संक्षिप्त जीवनचरित्र

आचार्यप्रवर श्री उमास्वामीका नाम 'तत्त्वार्थसूत्र' नामक ग्रन्थके कारण अजर अमर हैं। यह ग्रन्थ जैनोंकी 'बाईबल' है। और खूबी यह हैं कि संस्कृत भाषामें सबसे पहला यही ग्रन्थ हैं। सचमुच आचार्य उमास्वामीजीने ही जैन सिद्धांतको प्राकृतसे संस्कृत भाषामें प्रकट करनेका श्री गणेश किया था और फिर तो इस भाषामें अनेकानेक जैनाचार्योने ग्रन्थ रचना की।

श्री उमास्वामीकी मान्यता जैनोंके दोनो सम्प्रदायों-दिगम्बर और श्वेतांबरोंमें समान रूपसे है। और उनका 'तत्त्वार्थसूत्र' ग्रन्थ भी दोनों सम्प्रदायोंमें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

किन्तु ऐसे प्रख्यात आचार्यके जीवनकी घटनाओंका ठीक हाल ज्ञात नहीं है। श्वेताम्बरीय शास्त्रोंसे यह जरूर विदित है कि न्यायाधिका नामक नगरीमें उमास्वामीका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम स्वाति और माताका नाम वात्सी था। वह कौभीषणी गोत्रके थे, जिससे उनका ब्राह्मण या क्षत्री होना प्रकट है। उनके दीक्षागुरु ग्यारह अङ्गके धारक घोषनन्दि श्रमण थे और विद्याग्रहणकी दृष्टिसे उनके गुरु मूल नामक वाचकाचार्य थे। उमास्वाति भी वाचक कहलाते थे और उन्होंने 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचना कुसुमपुर नामक नगरीमें की थी।

दिगम्बर शास्त्रोंमें उनके गृहस्थ जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता हैं। साधु रूपमें वह भी कुन्दकुन्दाचार्यके पट्ट शिष्य बताये गये है और श्री 'तत्त्वार्थसूत्र' की रचनाके विषयमें कहा गया है कि सौराष्ट्र देशके मध्य उर्जयन्तगिरिके निकट गिरनार नामके पत्तनमें आसन्न भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न श्वेताम्बर भक्त "सिद्धय्य" नामक एक विद्वान श्वेतांबर मतके अनूकुल शास्त्रका जाननेवाला था। उसने 'दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' यह एक सूत्र बनाया और उसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक पाटिये पर लिख छोडा। एक समय चर्यार्थ श्रीगृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामी' नामके धारक मुनिवर आये और उन्होंने आहार लेनेके पश्चात् पाटियेको देखकर उसमें "सम्यक्" शब्द जोड़ दिया।

जब वह सिद्धय्य विद्वान् वहांसे अपने घर आया और उसने प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किन महानुभावने यह शब्द लिखा है ? माताने उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्थाचार्यने यह बनाया है। इस पर वह गिरि और अरण्यको ढूंढ़ता हुआ उनके आश्रममें पहुँचा और भक्तिभावसे नम्रभूत होकर उक्त मुनिमहाराजसे पूछने लगा कि आत्माका हित क्या है? मुनिराजने कहा-आत्माका हित 'मोक्ष' है। इसपर मोक्षका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूपमें ही इस ग्रन्थका अवतार हुआ है। इसी कारण इस ग्रंथका अपरनाम " मोक्षशास्त्र " भी है। कैसा अच्छा वह समय था, जब दिगम्बर और श्वेताम्बर आपसमें प्रेमसे रहते हुए धर्मप्रभावनाके कार्य कर रहे थे। श्वेतांबर उपासक सिद्धय्यके लिये एक निर्ग्रन्थाचार्यका शास्त्र रचना करना इसी वात्सल्यभावनाका द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य उमास्वामी ही थे। धर्म और उसके लिए उनने क्या क्या किया यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस कारण इन महान आचार्य के विषयमें इस संक्षिप्त वृत्तांतसे ही संतोष धारण करना पड़ता है। दिगम्बर सम्प्रदायमें वह श्रुति मधुर 'उमास्वामी' और श्वेतांबर सम्प्रदायमें वह 'उमास्वाति' के नामसे प्रसिद्ध है:-बाबू कामताप्रसादजी कृत 'वीर पाठावलि' से।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) मूल

(आचार्य गुद्धपिच्छ)

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृतां।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वंदे तद्गुणलब्धये॥

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट्काय लेश्याः।
पंचान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्तमर्हद् भिरीशैः।
प्रत्येति श्रध्धाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः॥१॥

सिद्धे जयप्प सिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते।
वंदिताअरहंते वौच्छं आराहणा कमसो॥२॥

उज्जोवणमुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया॥ ३॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥ १ ॥ तत्त्वार्थ-श्रद्धानं-सम्यग्दर्शनं॥२॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥ ३॥ जीवा-जीवास्त्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वं।४।नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्यासः॥५॥प्रमाणनयैरधिगमः॥६॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः॥७॥सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालांतर-भावाल्पबहूत्वैश्च॥८॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानं॥९॥तत्प्रमाणे॥१०॥ आद्ये परोक्षं॥११॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥१२॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा-चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं ॥१३॥ तदिन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तं॥१४॥ अवग्रहेहावाय-धारणाः॥१५॥बहु-बहुविध-क्षिप्रानिः-सृतानुक्त ध्रुवाणां सेतराणां॥१६॥ अर्थस्य॥१७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यंजनस्यावग्रहः ॥ १८॥ न चक्षुरनिन्द्रियाभ्यां ॥१९॥ श्रुतंमतिपूर्वंद्व्यनेक-द्वादशभेदं॥ २०॥ भवप्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणां ॥२१॥ क्षयोपशम-निमित्तःषड् विकल्पः शेषाणां॥२२॥ऋजुविपुलमती मनः पर्ययः ॥२३॥विशुद्ध्य-प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥ विशुद्धि-क्षेत्रस्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्ययोः ॥२५॥ मति श्रुतयोर्निबन्धो-द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु ॥२६॥ रुपिष्ववधेः ॥२७॥तदनंतभागे मनःपर्ययस्य ॥२८॥ सर्व द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥२९॥ एकादिनिभाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥३०॥मतिश्रुता-वधयोविपर्ययश्च ॥३१॥ सदसतोरविशेषाद्य-दृच्छोपलब्धे-रून्मत्तवत् ॥३२॥ नैगम-संग्रहव्यवहारर्जुसूत्र-शब्द-समभिरुढैवं-भूतानयाः ॥३३॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च॥१॥ द्विनवाष्टा-दशैक-विंशतित्रिभेदा यथाक्रमं॥२॥सम्यक्त्व-चारित्रे॥३॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च ॥४॥ ज्ञानाज्ञान-दर्शनलब्धयश्चतु-स्त्रित्रि-पंचभेदाःसम्यक्त्व-चारित्रसंयमा-संयमाश्च॥५॥गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयता-सिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः॥६॥जीवभव्या-भव्यत्वानि च॥ ७॥ उपयोगो लक्षणं॥ ८॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च॥१०॥ समनस्का-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनस्काः ॥११ ॥संसारिणस्त्रस-स्थावराः ॥ १२ ॥पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पतयःस्थावराः ॥ १३ ॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेन्द्रियाणि ॥१५॥ द्विविधानि ॥ १६॥ निर्वुत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥ १७ ॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं ॥ १८ ॥ स्पर्शन-रसनाघ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि ॥ १९॥ स्पर्श-रस-गंध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ॥२० ॥श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥ वनस्पत्यंताना-मेकं ॥ २२ ॥कृमिपिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकै कवृद्धानि ॥२३ ॥संज्ञिनःसमनस्काः ॥ २४ ॥ विग्रहगतौकर्मयोगः ॥ २५ ॥ अनुश्रेणी गतिः ॥ २६ ॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८ ॥एकसमयाऽविग्रहा ॥ २९ ॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥३० ॥संमूर्च्छन गर्भोपपादाजन्म ॥३१ ॥ सचित्तशीत-संवृताः सेतरामिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥ ३२ ॥ जरायुजांडजपोतानांगर्भः ॥ ३३ ॥देवनारकाणामुपपादः ॥३४ ॥ शेषाणांसम्मूर्च्छनं ॥ ३५ ॥ औदारिक वैक्रियिका-हारक तैजसकार्मणानि शरीराणि ॥३६ ॥ परं परं सूक्ष्मं ॥ ३७ ॥ प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ॥३८ ॥ अनन्तगुणे परे ॥३९ ॥ अप्रतीघाते ॥ ४० ॥ अनादि संबंधे च ॥ ४१ ॥ सर्वस्य ॥४२ ॥ तदादीनि भाज्यानि-युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥४३ ॥ निरुपभोगमन्त्यं ॥४४ ॥गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यं ॥४५ ॥ औपपा-दिकं वैक्रियिकं ॥ ४६ ॥ लब्धि-प्रत्ययं च ॥ ४७ ॥ तैजसमपि ॥ ४८ ॥ शुभंविशुद्धमव्याघातिचाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव ॥४९ ॥ नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥ ५० ॥ न देवाः ॥५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषास्त्रिवेदाः ।।५२ ।।औपपादिक-चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय वर्षा-युषोऽनपवर्त्यायुषः ।। ५३ ।।

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।। २ ।।

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमःप्रभाभूमयो-घनांबुवाताकाशप्रतिष्ठाःसप्तोऽधोऽधः ।।१ ।।तासुत्रिंशत्पंचविंशति-पंचदशदशत्रि-पंचोनैकनरक-शतसहस्राणि-पंच-चैव यथा-क्रमम् ।। २ ।। नारका नित्याऽशुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः ।।३ ।।परस्परोदीरितदुःखाः ।।४ ।।संक्लिष्टाऽसुरो दीरितः दुःखाश्चप्राक् चतुर्थ्याः ।। ५ ।। तेष्वेक-त्रिसप्त-दश-सप्तदश-द्वार्विंशति-त्रयस्त्रिँशत्सागरोपमा-सत्वानां परास्थितिः ।।६ ।।जम्बूद्वीप लवणो-दादयः शुभनामानो द्वीप समुद्राः ।।७ ।। द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्व-पूर्व परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।८ ।।तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन शतसहस्र विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।९ ।। भरत हैमवत-हरि विदेहरम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।१० ।। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा-हिमवन्निषध-नीलरुक्मि शिखरिणो वर्ष धर-पर्वताः ।। ११ ।। हेमार्जुन तपनीयवैडूर्यरजत हेम मयाः ।। १२ ।। मणिविचित्र पार्श्वा उपरी मूले च तुल्य-विस्ताराः ।। १३ ।। पद्म महापद्म-तिगिच्छ केशरि-महापुण्डरीक पुण्डरीका-हृदास्तेषा-मुपरि ।।१४ ।।प्रथमोयोजनसहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्भो हृदः ।।१५ ।। दशयोजनावगाहः ।।१६ ।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।। १७ ।। तद्द्विगुणद्विगुणाहृदाः पुष्कराणि च ।। १८ ।। तन्निवासिन्यो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव्यःश्री ह्रीं-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥ १९ ॥ गंगा-सिन्धु रोहिद्रोहि-तास्या हरिद्धरिकांताः सीता सीतोदा नारी नरकांता सुवर्ण रुप्यकूला-रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥२१॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चर्तुदश नदीसहस्त्र-परिवृता गंगासिन्ध्वादयो नद्यः ॥ २३॥ भरतः षड्‌विंशति-पंचयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोनविंशति-भागा योजनस्य ॥ २४ ॥ तद्‌द्विगुण-द्विगुण विस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥ २६ ॥ भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्-समयाभ्यामुत्सर्पिण्यव-सर्पिणीभ्याम् ॥२७॥ ताभ्याम-पराभूमयोऽवस्थिताः ॥ २८ ॥ एक द्वि-त्रि पल्योपमस्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैव कुरवकाः ॥२९॥तथोत्तराः ॥३०॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥ ३१ ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्यनवति शत भागः ॥ ३२॥ द्विर्धातकी खण्डे ॥३३॥पुष्करार्द्धे च ॥३४॥प्राङ्-मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥३५॥ आर्याम्लेच्छश्च॥ ३६ ॥ भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तर कुरुभ्यः ॥ ३७ ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्त र्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥३९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥ आदितस्त्रिषु पीतान्त-लेश्याः ॥२॥ दशाष्ट पंचद्वादश विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यंताः ॥ ३ ॥ इन्द्रसामानिक त्रायस्त्रिंशत्पारि षदात्मरक्ष-लोकपालानीक प्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ॥ ४ ॥ त्रायस्त्रिंश-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥ ५ ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥६ ॥ काय प्रवीचाराआ ऐशानात् ॥ ७ ॥ शेषाः स्पर्श रुप शब्द मनः प्रवीचाराः ।८ । परेऽप्रवीचाराः ॥९ ॥भवनवासिनोऽसुर नागविद्युत्-सुपर्णाग्निवात स्तनितोदधि द्वीप दिक्कुमाराः ॥१० ॥ व्यन्तराः किन्नरकिंपुरुष महोरग गन्धर्व यक्ष राक्षस भूत पिशाचाः ॥ ११ ॥ ज्योतिष्काः सूर्या, चन्द्रमसौ ग्रह नक्षत्र प्रकीर्णक तारकाश्च ॥ १२ ॥ मेरुप्रदक्षिणा नित्य गतयो नृलोके ॥१३ ॥तत्कृतः कालविभागः ॥ १४ ॥ बहिरवस्थिताः ॥१५ ॥ वैमानिकाः ॥ १६ ॥ कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ॥१७ ॥ उपर्यु परि ॥ १८ ॥ सौ-धर्मैशान सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म ब्रह्मो त्तर लान्तव कापिष्ठ-शुक्रमहाशुक्रशत्तारसहस्त्रारेष्वानत-प्राणतयो-रारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्त जयन्ता पराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥१९ ॥ स्थिति प्रभाव सुख-द्युति लेश्या-विशुद्धिन्द्रियावधि विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥ गतिशरीर परिग्रहाभि मानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीत पद्म शुक्ल लेश्या द्वि-त्रि शेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेय केभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥ ब्रह्म लोका -लया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥सारस्वतादित्य वह्नयरुण-गर्दतोय तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ।।विजयादिषु द्वि चरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यःशेषास्तिर्यग्योनयः ॥२७ ॥ स्थिति रसुरनाग- सुपर्ण द्वीप शेषाणांसागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध हीन-मिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैसानयोःसागरोपमेऽधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥त्रि-सप्तनवैकादश-त्रयोदश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चदशभिरधिकानितु ॥३१ ॥आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥ अपरापल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥ परतः परतःपूर्वापूर्वाऽनंतरा ॥ ३४॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥ दशवर्ष सहस्त्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥ व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥ परापल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥ज्योतिष्काणां च ॥४० ॥ तद्दष्ट- भागोऽपरा ॥ ४१ ॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि च सर्वेषां ॥ ४२ ॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाश-पुद्‌गलाः ॥१ ॥ द्रव्याणि ॥२ ॥ जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरुपाणि ॥४ ॥ रुपिणः पुद्‌गलाः ॥ ५ ॥ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि च ॥७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानाम् ॥८ ॥ आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्‌गलानाम् ॥ १० ॥ नाणोः ॥ ११ ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्‌गलानां ॥ १४ ॥ असंख्येयभागादिषुजीवानाम् ॥ १५ ॥ प्रदेश-संहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ।१६ ।गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ॥१७ ॥ आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥ शरीरवाङ्‌मनः प्राणापानाः पुद्‌-गलानाम् ॥ १९ ॥ सुखदुःखजीवित मरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥ परस्परोपग्रहोजीवानाम् ॥२१ ॥ वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य ।।२२ ।। स्पर्श-रस गन्ध-वर्ण-वंतः पुदगलाः ।।२३ ।। शब्द-बंधसौक्ष्म्य स्थौल्य-संस्थान-भेद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तमश्छायातपो-द्योतवंतश्च ॥२४॥ अणवः स्कंधाश्च ॥ २५ ॥ भेद-संघातेभ्यःउत्पद्यन्ते ॥२६ ॥भेदादणुः ॥२७॥ भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ॥२८॥ सद्-द्रव्य-लक्षणम् ॥२९॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥३०॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥ अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥स्निग्ध रुक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥ न जघन्य गुणानाम् ॥ ३४ ।गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥३५ ॥ द्व्यधिकादि गुणानां तु ॥ ३६ ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।३७। गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ।।३८।।कालश्च ॥ ३९ ॥ सोऽनन्त समयः ॥४०॥द्रव्याश्रया-निर्गुणा गुणाः ॥४१ ॥ तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

काय-वाङ्-मनः कर्म योगः ॥ १ ॥ स आस्त्रवः ॥ २ ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥सकषायाकषाययोःसाम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥ इन्द्रियकषायाव्रत-क्रियाः पंच चतुः पंचपंचविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥५ ॥तीव्र मन्दज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥६ ॥ अधिकरणं जीवाऽजीवाः ।।७ ॥आद्यंसंरम्भसमारंभारम्भ-योग-कृतकारितानुमत कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्च तुश्चैकशः। ८। निवर्तना - निक्षेप-संयोगनिसर्गा द्वि चतुर्द्वि त्रि भेदाः परम् ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥१० ॥ दुःखशोक तापाक्रन्दन वध परिदेवना न्यात्मपरोभय स्थानान्यसद् वेद्यस्य ॥११ ॥ भूतव्रत्यनुकम्पादान सरागसंयमादि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगः शांतिःशौचमिति सद्वेद्यस्य ॥१२॥ केवलि श्रुत संघ धर्म देवावर्णवादोदर्शनमोहस्य ॥ १३॥ कषायोदयातीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ॥१४॥ बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥१५॥ माया-तैर्यग्योनस्य ॥१६॥ अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७॥स्वभाव मार्दवं च ॥ १८॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥१९॥सरागसंयम संयमासंयमा काम निर्जरा बालतपांसि दैवस्य॥ २०॥ सम्यक्त्वं च ॥ २१॥ योग वक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतंशुभस्य ॥२३॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग संवेगौ शक्तितस्त्याग तपसीसाधुसमाधि वैयावृत्यकरण-मर्हदाचार्य बहुश्रुतप्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणि र्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति-तीर्थंकरत्वस्य ॥२४॥ परात्म-निंदा प्रशंसे-सद्सद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५॥ तद्विपर्ययोनीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥ विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हिंसानृत स्तेयाब्रह्म परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥देशसर्व-तोऽणु-महती ॥२॥ तत्स्थैर्यार्थ भावनाः पंच-पंच ॥३॥वाङ्-मनोगुप्तीर्यादान निक्षेपण समित्यालोकित पानभोजनानि पंच ॥४॥क्रोध लोभ भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीची-भाषणं च पंच ॥ ५॥ शून्यागार विमोचितावास परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्माऽविसंवादाः पंच ॥ ६ ॥ स्त्री राग-कथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रवणतन्मनोहरांगनिरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्ट-रस स्वशरीरसंस्कारत्यागाःपंच ॥७॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष वर्जनानि पंच ॥८॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनं ॥९॥ दुःखमेव वा ॥१०॥ मैत्री-प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनयेषु ॥११॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥ १२॥ प्रमत्तयोगा-त्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३॥ असद्भिधानमनृतम् ॥ १४॥ अदत्तादानं स्तेयं ॥१५॥ मैथुनं ब्रह्म ॥१६॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७॥ निःशल्यो व्रती ॥ १८॥ अगार्यनगारश्च ॥ १९॥ अणुव्रतोऽगारी ॥ २०॥ दिग्देशानर्थदण्ड विरतिसामायिक-प्रोषधोपवासोप-भोगपरिभोग-परिमाणातिथि संविभागव्रत सम्पन्नश्च ॥२१॥मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥२२॥शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि प्रशंसा संस्तवाःसम्यग्दृष्टेरतीचाराः ॥२३॥ व्रत शीलेषु पंच पंच यथाक्रमं ॥२४॥ बन्ध-वध-च्छेदातिमारारोपणान्नपान-निरोधाः ॥ २५॥ मिथ्यो-पदेश रहोभ्याख्यान कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकार-मन्त्रभेदाः ॥ २६॥ स्तेनप्रयोग तदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रम हीना-धिकमानोन्मान-प्रतिरुपक व्यवहाराः ॥२७॥ परविवाह-करणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमना नंगक्रीडाकाम-तीव्राभिनिवेशाः ॥२८॥ क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्णधनधान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥२९॥उर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि ॥३०॥ आनयन-पेष्य-प्रयोग-शब्द-रुपानुपात-पुद्गल क्षेपाः ॥३१॥कन्दर्पकोत्कुच्यमौखर्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समीक्ष्याधिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योग-दुःप्रणिधानानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥३३॥ अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गादान संस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥३४॥ सचित्त-संबंध-सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्त-निक्षेपापिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य्य-कालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवित-मरणा-शंसा-मित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि ॥३७॥ अनुग्रहार्थं स्व-स्यातिसर्गोदानम् ॥३८॥ विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७॥

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥२॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास्तद्विधयः ॥३॥ आद्योज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायः ॥४॥ पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद् द्वि-पञ्च भेदा यथाक्रमम् ॥५॥ मति-श्रुतावधि-मनःपर्ययकेवलानाम् ॥६॥ चक्षुरचक्षुर-वधिकेवलानां निद्रा-निद्रा-निद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्र-मोहनीया-कषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानु-बन्ध्यप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया-लोभाः ॥ ९ ॥ नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥ १० ॥ गति-जाति-शरीराङ्गो-पाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघात-परघातातपो-द्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय यशःकीर्ति-सेतराणितीर्थंकरत्वं च ॥ ११ ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥१२॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम ॥१३॥ आदितस्तिसृणा-मंतरायस्य चत्रिंशत्सागरोपम-कोटीकोट्यः परास्थितिः ॥१४॥ सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५॥ विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ॥ १६॥ त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः॥ १७॥ अपरा द्वादश मुहूर्तावेदनीयस्य ॥१८॥नाम-गोत्रयोरष्टौ ॥१९॥ शेषाणामन्त-र्मुहूर्ता ॥२०॥ विपाकोऽनुभवः॥ २१॥ स यथानाम ॥ २२॥ ततश्च निर्जरा ॥ २३॥ नाम-प्रत्ययाः सर्वतोयोग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्व-नन्तानन्त-प्रदेशाः ॥२४॥ सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणिपुण्यम् ॥२५॥ अतोऽन्यत्पापम्॥ २६॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८॥

आस्त्रव-निरोधः संवरः ॥१॥स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय-चारित्रैः ॥२॥ तपसा निर्जरा च ॥३॥ सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ॥४॥ ईर्याभाषैषणा दाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५॥ उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-सत्यशौच-संयमतपस्त्यागा-किञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥६॥अनित्याशरण-संसारैकत्त्वा-न्यत्वाशुच्यास्त्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभधर्म-स्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ॥७॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं-परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वधयाचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना दर्शनानि ।।९ ।। सूक्ष्मसाम्परायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ।।१० ।।एकादशजिने ।।११ ।।बादरसाम्पराये सर्वे ।।१२ ।। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।।१३ ।। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ।।१४ ।। चारित्रमोहेनाग्न्यारति स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः ।।१५ ।।वेदनीये शेषाः ।।१६ ।। एकादयो भाज्यायुगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ।।१७ ।। सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धिसूक्ष्म-साम्पराय यथाख्यातमिति चारित्रम् ।।१८ ।। अनशनावमौदर्य-वृत्ति परिसंख्यान-रस-परित्याग-विविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ।।१९ ।। प्रायश्चित-विनयवैयावृत्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ।।२० ।। नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं-प्राग्ध्यानात् ।।२१ ।। आलोचना-प्रतिक्रमणतदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ।। २२ ।। ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ।।२३ ।। आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्यग्लानगण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ।।२४ ।। वाच-नापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।। २५ ।।बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।।२६ ।। उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता-निरोधोध्यानमा-न्तर्मुहूर्त्तात् ।। २७ ।। आर्त्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ।।२८ ।। परे मोक्ष-हेतू ।।२९ ।। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वा-हारः ।। ३० ।। विपरीतं मनोज्ञस्य ।।३१ ।। वेदनायाश्च ।। ३२ ।। निदानं च ।।३३ ।। तदविरत-देश-विरत-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४॥ हिंसानृत-स्तेयविषयसंरक्षणे-भ्योरौद्रमविरत-देशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञापाय विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥ ३६॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥ ३७॥ परेकेवलिनः ॥ ३८॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति-व्युपरत क्रियानिवर्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोग-काययोगा योगानाम् ॥४०॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥ ४१॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥४२॥ वितर्कः श्रुतम् ॥४३॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जन-योग संक्रान्तिः ॥४४॥ सम्यग्दृष्टि-श्रावक-विरतानन्त-वियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाःक्रमशोऽसंख्येय-गुणनिर्जरा ॥४५॥ पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः ॥४६॥ संयम-श्रुत-प्रति सेवना-तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥ ४७॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९॥

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥ १॥ बन्धहेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ।२। औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥३॥ अन्यत्र केवल सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥४॥ तदनन्तरमूर्ध्वगच्छत्यालोकान्तात् ॥५॥ पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथा गति-परिणामाच्च ॥६॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालांबुवदेरण्डबीज-वदग्निशिखावच्च ॥७॥ धर्मास्ति कायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकाल गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र प्रत्येकबुद्धबोधित-ज्ञानावगाहनान्तर संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९॥

इति तत्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षर-मात्र पद-स्वर-हीनं, व्यंजन-संधि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥२॥

तत्वार्थ-सूत्र-कर्तारं, गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीद्र-संजातमुमास्वामि-मुनीश्वरम् ॥३॥

पढम चउक्के पढमं पंचमे जाणि पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव अट्ठमे बंधणायव्वा ॥४॥

णवमे संवर णिज्जर दहमे मोक्खं वियाणेहि।
इह सत्त तच्च भणियं दह सुक्षेण मुणिं देहिं ॥ ५ ॥

जं सक्कइ तं कीरइ जे पण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ॥६॥

तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीव-दया-करणम्।
अन्ते समाहिमरणं, चउविह दुक्खं णिवारई ॥७॥

अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥८॥

गुरवो पांतु वो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णाव-गंभीराः मोक्ष-मार्गोपदेशकः ॥९॥

कोटिशतं द्वादशचैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानिचैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्त्रसंख्यामेतद् श्रुतं पंचपदं नमामि ॥ १० ॥

इति तत्वार्थसूत्रापरनाम-तत्वार्थाधिगम-मोक्षशास्त्रं समाप्तम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद् राजचंद्र आश्रम (अगास)

गोम्मटसार जीवकांड--श्री नेमीचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ति कृत मूल गाथायें ब्र. पं. खुबचंद्रजी सिद्धांतशास्त्री कृत नई हिन्दी टीका युक्त। अबकी बार पण्डितजीने धवल, जयधवल, महाधवल और बड़ी संस्कृत टीकाके आधारसे विस्तृत टीका लिखी है, पक्की जिल्द। **मू. ६५)**

गोम्मटसार-कर्मकांड--श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ति कृत मूल गाथायें, स्व. पं. मनोहरलालजी शास्त्री कृत संस्कृत छाया और हिन्दी टीका, जैन सिद्धांत-ग्रंथ हैं पंचमावृत्ति, **मू. ५०)**

स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा--स्वामी कार्तिकेयकृत मूल गाथाए श्री शुभचंद्रकृत बड़ी संस्कृत टीका तथा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्रधानाध्यापक पं. कैलाशचंद्रजी शास्त्री कृत हिन्दी टीका डा. आ. ने. उपाध्येय कृत अध्ययन पूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना युक्त। सम्पादक--डा. आ. ने. उपाध्ये, कोल्हापुर, **मू. ७८)**

परमात्मप्रकाश और योगसार--श्री योगीन्दुदेव कृत मूल अपभ्रंश-दोहे, श्री ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका व पं. दौलतरामजी कृत हिन्दी टीका। विस्तृत अंग्रेजी प्रस्तावना और उसके हिंदीसार सहित। महान अध्यात्म ग्रन्थ डा. आ. ने. उपाध्येका अमूल्य सम्पादन नवीन संस्करण। **मू. ६१)**

ज्ञानार्णव--श्री शुभचंद्राचार्यकृत महान योगशास्त्र। सुजानगढ़ निवासी पं. पन्नालालजी बाकलीवालकृत हिन्दी अनुवाद सहित, छठ्ठी सुन्दर आवृत्ति। **मू. ६३)**

प्रवचनसार--श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचित ग्रन्थ रत्नपर श्रीमद्-अमृतचंद्राचार्यकृत तत्वप्रदीपिका एवं श्रीमद्जयसेनाचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति नामक संस्कृत टीकायें तथा पांडे हेमराजजी रचित बालावबोधिनी भाषाटीका। डा. आ. ने. उपाध्ये कृत अध्ययनपूर्ण अंग्रेजी अनुवाद और विशद् प्रस्तावना आदि सहित आकर्षक सम्पादन। चतुर्थावृत्ति, **मू. ६६)**

बृहदद्रव्यसंग्रह--आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतिदेव विरचित मूल गाथा, श्री ब्रह्मदेवनिर्मित संस्कृतवृत्ति और पं. जवाहरलाल शास्त्री प्रणीत हिन्दी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाषानुवाद सहित। षट्द्रव्यसप्त-तत्वस्वरूप वर्णनात्मक उत्तम ग्रन्थ चतुर्थावृत्ति। मू. ३८)

पुरुषार्थसिद्धयुपाय--श्री अमृतचंद्रसूरि कृत मूल श्लोक। पं. टोडरमलजी तथा पं. दौलतरामजीके टीकाके आधार पर स्व. पं. नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित नवीन हिन्दी टीका सहित। श्रावक-मुनिधर्मका चित्तस्पर्शी अद्‌भुत वर्णन। षष्ठावृत्ति, मू. २०)

अध्यात्म राजचंद--श्रीमद् राजचंद्रके अद्‌भुत जीवन तथा साहित्यका शोध एवं अनुभवपूर्ण विवेचन डॉ. भगवानदास मनसुखभाई महेताने गुजराती भाषामें किया। मू. ६५)

पंचास्तिकाय--श्रीमद्‌भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित अनुपम ग्रंथराज। आ. अमृतचंद्रसूरिकृत समयव्याख्या एवं आ. जयसेनकृत तात्पर्यवृत्ति-नामक संस्कृत टीकाओंसे अलंकृत और पांडे हेमराजजी रचित बालवबोधिनी भाषा टीकाके आधारपर पं. पन्नालालजी बाकलीवाल कृत प्रचलित हिन्दी अनुवाद सहित। चतुर्थावृत्ति, मू. ४०)

अष्टप्राभृत--श्रीमद्‌कुन्दकुन्दाचार्य विरचित मूल गाथाओं पर श्री रावजीभाई देसाई द्वारा गुजराती गद्य-पद्यात्मक भाषांतर मोक्षमार्गकी अनुपम भेंट। मू. २०)

भावनाबोध-मोक्षमाला--श्रीमद् राजचंद्र कृत, वैराग्यभावना सहित जैनधर्मकी यथार्थ स्वरूप दिखानेवाले १०८ सुन्दर पाठ है। मू. २०) गुजराती मू. २०)

स्याद्वादमंजरी--श्री मल्लिषेणसूरि कृत मूल और श्री जगदीशचंद्र शास्त्री एम. ए. पीएच. डी. कृत हिन्दी अनुवाद सहित। न्यायका अपूर्व ग्रन्थ है। बड़ी खोजसे लिखे गये ८ परिशिष्ट है। मू. ६०)

इष्टोपदेश--श्री पूज्यपाद देवनन्दि आ. कृत मूल श्लोक, पंडितप्रवर आशाधर कृत संस्कृत टीका, पं. धन्यकुमारजी जैन दर्शनाचार्य एम. ए. कृत हिंदी टीका, स्व. बैरिस्टर चम्पतरायजी कृत अंग्रेजी टीका तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित हिंदी, मराठी, गुजराती एवं अंग्रेजी पद्यानुवाद सहित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाववाही आध्यात्मिक रचना। तृतीय नई आवृत्ति, **मू. ३०)**

समयसार--आचार्य श्री कुन्दकुन्दस्वामी विरचित महान अध्यात्म ग्रन्थ, तीन टीकाओं सहित नयी आवृत्ति छपकर तैयार हैं। **मू. ६४)**

लब्धिसार--(क्षपणासार गर्भित) श्रीमन्नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती रचित करणानुयोग ग्रंथ। पं. प्रवर टोडरमलजी कृत बड़ी टीका सहित छप गया है। **मू. ८०)**

द्रव्यानुयोगतर्कणा--श्री भोजसागरकृत तैयार है। **मू. ६१)**

न्यायावतार--महान तार्किक श्री सिद्धसेन दिवाकर कृत मूल श्लोक व श्रीसिद्धर्षिगणिकी संस्कृत टीकाका हिन्दी भाषानुवाद जैनदर्शनाचार्य पं. विजयमूर्ति एम. ए. ने किया है। न्यायका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। **मू. २५)**

क्रियाकोष--कवि किशनसिंह विरचित श्रावककी त्रेपन क्रियाओंका सविस्तार वर्णन करनेवाली पद्यमय रचना श्री पन्नालालजी साहित्यचार्य कृत हिन्दी अनुवाद सहित। **मू. ७०)**

प्रशमरतिप्रकरण--आ. श्रीमदुस्वामी विरचित मूल श्लोक, श्रीहरिभद्रसूरि कृत संस्कृत टीका और पं. राजकुमारजी साहित्याचार्य द्वारा सम्पादित सरल अर्थ सहित। वैराग्यका बहुत सुन्दर ग्रंथ है। **मू. ३०)**

सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र (मोक्षशास्त्र)--श्रीमद् उमास्वामी कृत मूल सूत्र और स्वोपज्ञभाष्य तथा पं. खूबचंदजी सिद्धांतशास्त्री कृत विस्तृत भाषा टीका। तत्वोंका हृदयग्राह्य गम्भीर विश्लेषण, **मू. ४८)**

सहज सुख साधन (गुजराती) **मू. २५)**

सप्तभंगीतरंगिणी--श्री विमलदास कृत मूल और स्व. पं. ठाकुरप्रसादजी शर्मा व्याकरणाचार्य कृत भाषा टीका। नव्यन्यायका महत्वपूर्ण है। **मू. २०)**

दिगम्बर जैन पुस्तकाय, गांधीचौक, सुरत

(0261) 2590621

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवराज जैन ग्रंथमाला (सोलापूर)

धवला षट्खंडागम--आचार्य पुष्पदन्त भूतबली प्रणित--वीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका समन्वित, ग्रंथ संपादक डॉ. हीरालालजी जैन एवं पं. फूलचंदजी सिद्धान्त शास्त्री, पं. बालचंदजी सिद्धान्त शास्त्री--भाग १ से १६ पुस्तकाकार--मू. ३०००) लगभग।

तिलोयपण्णति भाग-१-२	८००)	पांडवपुराण	२००)
प्राकृतशब्दानुशासन	१००)	सिद्धांतसार संग्रह	२००)
जम्बूद्वीपपण्णति संग्रह	२००)	कुन्दकुन्दप्राभृत संग्रह	२००)
भट्टारक सम्प्रदाय	१००)	पद्मनन्दी पंचविंशति	२००)
आत्मानुशासन	१००)	गणितसार संग्रह	४०)
लोकविभाग	१००)	पुण्यास्त्रवकथाकोष	२००)
चंद्रप्रभु चरित्र	१५०)	समाधिशतक	२०)
रईधू ग्रंथावली भाग-१	१४०)	धर्मपरीक्षा	१६०)
रईधू ग्रंथावली भाग-२	१४०)	अर्थप्रकाशिका	१२०)
शांतिनाथ पुराण	१२०)	भग.आराधना भाग-१-२	४००)
सुभाषित रत्नसंदोह	१२०)	आलापपधधति	२४)
श्रावकाचार भाग-१	२४०)	श्रावकाचार भाग-२	१६०)
श्रावकाचार भाग-३	१६०)	श्रावकाचार भाग-४	१६०)
श्रावकाचार भाग-५	१६०)	ज्ञानार्णव	३४०)
भरतेश वैभव भाग-१	४०)	भरतेश वैभव भाग-२	६०)
भरतेश वैभव भाग-३	१५)	भरतेश वैभव भाग-४	४०)

दिगम्बर जैन पुस्तकाथ, गांधीचौक, सुरत

(0261) 2590621

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री उमास्वामी विरचित-

मोक्षशास्त्र सटीक

प्रथम अध्याय

मङ्गलाचरण

दोहा- *वीरवदन-हिमगिरिनिकसि, फैली जो जग रङ्ग।*
नय-तरङ्ग युत गङ्ग वह, क्षालै पाप अभङ्ग।

मोक्षमार्गस्य नेतारं[1], भेत्तारं कर्मभूभृताम्[2]।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद्गुणलब्धये ॥

अर्थ- मैं मोक्षमार्गके नेता, कर्मरूपी पर्वतोके भेदन करनेवाले और समस्त तत्त्वोंको जाननेवाले आप्तको उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये वन्दना करता हूँ।

विशेष- यद्यपि इस श्लोकमें विशेष्य-आप्तका निर्देश नहीं किया गया है तथापि विशेषणों द्वारा उसका बोध हो जाता है, क्योंकि मोक्ष मार्गका नेतृत्व, कर्मरूपी पर्वतोंका भेत्तृत्व और समस्त तत्वोंका ज्ञातृत्व आप्त अर्थात् अर्हंत देवमें ही संभव होता है। यहां विशेष्यका उल्लेख न कर मात्र विशेषणोंका निर्देश कर वन्दना करनेवाले आचार्यने अपना यह

---

1. जो स्वयं मार्ग पर चलकर अन्य पुरूषोंको मार्ग प्रदर्शन करता है, वह नेता कहलाता है। 2. इष्टसिद्धिमें पर्वतोंके समान बाधक होनेके कारण कर्मोमें पर्वतोंका आरोप किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिप्राय प्रकट किया है कि मैं व्यक्ति विशेषका पूजक न होकर गुणोंका पूजक हूँ जिसमें मोक्षमार्गका नेतृत्व-हितोपदेशीपना, कर्मभूभृद् भेत्तृत्व-वीतरागता और विश्वतत्वज्ञातृत्व-सर्वज्ञता ये तीन गुण हों, मैं उसीका पूजक हूँ, वही मेरा आराध्य देव हैं।[1]

मोक्षप्राप्तिका उपाय

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः[2] ॥१॥

अर्थ-(सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर (मोक्षमार्गः) मोक्षके मार्ग अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिके उपाय हैं।

सम्यग्ज्ञान- संशय[3] विपर्यय[4] और अनध्यवसायरहित[5] जीवादि पदार्थोंका जानना सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यक्चारित्र-मिथ्यादर्शन, कषाय तथा हिंसा आदि संसारके कारणोंसे विरक्त होना सम्यक्चारित्र कहलाता है। सम्यग्दर्शनका लक्षण आगेके सूत्रमें कहते हैं ॥१॥

---

1. आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत्॥ (समन्तभद्र)
राग आदि दोष रहित सर्वज्ञ और हितोपदेशी ही आप्त हो सकता है।

2. 'मोक्षमार्गः' इस पदमें व्याकरणके नियमके अनुसार बहुवचन होना चाहिये था पर आचार्यने एकवचन ही रखा है इससे सूचित होता है कि सम्यग्दर्शन आदि तीनोंका मिलना ही मोक्षका मार्ग है।

3. अनिश्चित ज्ञान, जैसे यह सीप है या चांदी।

4. उल्टा ज्ञान, जैसे रस्सीमें सांपका ज्ञान।

5. अनिश्चित तथा विकल्परहित ज्ञान, जैसे चलते समय पावोंसे छूए हुए पत्थर वगैरहमें कुछ है ' इस प्रकारका ज्ञान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शनका लक्षण-

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

अर्थ- (तत्त्वार्थश्रद्धानम्) तत्त्व-वस्तुके यथार्थ स्वरूप सहित अर्थ जीवादि पदार्थोंका श्रद्धान करना (सम्यग्दर्शनम्) सम्यग्दर्शन (अस्ति) है।

भावार्थ-चौथे सूत्रमें कहे जानेवाले जीव आदि सात तत्त्वोंका जैसा स्वरूप वीतराग-सर्वज्ञ भगवानने कहा है उसका उसी प्रकार श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शनके, उत्पत्तिकी अपेक्षा भेद-

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ॥ ३ ॥

अर्थ- (तत्) वह सम्यग्दर्शन (निसर्गात्) स्वभावसे (आ) अथवा (अधिगमात्) परके उपदेश आदि से (उत्पद्यते) उत्पन्न होता है। इस प्रकार सम्यग्दर्शनके उत्पत्तिकी अपेक्षा दो भेद हैं-१-निसर्गज, २ अधिगमज।

निसर्गज- जो परके उपदेशके बिना अपने आप (पूर्वभवके संस्कार) से उत्पन्न हो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अधिगमज- जो परके उपदेश आदिसे होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते है [1] ॥ ३ ॥

तत्वोंके नाम-

जीवाजीवास्त्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम्।

अर्थ- (जीवाजीवास्त्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षाः) जीव, अजीव,

1. उक्त दोनों भेदोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ इन सात कर्मप्रकृतियोंका उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशमका होना आवश्यक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात (तत्त्वम्) तत्त्व (सन्ति) हैं।

जीव- जिसमें ज्ञानदर्शनरूप चेतना पाई जावे उसे जीव कहते हैं।

अजीव- जिसमें चेतना न पाई जावे उसे अजीव कहते हैं।

आस्त्रव- बन्धके कारणको आस्त्रव कहते हैं।

बन्ध- आत्माके प्रदेशोंके साथ कर्मोका दूध-पानीकी तरह मिल जाना बन्ध है।

संवर- आस्त्रवके रूकनेको संवर कहते हैं।

निर्जरा- आत्माके प्रदेशोंसे पहले बन्धे हुए कर्मोका एकदेश पृथक होना निर्जरा है।

मोक्ष- समस्त कर्मोके बिलकुल क्षय हो जानेको मोक्ष कहते हैं [2] ॥४॥

सात तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदिके व्यवहारके कारण-

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्यासः ॥५॥

अर्थ-(नामस्थापनाद्रव्यभावतः) नाम, स्थापना, द्रव्य और भावसे (तत् न्यासः) उन सात तत्वों तथा सम्यग्दर्शन आदिका लोकव्यवहार (भवति) होता है। नाम आदि चार पदार्थ ही चार निक्षेप [3] कहलाते हैं।

नामनिक्षेप- गुण, जाति, द्रव्य और क्रियाकी अपेक्षाके विना ही इच्छानुसार किसीका नाम रखनेको नामनिक्षेप कहते हैं। जैसे किसीका नाम 'जिनदत्त' है। यद्यपि वह जिनदेवके द्वारा नहीं दिया गया है तथापि लोकव्यवहार चलानेके लिये उसका जिनदत्त नाम रख लिया गया है।

स्थापनानिक्षेप- धातु काष्ठ पाषाण आदिकी प्रतिमा तथा अन्य पदार्थोमें 'यह वह है' इस प्रकार किसीकी कल्पना करना स्थापनानिक्षेप

2. इन्हीं सात तत्वोंमें पुण्य और पाप मिला देनेसे ९ पदार्थ हो जाते है। यहां उनका आस्त्रव और बन्धमें अन्तर्भाव हो जानेसे अलग कथन नहीं किया है।

3. प्रमाण और नयके अनुसार प्रचलित हुए लोकव्यवहारको निक्षेप कहते है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

है। इसके दो भेद हैं-१-तदाकार स्थापना और २-अतदाकार स्थापना। जिस पदार्थका जैसा आकार है उसमें उसी आकारवालेकी कल्पना करना तदाकार स्थापना है - जैसे पार्श्वनाथकी प्रतिमामें पार्श्वनाथकी कल्पना करना। और भिन्न आकारवाले पदार्थोमें किसी भिन्न आकारवालेकी कल्पना करना अतदाकार स्थापना है। जैसे शतरंजकी गोटोंमें बादशाह, वजीर वगैरहकी कल्पना करना। [3]

द्रव्यनिक्षेप- भूत भविष्यत् पर्यायकी मुख्यता लेकर वंतमानमें कहना सो द्रव्यनिक्षेप है। जैसे पहले कभी पूजा करनेवाले पूरूषको वर्तमानमें पूजारी कहना और भविष्यत्में राजा होनेवाले राजपुत्रको राजा कहना।

भावनिक्षेप-केवल वर्तमान पर्यायकी मुख्यतासे अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप कहना भावनिक्षेप है। जैसे-काष्ठको काष्ठ अवस्थामें काष्ठ, आग होने पर आग और कोयला हो जानेपर कोयला ॥५॥

सम्यग्दर्शन आदि तथा तत्वोंके जाननेके उपाय-

प्रमाणनयैरधिगमः ॥ ६ ॥

अर्थ- सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय और जीव आदि तत्वोंका (अधिगमः) ज्ञान (प्रमाणनयैः) प्रमाण आर नयोंसे (भवति) होता हैं।

प्रमाण- जो पदार्थके सर्वदेशको ग्रहण करे उसे प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद हैं-१-प्रत्यक्षप्रमाण और २-परोक्षप्रमाण। आत्मा जिस ज्ञानके द्वारा किसी बाह्य निमित्तकी सहायतासे विना ही पदार्थोको स्पष्ट जाने उसे प्रत्यक्षप्रमाण कहते हैं और इन्द्रिय तथा प्रकाश आदिकी सहायतासे पदार्थोको एक-देश जाने उसे परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

नय- जो पदार्थके एकदेशको विषय करे-जाने उसे नय कहते हैं।

---

३. नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपमें अन्तर-नामनिक्षेप में पूज्य अपूज्यका व्यवहार नहीं होता. परंतु स्थापनानिक्षेपमें पूज्य अपूज्यका व्यवहार होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके दो भेद हैं-१-द्रव्यार्थिक, २-पर्यायार्थिक। जो मुख्यरूपसे द्रव्यको विषय करे उसे द्रव्यार्थिक और जो मुख्य रूपसे पर्यायको विषय करे उसे पर्यायार्थिक नय कहते हैं [1] ॥ ६ ॥

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः

अर्थ- निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान इनसे भी जीवादिक तत्व तथा सम्यग्दर्शन आदिका व्यवहार होता हैं।

निर्देश- वस्तुके स्वरूपका कथन करना सो निर्देश है।
स्वामित्व- वस्तुके अधिकारको स्वामित्व कहते हैं।
साधन- वस्तुकी उत्पत्तिके कारणको साधन कहते हैं।
अधिकरण- वस्तुके आधारको अधिकरण कहते हैं।
स्थिति- वस्तुके कालकी अवधिको स्थिति कहते हैं।
विधान- वस्तुके भेदोंको विधान कहते हैं ॥ ७ ॥ [2]

1. इन अवान्तर भेदोंकी विवक्षासे ही सूत्रमें द्विवचनके स्थान पर बहुवचनका प्रयोग किया गया है।

2. ऊपर कहे हुए छह अनुयोगोंसे सम्यग्दर्शनका वर्णन इस प्रकार है।

निर्देश- जीव आदि तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करना।

स्वामित्व- संज्ञी, पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक भव्य जीव।

साधन- साधनके दो भेद है। १. अन्तरङ्ग और २. बाह्य। दर्शनमोहके उपशम क्षय अथवा क्षयोपशमको अन्तरंग साधन कहते है, यह सबके एकसा होता है। बाह्य साधन कई प्रकारका होता है। जैसे नरक गतिमें तीसरे नरक तक ' जाति स्मरण ' ' धर्मश्रवण ' और ' दुखानुभव ' ये तीन तथा चौथेसे सातवें तक ' जातिस्मरण ' और ' दुखानुभव ' ये दो साधन है। तिर्यञ्च और मनुष्यगतिमें ' जातिस्मरण ' ' धर्मश्रवण' और ' जिनबिम्ब-दर्शन ' ये तीन साधन है। देवगतिमें बारहवें स्वर्गके पहले ' जातिस्मरण' ' धर्मश्रवण ', ' जिनकल्याणक दर्शन ' और ' देवर्द्धिदर्शन ' ये चार उसके आगे सोलहवें स्वर्ग तक ' देवर्द्धिदर्शन ' को छोड़कर तीन तथा नवग्रैवेयकोंमें ' जातिस्मरण ' और ' धर्मश्रवण ' ये दो साधन है। इसके आगे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्त्वैश्च ॥

अर्थ- (च) और सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भी पदार्थका ज्ञान (भवति) होता हैं।

सत्- वस्तुके अस्तित्वको सत् कहते हैं।

संख्या -वस्तुके परिणामोंकी गिनतीको संख्या कहते हैं।

क्षेत्र- वस्तुके वर्तमान कालके निवासको क्षेत्र कहते हैं।

स्पर्शन- वस्तुके तीनों काल संबंधी निवासको स्पर्शन कहते है।

काल- वस्तुके ठहरनेकी मर्यादाको काल कहते हैं।

अन्तर- वस्तुके विरहकालको अन्तर कहते हैं।

भाव- औपशमिक, क्षायिक आदि परिणामोंको भाव कहते हैं।

अल्पबहुत्व- अन्य पदार्थकी अपेक्षा किसी वस्तुकी हीनाधिकता वर्णन करनेको अल्पबहुत्व कहते हैं।

अधिकरण- अधिकरणके दो भेद है। १. आभ्यंतर और २. बाह्य सम्यग्दर्शनका आभ्यन्तर अधिकरण आत्मा है और बाह्य अधिकरण एक रज्जु चौड़ी और चौदह रज्जु लम्बी त्रसनाडी है।

विधान- सम्यग्दर्शनके तीन भेद है। १. औपशमिक, २. क्षायोपशमिक, और ३. क्षायिक।

स्थिति- तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंकी जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है तथा औपशमिक सम्यक्त्वकी उत्कृष्ट स्थिति भी अंतर्मुहूर्त है। क्षायोपशमिकको उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर और क्षायिककी संसारमें रहनेकी उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर तथा अंतर्मुहूर्त सहित, आठ वर्ष कम दो कोटिवर्ष पूर्वकी है।

इसी तरह सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र तथा जीव आदि तत्वोंका भी वर्णन यथायोग्य रूपसे लगा लेना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्ज्ञानका वर्णन, ज्ञानके भेद और नाम-

मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

अर्थ- (मतिश्रुतावधिमन:पर्ययकेवलानि) मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवल ये पांच प्रकारके (ज्ञानं) ज्ञान (सन्ति) है।

मतिज्ञान- जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे पदार्थको जाने उसे मतिज्ञान कहते हैं।

श्रुतज्ञान- जो पांच इन्द्रियों और मनकी सहायतासे मतिज्ञानके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेष रूपसे जानता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान- जो इन्द्रियोंकी सहायताके बिना ही रूपी पदार्थोको द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी मर्यादा लिये हुए स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मन:पर्ययज्ञान- जो किसीकी सहायताके बिना ही अन्य पुरूषके मनमें स्थित, रूपी पदार्थोको स्पष्ट जाने उसे मन:पर्ययज्ञान कहते हैं ॥९ ॥

केवलज्ञान- जो सब द्रव्यों तथा उनकी सब पर्यायोंको एकसाथ स्पष्ट जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं ॥ ९ ॥

प्रमाणका लक्षण और भेद-

तत्प्रमाणे ॥ १० ॥

अर्थ- तत् उपर कहा हुआ पांच प्रकारका ज्ञान ही (प्रमाणे) प्रमाण (अस्ति) है।

भावार्थ- सम्यग्ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। उसके दो भेद हैं- १-प्रत्यक्ष, २-परोक्ष ॥ १० ॥

परोक्ष प्रमाणके भेद-

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

अर्थ- (आद्ये) आदिके दो अर्थात् मतिज्ञान और श्रुतज्ञान (परोक्षम्) परोक्ष प्रमाण (स्तः) हैं ॥ ११ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष प्रमाणके भेद-

प्रत्यक्षमन्यत् ॥१२॥

अर्थ- (अन्यत्) शेष तीन अर्थात् अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान (प्रत्यक्षम्) प्रत्यक्ष प्रमाण हैं ॥ १२ ॥

मतिज्ञानके दूसरे नाम-

मतिः स्मृतिः संज्ञाचिन्ताभिनिबोधइत्य-नर्थान्तरम् ॥ १३ ॥

अर्थ- मति, स्मृति, संज्ञा, चिंता और अभिनिबोध इत्यादि अन्य पदार्थ नहीं हैं अर्थात् मतिज्ञानके ही नामान्तर हैं।

मति- मन और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालके पदार्थोंका जानना मति है।

स्मृति- पहले जाने हुए पदार्थका वर्तमानमें स्मरण आनेको स्मृति कहते हैं।

संज्ञा- वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर 'यह वही है' इस प्रकार स्मरण और प्रत्यक्षके जोड़रूप ज्ञानको संज्ञा कहते हैं। इसीका दूसरा नाम 'प्रत्यभिज्ञान' है।

चिंता- 'जहां जहां धूम होता है वहां वहां अग्नि अवश्य होती है- जैसे रसोईघर' इस प्रकारके व्याप्ति ज्ञानको चिंता कहते हैं।

अभिनिबोध- साधनसे साध्यका ज्ञान होनेको अभिनिबोध कहते हैं-जैसे उस पहाड़ में अग्नि है, क्योंकि उसपर धूम है' इसीका दूसरा नाम 'अनुमान' है।[1]

---

1. ये सब ज्ञान मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं इसलिये निमित्त सामान्यकी अपेक्षासे सबको एक कहा है परन्तु इन सबमें स्वरूप भेद-अर्थभेद अवश्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिज्ञानकी उत्पत्तिका कारण और स्वरूप-

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

अर्थ- (तत्) वह मतिज्ञान (इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्) पांच इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता है ॥ १४ ॥

मतिज्ञानके भेद-

अवग्रहेहावायधारणाः ॥ १५ ॥

अर्थ- मतिज्ञानके अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चार भेद है।

अवग्रह- दर्शनके [2] बाद शुक्ल कृष्ण आदि रूपविशेषका ज्ञान होना अवग्रह है।

ईहा- अवग्रहके द्वारा जाने हुए पदार्थको विशेषरूपसे जाननेकी चेष्टा करना ईहा है। जैसे-वह शुक्लरूप बगुला है या पताका ईहा ज्ञानको 'यह चांदी है या सीप' इत्यादिकी तरह संशयरूप नहीं समझना चाहिए, क्योंकि संशयमें अनिश्चित अनेक कोटियोंका अवलंबन रहता है जो कि यहां नहीं है यहां बगुलाका और पताकाका कथन दो उदाहरणोंकी अपेक्षा है। उसका स्पष्ट भाव यह है-यदी यह बगुला है तो बगुला होना चाहिये। और यदि पताका है तो पताका होना चाहिये। ईहामें भवितव्यतारूप प्रत्यय ज्ञान होता है।

अवाय- विशेष चिह्न देखनेसे उसका निश्चय हो जाना सो अवाय है। जैसे-उस शुक्ल पदार्थमें पंखोंका फड़फड़ाना उड़ना आदि चिह्न देखनेसे बगुलाका निश्चय होना।

---

2. छद्मस्थ जीवोंके ज्ञानसे पहले दर्शन होता है। किसी वस्तुकी सत्ता मात्रके देखनेको दर्शन कहते है। इसका विषय बहुत सूक्ष्म होता है जो कि उदाहरणसे नहीं समझाया जा सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारणा- अवायसे निश्चय किये हुए पदार्थको कालान्तरमें नहीं भूलना धारणा है ॥ १५ ॥

अवग्रह आदिके विषयभूत पदार्थ-

बहुबहुविधक्षिप्रानिः सृतानुक्तध्रुवाणां-सेतराणां ॥१६ ॥

अर्थ- (सेतराणाम्-बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणाम्) अपने उल्टे भेदों सहित बहु, आदि अर्थात् बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिः सृत, अनुक्त ध्रुव और इनसे उल्टे एक, एकविध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त तथा अध्रुव इन बारह प्रकारके पदार्थोका अवग्रह ईहादिरूप ज्ञान होता है।

१. बहु [1] -एकसाथ बहुत पदार्थोका अवग्रहादि होना । जैसे-गेंहूकी राशि देखनेसे बहुतसे गेंहूओंका ज्ञान।

२. बहुविध-बहुत प्रकारके पदार्थोका अवग्रहादि होना। जैसे-गेंहू, चना, चांवल आदि कई पदार्थोका ज्ञान।

३. क्षिप्र-शीघ्रतासे पदार्थका ज्ञान होना।

४. अनिः सृत-एकदेशके ज्ञानसे सर्वदेशका ज्ञान होना-जैसे-बाहर निकली हुई सूंड देखकर जलमें डूबे हुए पूरे हाथीका ज्ञान होना ।

५. अनुक्त-वचनसे कहे बिना अभिप्रायसे जान लेना। जैसे-मुंहकी सूरत तथा हाथ आदिके इशारेसे प्यासे मनुष्यका ज्ञान होना।

६. ध्रुव-बहुत कालतक जैसाका तैसा ज्ञान होते रहना।

७. एक-अल्प वा एक पदार्थका ज्ञान ।

८. एकविध-एक प्रकारकी वस्तुओंका ज्ञान होना एकविध ज्ञान है जैसे-एक, सदृश गेहुँओंका ज्ञान।

९. अक्षिप्र-चिरग्रहण-किसी पदार्थको धीरे धीरे बहुत समयमें जानना।

1. यद्यपि बहु आदि बारह प्रकारके पदार्थ है तथापि सुविधाकी दृष्टिसे यहां उनका ज्ञानपरक लक्षण लिखा गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. निसृत-बाहर निकले हुए प्रकट पदार्थोंका ज्ञान होना।

११. उक्त-शब्द सुननेके बाद ज्ञान होना ।

१२. अध्रुव-जो क्षण क्षण हीन अधिक होता रहे उसे अध्रुव ज्ञान कहते हैं ॥ १६ ॥

अर्थस्य ॥१७॥

अर्थ- उपर कहे हुए बहु आदि बारह भेद पदार्थ-द्रव्यके हैं अर्थात् बहु आदि विशेषण विशिष्ट पदार्थके ही अवग्रह आदि ज्ञान होते हैं' ॥१७॥

अवग्रह ज्ञानमें विशेषता-

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

अर्थ- (व्यञ्जनस्य) प्रकट रूप शब्दादि पदार्थोंका (अवग्रहः) सिर्फ अवग्रह ज्ञान होता है। ईहादिक तीन ज्ञान नहीं होते।

भावार्थ- अवग्रहके दो भेद हैं-१-व्यञ्जनावग्रह और २-अर्थावग्रह।

व्यञ्जनावग्रह-अव्यक्त-अप्रकट पदार्थके अवग्रहको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं।

अर्थावग्रह- व्यक्त-प्रकट पदार्थके अवग्रहको अर्थावग्रह कहते हैं ॥ १८ ॥

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ॥ १९ ॥

अर्थ- (चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्) नेत्र और मनसे व्यञ्जनावग्रह (न)

---

1. किसीका मत है की चक्षु आदि इन्द्रियां, रूप, आदि गुणोंको ही जानती है क्योंकि इन्द्रियोंका सन्निकर्ष (सम्बन्ध) उन्हीके साथ होता है। उस मतका खण्डन करनेके लिये ही ग्रंथकर्ताने ' अर्थस्य ' यह सूत्र लिखा है। इससे सिद्ध होता है कि इन्द्रियोंका सम्बन्ध पदार्थके ही साथ होता है, केवल गुणके साथ नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होता हैं[1] *॥ १९ ॥*

श्रुतज्ञानका वर्णन, श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिका क्रम और भेद-

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम् ॥ २० ॥

अर्थ- (श्रुतम्) श्रुतज्ञान (मतिपूर्वम्[2] *) मतिज्ञानपूर्वक होता है अर्थात् मतिज्ञान उसका पूर्व कारण है। और वह श्रुतज्ञान (द्व्यनेकद्वादशः भेदम्) दो, अनेक तथा बारह भेदवाला है।*

भावार्थ- श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। उसके दो भेद हैं १-अङ्ग बाह्य और अङ्ग प्रविष्ट। उनमेंसे अङ्ग बाह्यके अनेक भेद हैं और अङ्ग प्रविष्टके १-आचारांग, २-सूत्रकृताङ्ग, ३-स्थानाङ्ग, ४-समवायाङ्ग, ५-व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग, ६-ज्ञातृधर्मकथाङ्ग, ७-उपासकाध्ययनाङ्ग, ८-अंतकृद्दशाङ्ग, ९-अनुत्तरोपपादिकदशाङ्ग, १०-प्रश्नव्याकरणाङ्ग, ११ विपाकसूत्राङ्ग, और १२-दृष्टिप्रवादाङ्ग, ये बारह भेद हैं। इनमेंसे दृष्टिप्रवाद नामक बारहवें अंगके ५ भेद हैं-१-परिकर्म, २-सूत्र, ३-प्रथमानुयोग, ४-पूर्वगत और ५-चूलिका। परिकर्म५ भेदहैं। १-व्याख्याप्रज्ञप्ति, २-द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ३-जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ४-सूर्यप्रज्ञप्ति, और ५-चंद्रप्रज्ञप्ति। चूलिकाके ५ भेद हैं-१-जलगता, २-स्थलगता, ३-मायागता, ४-आकाशगता और ५-रूपगता। सूत्रगत और प्रथमानुयोगके एक२ ही भेद हैं। पूर्वगतके १४ भेद है- १-उत्पाद, २-अग्रायणी, ३-वीर्यानुवाद, ४-अस्तिनास्तिप्रवाद, ५-ज्ञानप्रवाद, ६-सत्यप्रवाद, ७-आत्मप्रवाद, ८-कर्मप्रवाद, ९-प्रत्याख्यान, १०-विद्यानुवाद, ११-कल्याणानुवाद, १२-प्राणावायप्रवाद, १३-क्रियाविशाल और १४-लोकबिन्दु। इन सबके पदोंका प्रमाण तथा विषय वगैरह राजवार्तिक आदि उच्च ग्रन्थोंसे जानना चाहिये।

---

1. बहु आदि १२ पदार्थोंको अवग्रह आदि ४ प्रकारके ज्ञान, पांच इन्द्रियां और मन इन छहकी सहायतासे होते हैं, इसलिये १२×४=४८×६=२८८ भेद हुए। इनमें व्यंजनावग्रहके १२×४=४८ भेद जोड़नेसे कुल २८८+४८=३३६ मतिज्ञानके प्रभेद होते हैं।

2. श्रुत ज्ञान मतिज्ञान के बाद होता है। यहाँ पूर्वका अर्थ कारण भी होता है, इसलिये 'मतिपूर्वक' इस पदका अर्थ 'मतिज्ञान है कारण जिसका' यह भी हो सकता है। 'मतिः पूर्वमस्य मतिपूर्वं - मतिकारणं इत्यर्थः।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मतिज्ञान के ३३६ भेद।

मतिज्ञान

१ अवग्रह — व्यञ्जनावग्रह		१ अवग्रह — अर्थावग्रह		२ ईहा		३ अवाय		४ धारणा	
बहु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, कर्ण	बहु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन	बहु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन।	बहु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन।	बहु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, मन।
बहुविध		बहुविध		बहुविध		बहूविध		बहुविध	
क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र		क्षिप्र	
अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत		अनिःसृत	
अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त		अनुक्त	
ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव		ध्रुव	
एक		एक		एक		एक		एक	
एकविध		एकविध		एकविध		एकविध		एकविध	
अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र		अक्षिप्र	
निःसृत		निःसृत		निःसृत		निःसृत		निःसृत	
उक्त		उक्त		उक्त		उक्त		उक्त	
अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव		अध्रुव	
१२×४		१२×६		१२×६		१२×६		१२×६	
४८	+	७२	+	७२	+	७२	+	७२ = ३३६	

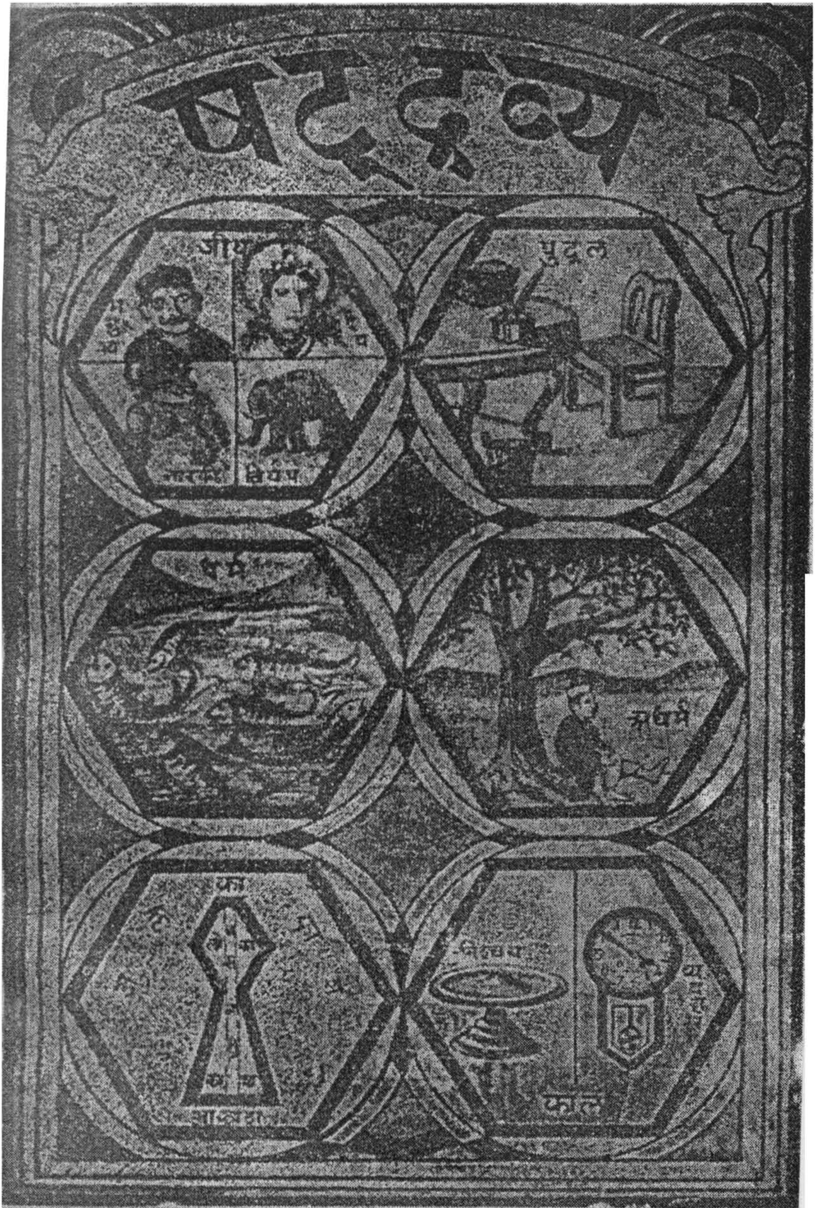

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञानका विस्तार

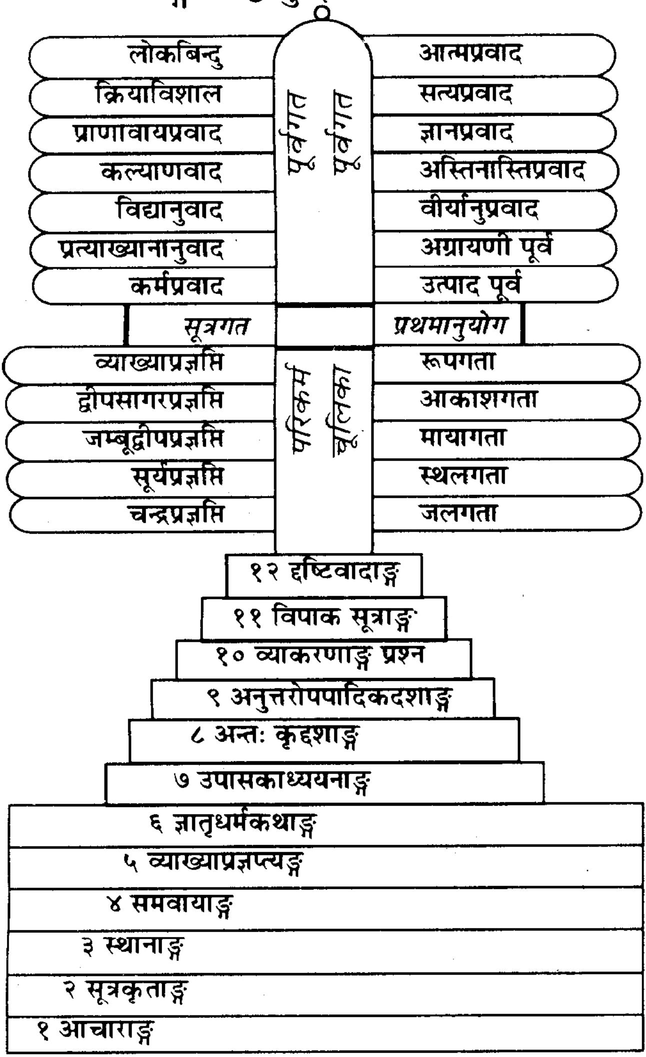

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानका वर्णन-

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्[1] ॥२१॥

अर्थ- (भवप्रत्ययः) भवप्रत्यय नामका (अवधिः) अवधिज्ञान (देवनारकाणाम्) देव और नारकियोंके होता हैं।[2]

भावार्थ- अवधिज्ञानके दो भेद हैं-भवप्रत्यय और २ गुणप्रत्यय (क्षायोपशमिक)

भवप्रत्यय-देव और नरक भव (पर्याय) के कारण जो उत्पन्न हो उसे भवप्रत्यय कहते हैं।

गुणप्रत्यय- जो किसी पर्याय-विशेषकी अपेक्षा न रखकर अवधिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होवे उसे गुणप्रत्यय अथवा क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं।

नोट-यहां इतना स्मरण रखना चाहिये कि भवप्रत्यय अवधिज्ञानमें भी अवधिज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम रहता है। पर वह क्षयोपशम देव और नरक पर्यायमें नियमसे प्रकट हो जाता है।

क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद और स्वामी-

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्।२२।

अर्थ- (क्षयोपशमनिमित्तः) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान (षड्विकल्पः) अनुगामी, अननुगामी वर्धमान, हीयमान, अवस्थित और अनवस्थित, इस प्रकार छह भेदवाला है और वह (शेषाणाम्) मनुष्य तथा तिर्यञ्चोके (भवति) होता है।

अनुगामी- जो अवधिज्ञान सूर्यके प्रकाशकी तरह जीवके साथ-साथ जावे उसे अनुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-१-क्षेत्रानुगामी,

---

1. तिर्थंकरोंके भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है।

2. सम्यग्दृष्टि देव नारकियोंके अवधि और मिथ्यादृष्टि देव नारकियोंके कुअवधि होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२-भवानुगामी, और ३-उभयानुगामी।

अननुगामी- जो अवधिज्ञान साथ नहीं जावे उसे अननुगामी कहते हैं। इसके तीन भेद हैं-१-क्षेत्राननुगामी, २-भवाननुगामी और ३-उभयाननुगामी।

वर्द्धमान- जो शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह बढ़ता रहे उसे वर्द्धमान कहते हैं।

हीयमान- जो कृष्णपक्षके चन्द्रमाकी कलाओंकी तरह घटता रहे उसे हीयमान कहते हैं।

अवस्थित- जो अवधिज्ञान एक रहे न घटे न बढ़े उसे अवस्थित कहते हैं। जैसे सूर्य अथवा तिल आदिके चिह्न।

अनवस्थित- जो हवासे प्रेरित जलकी तरङ्गकी तरह घटता बढ़ता रहे-एकसा न रहे उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं ॥ २२॥

दूसरे ग्रन्थोंमें अवधिज्ञानके नीचे लिखे हुए तीन भेद भी बतलाये हैं। १-देशावधि, २-परमावधि, ३-सर्वावधि। इनमें देशावधि चारों गतियोंमें हो सकता है परन्तु परमावधि और सर्वावधि चरम शरीरी मुनियोंको ही होता है। इनका स्वरूप और विषय अन्य ग्रन्थोंसे जानना चाहिये।

मनःपर्यय ज्ञानके भेद-

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥२३॥

अर्थ-(मनःपर्ययः) मनः पर्ययज्ञान (ऋजुविपुलमती) ऋजुमति और विपुलमतिके भेदसे दो प्रकारका है।

ऋजुमति- जो मन, वचन, कायकी सरलतासे चिंतित दूसरेके मनमें स्थित रूपी पदार्थको जाने, उसे ऋजुमती मनः पर्ययज्ञान कहते है।

विपुलमति- जो सरल तथा कुटिलरूपसे चिंतित परके मनमें स्थित रूपी पदार्थको जाने उसे विपुलमति मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुमति और विपुलमतीमें अंतर–

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ॥२४॥

अर्थ– (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम्) परिणामोंकी शुद्धता और अप्रतिपात–केवलज्ञान होनेके पहले नहीं छूटना, इन दो बातोंसे (तद्विशेषः)– ऋजुमती और विपुलमतीमें विशेषता है।

भावार्थ– ऋजुमतीकी अपेक्षा विपुलमतीमें आत्माके भावोंकी विशुद्धता अधिक होती है। तथा ऋजुमती होकर छूट भी जाता है पर विपुलमती केवलज्ञानके पहले नहीं छूटता ऋजुमती उन मुनियोंके भी हो जाता है जो उपरके गुणस्थानोंसे गिरकर नीचे आ जाते हैं पर विपुलमती जिन्हें होता है उन मुनियोंका नीचेके गुणस्थानोंमें पतन नहीं होता, दोनों भेदोंमें मनःपर्यय ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमकी अपेक्षा ही हीनाधिकता रहती है मनःपर्यय ज्ञान मुनियोंके ही होता है ॥२४॥

अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें विशेषता–

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः ॥२५॥

अर्थ– (अवधिमनः पर्यययोः) अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें (विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः) विशुद्धता, क्षेत्र, स्वामि[1] और विषयकी अपेक्षा (विशेषः भवति) विशेषता होती है।

भावार्थ– विशुद्धि आदिकी न्यूनाधिकतासे अवधि और मनःपर्ययज्ञानमें भेद होता है ॥२५॥

---

1. मनःपर्ययज्ञान उत्तम ऋद्धिधारी मुनियोंको ही होता है, पर अवधिज्ञान चारों गतियोंके जीवोंको हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानके भेद

(क)

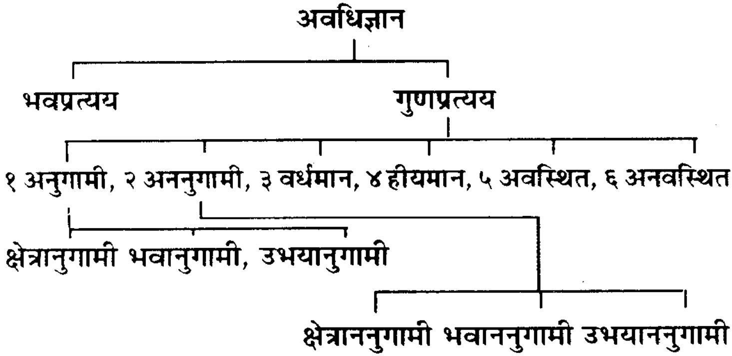

(ख)

मति और श्रुतज्ञानका विषय-

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ॥ २६ ॥

अर्थ- (मतिश्रुतयोः) मतिज्ञान और श्रुतज्ञानका (निबन्धः) विषय सम्बन्ध (असर्वपर्यायेषु) सब पर्यायोंसे रहित (द्रव्येषु) जीव पुद्गल आदि सब द्रव्योंमें (अस्ति) है।

भावार्थ- इन्द्रिय और मनकी सहायतासे उत्पन्न हुए मतिश्रुतज्ञान, रूपी अरूपी सभी द्रव्योंको जानते हैं पर उनकी सभी पर्यायोंको नहीं जान पाते। इसलिए उनका विषय सम्बन्ध द्रव्योंकी कुछ पर्यायोंकें साथ होता है ॥ २६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवधिज्ञानका विषय-

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

अर्थ-(अवधेः) अवधिज्ञानका विषय-सम्बन्ध (रूपिषु)[1] रूपी द्रव्योंमें है अर्थात् अवधिज्ञान रूपी पदार्थोंको जानता है ॥ २७ ॥

मनःपर्यय ज्ञानका विषय-

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

अर्थ- (तदनन्तभागे) सर्वावधि[2] ज्ञानके विषयभूत रूपी द्रव्यके अनंतवें भागमें (मनःपर्ययस्य) मनःपर्यय ज्ञानका विषयसम्बन्ध है।

भावार्थ- सर्वावधि जिस रूपी द्रव्यको जानता है उससे बहुत सूक्ष्म रूपी द्रव्यको मनःपर्यय ज्ञान जानता है ॥ २८ ॥

मनःपर्ययज्ञानके भेद-

मनःपर्यय ज्ञान

१ ऋजुमति | २ विपुलमति

केवलज्ञानका विषय-

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

अर्थ-(केवलस्य) केवलज्ञान विषय-सम्बन्ध (सर्वद्रव्यपर्यायेषु) सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायोंमें है। अर्थात् केवलज्ञान एकसाथ सब पदार्थोंको जानता है ॥ २९ ॥

---

1. जिसमें रूप रस गंध स्पर्श शब्द पाया जावे ऐसे पुद्गलद्रव्य तथा पुद्गलद्रव्यसे संबन्ध रखनेवाले संसारी जीव भी रूपी कहलाते है।

2. अवधिज्ञानका सबसे उंचा भेद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक जीवके एकसाथ कितने ज्ञान हो सकते हैं ?–

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥ ३० ॥

अर्थ– (एकस्मिन्) एक जीवमें (युगपत्) एकसाथ (एकादीनि) एकको आदि लेकर (आचतुर्भ्यः) चार ज्ञानतक (भाज्यानि) विभक्त करनेके योग्य हैं अर्थात् हो सकते हैं।

भावार्थ– यदि एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है। दो हों तो मति-श्रुत होते हैं। तीन हों तो मति श्रुत अवधि अथवा मति श्रुत और मनःपर्यय होते हैं। यदि चार हों तो मति श्रुत अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होते हैं। एकसाथ पांचो ज्ञान किसी भी जीवके नहीं होते। प्रारम्भके चार ज्ञान ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमसे होते हैं और अन्तका केवलज्ञान क्षयसे होता हैं ॥ ३० ॥

मति श्रुत और अवधिज्ञानमें मिथ्यापन–

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

अर्थ– (मतिश्रुतावधयः।) मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान (विपर्ययः च) विपर्यय भी होते हैं। उपर कहे हुए पाँचों ज्ञान सम्यग्ज्ञान होते हैं परन्तु मति श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्याज्ञान भी होते हैं। इन्हें क्रमसे कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान और कुअवधि ज्ञान (विभङ्गावधि) कहते हैं।[1]

नोट– इन तीन ज्ञानोंमें मिथ्यापन मिथ्यादर्शनके संसर्गसे होता है। जैसे मीठे दूधमें कडुवापन कडुवी तूम्बड़ीके संसर्गसे होता है ॥ ३१ ॥

प्रश्न– जिस प्रकार पदार्थोंको सम्यग्दृष्टि जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी जानता है, फिर सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यग्ज्ञान और मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान क्यों कहलाता है ?

---

1. ५ सम्यक् और ३ मिथ्या इस प्रकार सब मिलाकर ज्ञानोपयोगके ८ भेद होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर-

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरून्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

अर्थ- (यदृच्छोपलब्धेः) अपनी इच्छानुसार जैसा तैसा जाननेके कारण (सदसतोः) सत् और असत् पदार्थोंमें (अविशेषात्) विशेष ज्ञान न होनेसे (उन्मत्तवत्) पागल पुरूषके ज्ञानकी तरह मिथ्यादृष्टिका ज्ञान मिथ्याज्ञान ही होता है।

भावार्थ- जैसे पागल पुरूष जब स्त्रीको स्त्री और माताको माता समझ रहा है तब भी उसका ज्ञान मिथ्याज्ञान कहलाता है, क्योंकि उसके माता और स्त्रीके बीचमें कोई स्थिर अन्तर नहीं है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि जब पदार्थोंको ठीक जान रहा है तब भी सत् असत्का निर्णय नहीं होनेसे उनका ज्ञान मिथ्या ज्ञान ही कहलाता है ॥ ३२ ॥

नयोंके भेद-

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जु सूत्रशब्दसमभिरूढैवं भूतानयाः ॥ ३३ ॥

अर्थ- नैगम, संग्रह व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ये सात नय हैं।[1]

नैगम नय- जो नय अनिष्पन्न अर्थके संकल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगम नयहै। जैसे लकड़ी पानी आदि सामग्री इकट्ठी करनेवाले पुरूषसे कोई पूछता है कि आप क्या कर रहे हैं, तब वह उत्तर देता है कि रोटी बना रहा हूँ। यद्यपि उस समय वह रोटी नहीं बना रहा है तथापि नैगम नय उसके इस उत्तरको सत्यार्थ मानता है।

---

1. वस्तुके अनेक धर्मोमेंसे किसी एकको मुख्यता कर अन्य धर्मोका विरोध न करते हुए पदार्थका जानना नय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रह नय- जो नय अपनी जातिका विरोध न करता हुआ एकपनेसे समस्त पदार्थोंको ग्रहण करता है उसे संग्रह नय कहते हैं। जैसे सत्, द्रव्य, घट इत्यादि।

व्यवहार नय- जो नय संग्रह नयके द्वारा ग्रहण किये हुए पदार्थोंको विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहार नय है। जैसे सत् दो प्रकारका है- द्रव्य और गुण। द्रव्यके ६ भेद हैं-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। गुणके दो भेद हैं-सामान्य और विशेष। इस तरह यह नय वहां तक भेद करता जाता है जहां तक भेद हो सकते हैं।

ऋजुसूत्र नय- जो सिर्फ वर्तमान कालके पदार्थोंको ग्रहण करे उसे ऋजुसूत्र नय कहते हैं।

शब्द नय- जो नय लिङ्ग संख्या कारक आदिके व्यभिचारको दूर करता है वह शब्द नय है। यह नय लिङ्गादिके भेदसे पदार्थको भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे दार (पु०) भार्या (स्त्री०) कलत्र (न०) ये तीनों शब्द भिन्न लिङ्गवाले होकर भी एक ही स्त्री पदार्थके वाचक है पर यह नय स्त्री पदार्थको लिङ्गके भेदसे तीन रूप मानता है।

समभिरूड नय- जो नय नाना अर्थोंका उलङ्घन कर एक अर्थको रूढ़िसे ग्रहण करता है उसे समभिरूढ़ नय कहते हैं। जैसे वचन आदि अनेक [1] अर्थोका वाचक गौ शब्द किसी प्रकरणमें गाय अर्थका वाचक होता है। यह नय पर्यायके भेदसे अर्थको भेदरूप ग्रहण करता है। जैसे- इन्द्र शक्र पुरन्दर ये तीनो शब्द इन्द्रके नाम हैं पर यह नय इन तीनोंके भिन्न

1. गौः पुमान् वृषभे स्वर्गे खण्डवज्रहिमांशुषु।
स्त्री गवि भूमिदिग्नेत्रवाग्बाणसलिले स्त्रियः॥
इति विश्वलोचनः।

गौः शब्दके ११ अर्थ हैं - १ बल, २ स्वर्ग, ३ खण्ड, ४ वज्र, ५ चन्द्रना, ६ गाय, ७ भूमि, ८ दिशा, ९ नेत्र, १० वाणी (स्त्री) और ११ जल (स्त्री बहुवचनांत।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भिन्न अर्थ ग्रहण करता है।

एवंभूत- जिस शब्दका जिस क्रियारूप अर्थ है उसी क्रियारूप परिणमते हुए पदार्थको जो मन ग्रहण करता है उसे एवंभूत नय कहते हैं। जैसे पूजारीको पूजा करते समय ही पूजारी कहना।[2]

इतिश्री उमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।

प्रश्नावली

(१) तत्त्व कमसे कम कितने हो सकते हैं ?
(२) सिर्फ सम्यक्‌चारित्रसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है या नहीं ?
(३) निक्षेप किसे कहते हैं ?
(४) नय और प्रमाणमें कितना अन्तर हैं ?
(५) श्रुतज्ञान पहले होता है या मतिज्ञान ?
(६) क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञानके भेद गिनाओ।
(७) मनःपर्यय और अवधिज्ञानमें क्या अन्तर है ?
(८) क्या अवधिज्ञानके बिना भी मनःपर्यय ज्ञान हो सकता है ?
(९) संग्रह नयका क्या स्वरूप है ? उदाहरण सहित बताओ।
(१०) नय और निक्षेपमें क्या अन्तर है ?
(११) क्या नय भी मिथ्या होते हैं ? यदि होते है तो कब ?

2. नय और निक्षेपमें अन्तर- नय ज्ञानके भेद है और निक्षेप उस ज्ञानके अनुसार किये गये व्यवहारको कहते है। इनमें ज्ञान और ज्ञेय, विषयी अथवा विषयका भेद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

जीवके असाधारण भाव-

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ- (जीवस्य) जीवके (औपशमिकक्षायिकौ) औपशमिक और क्षायिक (भावौ) भाव (च मिश्रः) और मिश्र तथा (औदयिकपारिणामिकौच) औदयिक और पारिणामिक ये पांचों ही भाव (स्वतत्वम्) निजके भाव हैं अर्थात् जीवको छोड़कर अन्य किसीसे नहीं पाये जाते।

उपशम तथा औपशमिक भाव- द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रकट न होनेको उपशम कहते हैं और कर्मोंके उपशमसे आत्माका जो भाव होता है उसे औपशमिक भाव कहते हैं। जैसे निर्मलीके संयोगसे पानीकी कीचड़ नीचे बैठ जाती है और पानी साफ हो जाता है।

क्षय तथा क्षायिकभाव- कर्मोंके समूल विनाश होनेको क्षय कहते हैं। जैसे पूर्व उदाहरणमें जो कीचड़ नीचे बैठ गई थी उस कीचड़का बिलकुल अलग हो जाना। कर्मोंके क्षयसे जो भाव होता है उसे क्षायिक भाव कहते हैं।

क्षयोपशम तथा क्षायोपशमिक भाव (मिश्र) का लक्षण- वर्तमानकालमें उदय आनेवाले सर्वघाति[1]-स्पर्द्धकोंका उदयाभावी[2] क्षय तथा उन्हीके आगामीकालमें उदय आनेवाले निषेकोंका[3] सद्वस्थारूप उपशम और देशघातिस्पर्द्धकोंका[4] उदय होनेको क्षयोपशम कहते हैं। जैसे पानीकी स्वच्छताको बिलकुल नष्ट करनेवाले कीचड़के परमाणुओंके

1. जो जीवके सम्यक्त्व तथा ज्ञानादि अनुजीवी गुणोंको पूरी तौरसे घाते उसे सर्वघाती कहते हैं। 2. विना फल दिये हुए उदयागत कर्मोंका खिर जाना। 3. एक समयमें जितने कर्मपरमाणु उदयमें आवें उन सबके समूहको निषेक कहते हैं। 4. जो जीवके ज्ञानादि गुणोंको एकदेश घाते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिले रहनेपर पानीमें स्वच्छास्वच्छ अवस्था होती है। कर्मोंके क्षयोपशमसे जो भाव होता है उसे क्षायोपशमिक भाव कहते हैं।

उदय तथा औदयिक भाव- स्थितिको पूरी करके कर्मोंके फल देनेको उदय कहते हैं और कर्मोंके उदयसे जो भाव होता है उसे औदयिक भाव कहते हैं।

पारिणामिक भाव- जो भाव कर्मोंके उपशम क्षय क्षयोपशम तथा उदयकी अपेक्षा न रखता हुआ आत्माका स्वभाव मात्र हो उसे पारिणामिक भाव कहते हैं।[1]

भावोंके भेद-

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥२॥

अर्थ- उपर कहे हुए पांचों भाव (यथाक्रमम्) क्रमसे (द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदः) दो, नव, अठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं ॥२॥

औपशमिकभावके दो भेद-

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ- औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ये दो औपशमिक भावके भेद है।

औपशमिक सम्यक्त्व-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व तथा सम्यक्त्वप्रकृति इन सात प्रकृतियोंके

---

1. ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय इन तीन घातिया कर्मोकी उदय, क्षय और क्षयोपशम ये तीन, मोहनीय कर्मकी उदय उपशम, क्षय और क्षयोपशम ये चारों तथा शेष कर्मोकी उदय और क्षय ये दो अवस्थाएं होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपशमसे [2] जो सम्यक्त्व होता है उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं ।

औपशमिक चारित्र- अप्रत्याख्यानावरणादि चारित्रमोहनीयकी २१ प्रकृतियोंके उपशमसे जो चारित्र होता है उसे औपशमिक चारित्र कहते हैं ॥ ३ ॥

क्षायिकभावके नौ भेद-

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥४ ॥

अर्थ- केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग, क्षायिकवीर्य तथा 'च' कारसे क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र ये नौ क्षायिकभावके भेद हैं ।[3]

केवलज्ञान- जो ज्ञानावरणके क्षयसे हो। केवलदर्शन-दर्शनावरणके क्षयसे हो। क्षायिकदान आदि पांच भाव-अन्तराय कर्मसे ५ भेदोंके क्षयसे होते हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व-जो ऊपर कही हुई सात प्रकृतियोंके क्षयसे हो।

क्षायिकचारित्र-जो ऊपर कही हुई २१ प्रकृतियोंके क्षयसे हो।

क्षयोपशमिकभावके अठारह भेद-

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंच-भेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥

अर्थ- (ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपंचभेदाः) मतिश्रुत अवधि मनःपर्यय ये चार ज्ञान, कुमति कुश्रुत कुअवधि ये तीन अज्ञान, चक्षुर्दर्शन,

2. अनादि मिथ्यादृष्टि और किसी किसी सादि मिथ्यादृष्टिके अनन्तानुबन्धीकी ४ और मिथ्यात्व १ इन पांच प्रकृतियोंके उपशमसे होता है। 3. इन नौं भावोंको नौ लब्धियां भी कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन ये तीन दर्शन, क्षयोपशमिक दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य ये पांच लब्धियां तथा (सम्क्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक चारित्र और संयमासंयम ये अठारह भाव क्षायोपशमिक भाव हैं।

क्षायोपशमिक सम्यक्त्व- अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मिथ्यात्व सम्यग्मिथ्यात्व इन ६ सर्वघाति प्रकृतियोंके वर्तमानकालमें उदय आनेवाले निषेकोंका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके आगामी कालमें उदय आनेवाले निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम और देशघाति सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेपर जो सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं। इसीका दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व भी है।

क्षायोपशमिक चारित्र- अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंका उदयाभावी क्षय तथा उन्हींके निषेकोंकी सदवस्थारुप उपशम और संज्वलन तथा नोकषायका यथासम्भव उदय होनेपर जो चारित्र होता है उसे क्षायोपशमिक चारित्र कहते हैं। इसीका दूसरा नाम सराग-संयम है।

संयमासंयम- अनंतानुबंधी आदि ८ प्रकृतियोंका उदयाभाषी क्षय और उन्हींके निषेकोंका सदवस्थारूप उपशम तथा प्रत्याख्यानावरणादि १७ प्रकृतियोंका यथासम्भव उदय होनेपर आत्माकी जो विरताविरत अवस्था होती है उसे संयमासंयम कहते हैं ॥५॥

औदयिकभावके इक्कीस भेद-

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥६॥

अर्थ- नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव ये चार गति, क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये तीन लिंग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्यादर्शन,[1] अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व और कृष्ण, नील, कापोत, पीत पद्म शुक्ल ये छह लेश्याएं[2] इस तरह सब मिलाकर औदयिक भावके इक्कीस भेद हैं ॥ ६ ॥

पारिणामिक भावके भेद-

जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥

अर्थ- जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ये तीन पारिणामिक भाव हैं।

नोट- सूत्रमें आये हुऐ 'च' शब्दसे अस्तित्व वस्तुत्व प्रमेयत्व आदि सामान्य गुणोंका भी ग्रहण होता है।

इस तरह जीवके सब मिलाकर कुल २ + ९ + १८ + २१ + ३ = ५३ त्रेपन भेद होते हैं ॥ ७ ॥ (देखें पेज ३० पर)

जीवका लक्षण-

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ- जीवका (लक्षणम्) लक्षण (उपयोगः) उपयोग (अस्ति) है।

उपयोग- आत्माके चैतन्य गुणसे सम्बन्ध रखनेवाले परिणामको उपयोग कहते हैं। उपयोग जीवका तद्भूत लक्षण है।

उपयोगके भेद

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥ ९ ॥

अर्थ- (सः) वह उपयोग मूलमें (द्विविधः) ज्ञानोपयोग और

---

1. औदयिकभावमें जो अज्ञानभाव है वह अभावरूप होता है। और क्षायोपशमिक अज्ञानभाव मिथ्यादर्शनके कारण दूषित होता है। 2. कषायके उदयसे मिली हुई योगोंकी प्रवृत्तिको लेश्या कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३ भाव

भाव

- **औपशमिक** (२)
  - १ सम्यक्त्व, २ चारित्र
- **क्षायिक** (९)
  - १ केवलज्ञान
  - २ केवलदर्शन
  - ३ क्षायिक दान
  - ४ क्षायिक लाभ
  - ५ क्षायिक भोग
  - ६ क्षायिक उपभोग
  - ७ क्षायिक वीर्य
  - ८ क्षायिक सम्यक्त्व
  - ९ क्षायिक चारित्र
- **क्षयोपशमिक** (१८)
  - ज्ञान — १ मति, २ श्रुत, ३ अवधि, ४ मनःपर्यय
  - अज्ञान — १ कुमति, २ कुश्रुत, ३ कुअवधि
  - दर्शन — १ चक्षु, २ अचक्षु, ३ अवधि
  - लब्धि — १ दान, २ लाभ, ३ भोग, ४ उपभोग, ५ वीर्य
  - क्षा०सम्यक्त्व, क्षा.चारित्र, संयमासंयम
- **औदयिक** (२१)
  - गति — १ नरक, २ तिर्यंच, ३ मनुष्य, ४ देव
  - कषाय — १ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ
  - लिंग — १ स्त्री, २ पुरुष, ३ नपुंसक
  - मिथ्यादर्शन
  - अज्ञान
  - असंयत
  - असिद्धत्व
  - लेश्या — १ कृष्ण, २ नील, ३ कापोत, ४ पीत, ५ पद्म, ६ शुक्ल
- **पारिणामिक** (३) ५३
  - १ जीवत्व
  - २ भव्यत्व
  - ३ अभव्यत्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनोपयोगके[3] भेदसे दो प्रकारका है। फिर क्रमसे (अष्टचतुर्भेदः) आठ और चार भेदसे सहित है, अर्थात् ज्ञानोपयोगके मति श्रुत अवधि मनःपर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये आठ भेद हैं। एवं दर्शनोपयोगके चक्षुर्दर्शन अचक्षुर्दर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ये चार भेद हैं। इस प्रकार दोनों भेदोंके मिलानेसे उपयोगके बारह भेद हो जाते हैं ॥ ९ ॥

जीवके भेद-

संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

अर्थ- वे जीव (संसारिणः) संसारी (च) और (मुक्ताः) मुक्त इस प्रकार दो भेदवाले हैं। कर्म सहित जीवोंको संसारी और कर्मरहित जीवोंको मुक्त कहते हैं ॥ १० ॥

संसारी जीवोंके भेद-

समनस्काऽमनस्काः ॥ ११ ॥

अर्थ- संसारी जीव समनस्क-सैनी और अमनस्क-असैनीके भेदसे दो प्रकारके होते हैं।

समनस्क- मनसहित जीव।

अमनस्क- मनरहित जीव ॥ ११ ॥[4]

संसारी जीवोंके अन्य प्रकारसे भेद

संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥

---

3. ज्ञानोपयोग पदार्थको विकल्प सहित जानना है और दर्शनोपयोग विकल्परहित जानता है। 4. एकेन्द्रियसे लेकर चतुरिन्द्रिय तक जीव नियमसे असैनी होते है। तिर्यंच पंचेन्द्रियोंमें सैनी असैनी दोनों होते है। शेष तीन गतियोंके जीव नियमसे सैनी ही होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयोगके भेद

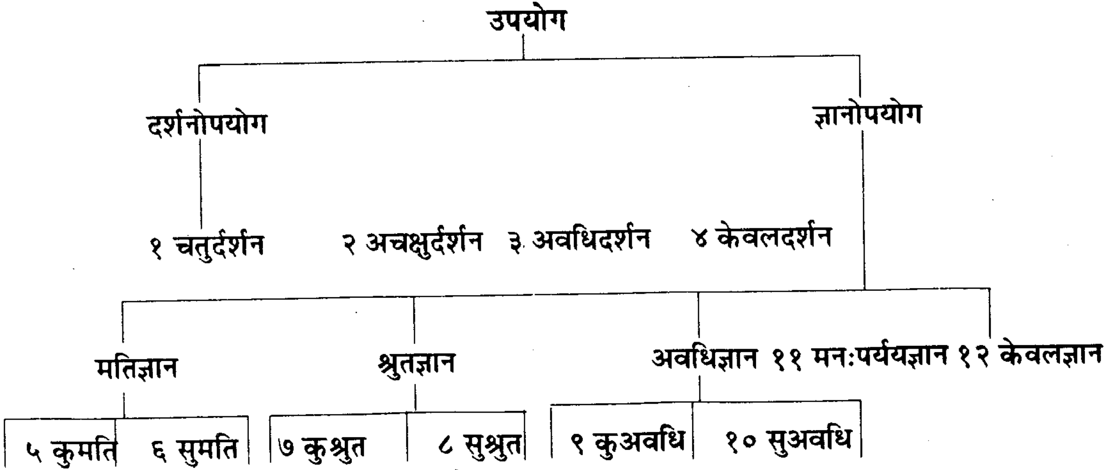

दर्शनोपयोग ४
ज्ञानोपयोग ८
____
१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- (संसारिण:) संसारी जीव (त्रस स्थावरा:) त्रस और स्थावरके भेदसे दो प्रकारके है।

स्थावरोंके

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥१३॥

अर्थ- पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक ये पांच प्रकारके स्थावर हैं। इनके सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय होती है।

स्थावर- स्थावर नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्था-विशेषको स्थावर कहते हैं ॥ १३ ॥

त्रस जीवोंके भेद-

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥

अर्थ- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं।

त्रस- त्रस नामकर्मके उदयसे प्राप्त हुई जीवकी अवस्था विशेषको त्रस कहतें हैं ॥ १४ ॥

इन्द्रियोंकी गणना-

पञ्चेन्द्रियाणि ॥ १५ ॥

अर्थ- सब इन्द्रियां पांच हैं।

इन्द्रिय-जिनसे जीवकी पहिचान हो उन्हें इन्द्रियां कहते हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रियोंके मूल भेद-

द्विविधानि ॥ १६ ॥

अर्थ- सब इन्द्रियां द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रियके भेदसे दो दो प्रकारकी हैं ॥ १६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्येन्द्रियका स्वरूप-

निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

अर्थ-निर्वृति और उपकरणको द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।

निर्वृति- पुद्गलविपाकी नामकर्मके उदयसे निर्वृत्त-रची गई नियत आकारवाली पुद्गलकी रचनाविशेषको निर्वृति कहते हैं। इसके २ भेद हैं-१-आभ्यन्तर निर्वृति और २-बाह्य निर्वृति। उत्सेधांगुलके असंख्येय भाग प्रमाण शुद्ध आत्माके प्रदेशोंका चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार होनेवाले परिणमनको आभ्यन्तर निर्वृति कहा हैं, तथा इन्द्रिय व्यपदेशको प्राप्त हुए आत्माके उन प्रदेशोंमे नामकर्मके उदयसे होनेवाले चक्षु आदि इन्द्रियोंके आकार परिणत पुद्गल प्रचयको बाह्य निर्वृति कहते हैं।

उपकरण- जो निर्वृतिका उपकार करे उसे उपकरण कहते हैं, इसके भी दो भेद हैं-१ आभ्यन्तर उपकरण और २ बाह्य उपकरण जैसे चक्षु इन्द्रियमें जो कृष्ण-शुक्ल मण्डल हैं वह आभ्यन्तर उपकरण है और पलकें तथा बिरूनी वगैरह बाह्य उपकरण हैं ॥१७॥

भाव इन्द्रियका स्वरूप-

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ॥१८॥

अर्थ- लब्धि और उपयोगको भावेन्द्रिय कहते हैं ।

लब्धि- ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम विशेषको लब्धि कहते हैं

उपयोग- जिसके निमित्तसे आत्मा द्रव्येन्द्रियकी निर्वृतिके प्रति व्यापार करता है उस निमित्तसे होनेवाले आत्माके परिणामको उपयोग कहते हैं ॥१८॥

पञ्च इन्द्रियोंके नाम-

स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥१९॥

अर्थ- स्पर्शन (त्वचा) रसना (जीभ) घ्राण (नाक) चक्षुः (आंख) और क्षोत्र (कान) ये पांच इन्द्रियां हैं ॥१९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियोंके विषय-

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥

अर्थ- स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द ये पांच क्रमसे उपर कही हुई पांच इन्द्रियोंके विषय हैं। अर्थात् उक्त इन्द्रियां इस विषयोंको जानती है ॥२०॥

मनका विषय-

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥ २१ ॥

अर्थ- (अनिन्द्रियस्य) मनका विषय (श्रुतम्) श्रुतज्ञानगोचर पदार्थ है। अथवा मनका प्रयोजन श्रुतज्ञान है ॥ २१ ॥

नोट- सामान्य श्रुतज्ञान मनसहित और मन रहित दोनों प्रकारके जीवोंके होता है यहां शास्त्र ज्ञान रूप जो श्रुत है उसे मनका विषय कहा गया हैं।

इन्द्रियोंके स्वामी-

वनस्पत्यन्तानामेकम् ॥ २२ ॥

अर्थ- (वनस्पत्यन्तानाम्) वनस्पतिकाय है अन्तमें जिनके ऐसे जीवोंके अर्थात् पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवोंके (एकम्) एक स्पर्शन इन्द्रिय होती है।। २ ॥

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि ॥ २३ ॥

अर्थ- लट आदि, चिऊंटी आदि, भौंरा आदि तथा मनुष्य आदिके क्रमसे एक-एक इन्द्रिय बढ़ती हुई हैं। अर्थात् लट आदिके प्रारम्भकी दो, चिउँटी आदिके तीन, भौंरा आदिके चार और मनुष्य आदिके पांचों इन्द्रियां होती हैं ॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समनस्ककी परिभाषा-

संज्ञिनः समनस्काः ॥ २४ ॥

अर्थ-(समनस्काः) मन सहित जीव (संज्ञिनः) संज्ञी[1] कहलाते हैं।

संज्ञा- हित अहितकी परीक्षा तथा गुणदोषका विचार वा स्मरणादिक करनेको संज्ञा कहते हैं ॥ २४ ॥

प्रश्न- जब कि जीवोंकी हिताहितमें प्रवृत्ति मनकी सहायतासे ही होती है, तब वे विग्रहगतिमें मनके बिना भी नवीन शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन क्यों करते हैं ?

उत्तर-

विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥ २५ ॥

अर्थ-(विग्रहगतौ) विग्रहगतिमें (कर्मयोगः) कार्मण काययोग होता है। उसीकी सहायतासे जीव एक गतिसे दूसरी गतिमें गमन करता है।

विग्रहगति-एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरकी प्राप्तिके लिये गमन करना विग्रह गति[2] हैं।

कर्मयोग- ज्ञानावरणादि कर्मोंके समूहको कार्मण कहते हैं उसके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमे जो हलन चलन होता है उसे कर्मयोग अथवा कार्मणयोग कहते हैं ॥ २५ ॥

गमन किस प्रकार होता है ?

अनुश्रेणि गतिः ॥ २६ ॥

---

1. संज्ञी जीव पंचेन्द्रिय ही होते हैं। 2. विग्रहार्थां गति विग्रहगतिः विग्रह-शरीरके लिये जो गति हो वह विग्रहगति है। शरीरं वर्ष्म विग्रहः इत्यमरः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- (गतिः) जीव और पुद्गलोंका गमन (अनुश्रेणि) श्रेणिके अनुसार ही होता है।

श्रेणि- लोकके मध्यभागसे उपर, नीचे तथा तिर्यक् दिशामें क्रमसे सन्निवेश (रचना) को प्राप्त हुए आकाश-प्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहते हैं।

नोट- जो जीव मरकर दूसरे शरीरके लिये गमन करता है उसीका गमन विग्रह गतिमें श्रेणिके अनुसार होता है, अन्यका नहीं। इसी तरह जो पुद्गलका शुद्ध परमाणु एक समयमें चौदह राजु गमन करता है उसीका श्रेणिके अनुसार गमन होता है, सब पुद्गलोंका नहीं।

मुक्त जीवोंकी गति-

अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥

अर्थ- (जीवस्य) मुक्त[1] जीवकी गति (अविग्रहा) वक्रता रहित- सीधी होती है।

भावार्थ- श्रेणिके अनुसार होनेवाली गतिके दो भेद हैं- १ विग्रहवती (जिसमें मुडना पडे) और २ अविग्रहा (जिसमें मुड़ना न पडे ।) इनमेंसे कर्मोका क्षयकर सिद्धशिलाके प्रति गमन करनेवाले जीवोंके अविग्रहा गति होती है।

संसारी जीवोंकी गति और समय-

विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः ॥ २८ ॥

अर्थ- (संसारिणः) संसारी जीवकी गति (चतुर्भ्यः प्राक्) चार समयसे पहले पहले (विग्रहवती च) विग्रहवती और अविग्रहवती दोनों प्रकारकी होती है।

---

1. आगेके सूत्रमें संसारी जीवका ग्रहण है इसलिये यहां पर 'जीवस्य' इस सामान्य पदसे भी मुक्त जीवका ग्रहण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ- संसारी जीवकी गति मोडा रहित भी होती है। और मोड़ा सहित भी। जो मोड़ा रहित होती है उसमें एक समय लगता है। जिसमें एक मोड़ा लेना पड़ता है उसमें दो समय, जिसमें दो मोडा लेना पडते हैं उसमें एक समय लगता है। जिसमें एक मोड़ा लेना पड़ता है उसमें तीन समय और जिसमें तीन मोडा लेना पडते हैं उसमे चार समय लगते हैं। पर यह जीव चौथे समयमें कहीं न कहीं नवीन शरीर नियमसे धारण कर लेता है, इसलिये विग्रह गतिका समय चार समयके पहले पहले तक कहा गया है।[1]

अविग्रहा गतिका समय-

एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

अर्थ- (अविग्रहा) मोड़ा रहित गति (एकसमया) एक समय मात्र होती हैं अर्थात् उसमें एक समय ही लगता है ॥ २९ ॥

विग्रहगतिमें आहारक अनाहारककी व्यवस्था-

एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः ॥ ३० ॥

अर्थ- विग्रह गतिमें जीव एक दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है।

आहार- औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर तथा ६ पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल परमाणुओंके ग्रहणको आहार कहते हैं।

भावार्थ- जब तक जीव उपर कहे हुए आहारको ग्रहण नहीं करता तबतक वह अनाहारक कहलाता है। संसारी जीव अविग्रहा गतिमें आहारक ही होता है । किन्तु एक दो और तीन मोड़वाली गतियोंमे क्रमसे एक दो और तीन समय तक अनाहारक रहता हैं। चौथे समयमें नियमसे आहारक हो जाता है ॥ ३० ॥

---

1. उक्त गतियोंके ४ भेद है १ ऋजुगति (इषुगति) २ पाणिमुक्ता गति, ३ लाङ्गलिका गति, ४ गोमूत्रिका गति। ऋजुगतिवाला जीव अनाहारक नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मके भेद-

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

अर्थ-(जन्म) जन्म[2] (सम्मुर्च्छनगर्भोपपादा) सम्मूर्च्छन गर्भ और उपपादके भेदसे तीन प्रकारका होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म- अपने शरीरके योग्य पुद्गल परमाणुओंके द्वारा मातापिताके रज और वीर्यके बिना ही अवयवोंकी रचना होनेको सम्मूर्च्छन जन्म कहते हैं।

गर्भजन्म- स्त्रीके उदरमें रज और वीर्यके मिलनेसे जो जन्म होता है उसे गर्भजन्म कहते हैं।

उपपाद जन्म- माता-पिताके रज और वीर्यके बिना देव नारकियोके निश्चित स्थान-विशेषपर उत्पन्न होनेको उपपाद जन्म कहते हैं ।

योनियोंके भेद-

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ॥३२॥

अर्थ-(सचित्तशीतसंवृताः) सचित, शीत, संवृत तीन (सेतराः) इनसे उल्टी तीन अचित, उष्ण, विवृत (च) और (एकशः) एक२ कर (मिश्राः) क्रमसे मिली हुई तीन सचिताचित, शोतोष्ण, संवृत विवृत ये नो (तद्योनयः) सम्मूर्च्छन आदि जन्मोंकी योनियाँ हैं।

सचित्तयोनि- जीव सहित योनिको सचित्तयोनि कहते हैं।

संवृतयोनि- जो किसीके देखनेमें न आवे ऐसे जीवके उत्पति स्थानको संवृतयोनि कहते हैं।

विवृतयोनि- जो सबके देखनेमें आवे उस उत्पति स्थानको विवृतयोनि कहते हैं। शेष योनियोंका अर्थ स्पष्ट है ॥३२॥

2. नवीन शरीर धारण करना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट- कौन योनि किस जीवके होती है, इस विषयको आगेके चित्रपर देखिये।

योनि भेद और उनके स्वामी

योनि नाम	स्वामी
१. सचित्त	साधारण शरीर
२. अचित्त	देव नारकी
३. सचित्ताचित्त	गर्भज
४. शीत	तेजस्कायिक छोड़कर
५. उष्ण	तेजस्कायिक
६. शीतोष्ण	देव नारकी
७. संवृत	देव, नारकी, एकेन्द्रिय
८. विवृत	विकलेन्द्रिय
९. संवृतविवृत	गर्भज

१ जीवोंकी उत्पत्ति स्थानको योनि कहते है। योनि और जन्ममें आधार आधेय का अन्तर है।

गर्भजन्म किसके होता है?-

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः ॥३३॥

अर्थ- जरायुज, अण्डज, और पोत इन तीन प्रकारके जीवोके गर्भजन्म ही होता है। अथवा गर्भजन्म उक्त जीवोके ही होता है।

जरायुज- जालके समान मांस और खूनसे व्याप्त एक प्रकारकी थैलीसे लिपटे हुये जो जीव पैदा होते हैं उन्हे जरायुज कहते हैं। जैसे-गाय, भैंस, मनुष्य वगैरह।

अण्डज- जो जीव अण्ड़ेसे उत्पन्न हो उन्हें अण्ड़ज कहते हैं, जैसे-चील, कबूतर वगैरह।

पोत- पैदा होते समय जिन जीवोंपर किसी प्रकार का आवरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो और जो पैदा होते ही चलने फिरने लग जावें उन्हें पोत कहते हैं, जैसे-हरिण, सिंह वगैरह ॥ ३३ ॥

उपपाद जन्म किससे होता है ?

देवनारकाणामुपपादः ॥ ३४ ॥

अर्थ-(देवनारकाणाम्) देव और नारकियोंके (उपपादः) उपपाद जन्म ही होता है अथवा उपपाद जन्म देव और नारकियोंके ही होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है ?

शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ- (शेषाणां) गर्भ और उपपाद जन्मवालोसे बाकी बचे हुए जीवोके (सम्मूर्च्छनम्) सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। अथवा सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवोंके ही होता है। [1]

नोट- एकेन्द्रियसे लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंका नियमसे सम्मूर्च्छन जन्म होता है। बाकी तिर्यंचोंके गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होते हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥ ३५ ॥

शरीरके नाम व भेद-

औदारिकवैक्रियिकाहारक-तैजसकार्मणानि शरीराणि ॥ ३६ ॥

अर्थ- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण ये पांच शरीर हैं।

औदारिक शरीर- स्थूल शरीर (जो दूसरेको छेडे और दूसरेसे छिड सके) को औदारिक शरीर कहते हैं। यह मनुष्य और तिर्यंचोंके होता है।

1. उपर कहे हुए तीनों सूत्रोमें 'पार्थ एव धनुर्धरः ' की तरह दोनों ओरसे नियम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिक शरीर- जिसमें हल्के भारी तथा कई प्रकारके रूप बनानेकी शक्ति हो उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। यह देव और नारकियोंके होता है। विक्रिया ऋद्धि इससे भिन्न है।

आहारक शरीर- सूक्ष्मपदार्थके निर्णयके लिये या संयमकी रक्षाके लिये छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिके मस्तकसे एक हाथका जो सफेद रंगका पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

तैजस शरीर- जिसके कारण शरीरमें तेज रहे उसे तैजस शरीर कहते हैं।

कार्मण शरीर- ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंके समूहको कार्मण शरीर कहते हैं।

शरीरोंकी सूक्ष्मताका वर्णन-

परं परं सूक्ष्मम् ॥ ३७ ॥

अर्थ- पूर्वसे (परं परम्) आगे आगेके शरीर (सूक्ष्मम्) सूक्ष्म सूक्ष्म हैं। अर्थात् औदारिकसे वैक्रियिक, वैक्रियिकसे आहारक, आहारकसे तैजस और तैजससे कार्मण शरीर सूक्ष्म है ॥ ३७ ॥

शरीरके प्रदेशोंका विचार-

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक्तैजसात् ॥ ३८ ॥

अर्थ- (प्रदेशत:) प्रदेशोंकी अपेक्षा (तैजसात् प्राक्) तैजस शरीरसे पहले पहलेके शरीर (असंख्येयगुणम्) असंख्यातगुणे हैं।

भावार्थ- औदारिक शरीरकी अपेक्षा असंख्यातगुणे प्रदेश (परमाणु) वैक्रियिकमें और वैक्रियिककी अपेक्षा असंख्यातगुणे आहारकमें है।

अनन्तगुणे परे ॥ ३९ ॥

अर्थ- (परे) बाकीके दो शरीर (अनन्तगुणे) अनन्तगुणे प्रदेशवाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। अर्थात् आहारक शरीरसे अनन्तगुणे प्रदेश तैजस शरीरमें और तैजस शरीरकी अपेक्षा अनन्तगुणे प्रदेश कार्मण शरीरमें हैं।[1]

तैजस और कार्मण शरीरकी विशेषता-

अप्रतिघाते ॥ ४० ॥

अर्थ- तैजस और कार्मण ये दोनों शरीर अप्रतिघात-बाधारहित हैं अर्थात् किसी भी मूर्तिक पदार्थसे न स्वयं रूकते हैं और न किसीको रोकते हैं।

अनादिसम्बन्धे च ॥ ४१ ॥

अर्थ- ये दोनों शरीर आत्माके साथ अनादिकालसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं।

नोट- यह कथन सामान्य तैजस और कार्मणकी अपेक्षासे है, विशेषकी अपेक्षा पहलेके शरीरोंका सम्बन्ध नष्ट होकर उनके स्थानमें नये नये शरीरोंका सम्बन्ध होता रहता है।

सर्वस्य ॥ ४२ ॥

अर्थ- ये दोनों शरीर समस्त संसारी जीवोंके होते हैं ॥ ४२ ॥

एकसाथ एक जीवके कितने शरीर हो सकते हैं ?

तदादीनि भाज्यानियुगपदेकस्याचतुर्भ्यः ॥ ४३ ॥

अर्थ- (तदादीनि) उन तैजस और कार्मण शरीरको आदि लेकर (युगपद्) एकसाथ (एकस्य) एक जीवके (आचतुर्भ्यः) चार शरीर तक (भाज्यानि) विभक्त करना चाहिए । अथात् दो शरीर हों तो तैजस कार्मण, तीन हों तो तैजस कार्मण और औदारिक अथवा तैजस कार्मण और

---

1. आगे आगेके शरीरोंमें प्रदेशोंकी अधिकता होनेपर भी उनका सन्निवेश लोहपिण्डकी तरह सघन होता है इसलिये वे बाह्यमें अल्परूप होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैक्रियिक, तथा चार हो तो तैजस कार्मण औदारिक और आहारक अथवा तैजस कार्मण औदारिक और वैक्रियिक[1] होते है ॥ ४३ ॥

कार्मण शरीर की विशेषता-

निरूपभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अर्थ- (अन्त्यम्) अन्तका कार्मण शरीर (निरूपभोगम्) उपभोग रहित होता हैं।

उपभोग-इन्द्रियोंके द्वारा शब्दादिकके ग्रहण करनेको उपभोग कहते हैं ॥ ४४ ॥

औदारिक शरीरका लक्षण-

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

अर्थ- (गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम्) गर्भ और सम्मूर्छन जन्मसे उत्पन्न हुआ शरीर (आद्यम्) औदारिक शरीर कहलाता हैं ॥ ४५ ॥

वैक्रियिक शरीरका वर्णन-

औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥ ४६ ॥

अर्थ- (औपपादिकं) उपपाद जन्मसे होने वाला देव नारकियोंका शरीर (वैक्रियिकम्) वैक्रियिक कहलाता हैं ॥ ४६ ॥

लब्धिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

अर्थ- वैक्रियिक शरीर लब्धि-निमित्तक भी होता हैं।

लब्धि-तपोविशेषसे प्राप्त हुई ऋद्धिको लब्धि कहते हैं।

तैजसमपि ॥ ४८ ॥

अर्थ- तैजस शरीर भी लब्धि प्रत्यय (ऋद्धिनिमित्तक) होता हैं।

नोट-यह तैजस शुभ अशुभके भेदसे दो प्रकार का होता हैं। शुभ तैजस सफेद रंगका होता है और दाहने कन्धेसे निकलता है और अशुभ

1. लब्धिप्रत्यय वैक्रियिककी अपेक्षा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तैजस सिन्दुरके समान लाल रंगका होता है तथा बांये कन्धेसे प्रकट होता हैं। शुभ तैजससे १२ योजन सुभिक्ष आदि होते हैं और अशुभ तैजससे १२ योजन प्रमाण क्षेत्र भस्म हो जाता है।

आहारक शरीरका स्वामी व लक्षण

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव

अर्थ- (आहारकम्) आहारक शरीर (शुभम्) शुभ हैं अर्थात् शुभ कार्यको करता है (विशुद्धम्) विशुद्ध हैं अर्थात् विशुद्ध कर्मका कार्य है (च) और (अव्याघाति) व्याघातबाधा रहित है तथा (प्रमत्तसंयतस्यैव) प्रमत्तसंयत नामक छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिके ही होता है ॥ ४९ ॥

शरीरभेद स्वामी और जन्म-

शरीर	स्वामी	जन्म
१ औदारिक	मनुष्य-तियञ्च	गर्भ सम्मूर्च्छन
२ वैक्रियिक	देव नारकी (लब्धि प्रत्ययकी अपेक्षा मनुष्य भी)	उपपाद
३ आहारक	छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि	--
४ तैजस	समस्त संसारी	--
५ कार्मण	समस्त संसारी	--

लिंग (वेद) के स्वामी

नारकसम्मूर्छिनो नपुंसकानि ॥५०॥

अर्थ- नारकीय और सम्मूर्छन जन्मवाले जीव नपुंसक होते हैं।

न देवा: ॥५१॥

अर्थ- देव नपुंसक नहीं होते। अर्थात् देवोंमें स्त्रीलिंग और पुरूषलिंग ये दो ही लिंग होते हैं ॥ ५१ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शेषास्त्रिवेदाः ॥५२॥

अर्थ- शेष बचे हुए मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेदवाले होते हैं।

अकालमृत्यु किनकी नहीं होती?

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायु-षोऽनपवर्त्यायुषः ॥५३॥

अर्थ- उपपाद जन्मवाले देव नारकी, तद्भवमोक्षगामियों में श्रेष्ठ तीर्थङ्कर आदि तथा असंख्यात वर्षोंकी आयुवाले-भोगभूमिके जीव परिपूर्ण आयुवाले होते है। अर्थात् इन जीवोंकी असमयमें मृत्यु नहीं होती ॥५३॥

भावार्थ- आयुकर्मके निषेकोंका क्रमक्रमसे न खिरकर एक साथ खिर जाना अकाल मरण कहलाता है। यह अकाल मरण कर्मभूमिके मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ही सम्भव होता है। कर्मभूमिमें भी तद्भवमोक्षगामी मनुष्योंके नहीं होता।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥

प्रश्नावली

(१) जीवके असाधारण भाव कितने हैं?
(२) इस समय तुम्हारे कितने भाव हैं?
(३) विग्रहगतिमें जीव अनाहारक कबतक और क्यों रहता है?
(४) योनि और जन्ममें क्या अन्तर है?
(५) मनुष्योंके कौन कौनसे जन्म होते है?
(६) तुम्हारे कितने शरीर हैं?
(७) देवोंके आहारक शरीर हो सकता है या नहीं?
(८) यदि आगे आगेके शरीर अधिक अधिक प्रदेशवाले हैं तो वे अधिक स्थानको क्यों नही घेरते?
(९) आप यह बात किस प्रकार जानते हैं कि अमुक व्यक्तिकी असमयमें मृत्यु हुई है।
(१०) नारकियोंके कौनसा लिङ्ग होता है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

अधोलोकका वर्णन

सात पृथिवियां-नरक-

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो घनाम्बूवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ॥ १ ॥

अर्थ- (रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा) रत्नप्रभा,[1] शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमप्रभा, ये भूमियां (सप्त) सात हैं और क्रमसे (अधोऽधः) नीचे नीचे (घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः) घनोदधिवातवलय, घनवातवलय, तनुवातवलय और आकाशके आधार हैं।

विशेष- रत्नप्रभा पृथ्वीके तीन भाग है- १ खरभाग, २ पङ्कभाग और ३ अब्बहूल भाग। इनमेंसे उपरके दो भागोंमें व्यंतर तथा भवनवासी देव रहते हैं, और नीचेके अब्बहूल भागमें नारकी रहते हैं। इस पृथ्वीकी कुल मोटाई एक लाख अस्सी हजार योजनकी[2] है ॥ १ ॥

सात पृथिवियोंमें नरकों (बिलों) की संख्या-

तासुत्रिंशत्पञ्चविंशतिपंचदशदशत्रिपंचोनैक-नरकशतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ- (तासु) उन पृथिवियोंमें (यथाक्रमम्) क्रमसे (त्रिंशत्

1. रत्नप्रभा आदि पृथ्वीके नाम सार्थक हैं। रूढ नाम इस प्रकार हैं। १ धम्मा, २ वंशा, ३ मेघा, ४ अञ्जना, ५ अरिष्टा, ६ मधवी और ७ माधवी। 2. दो हजार कोश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चविंशति पञ्चदश दश त्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्त्राणि) तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख पांच कम एक लाख (च) और (पञ्च एव) पांच ही नरक-बिल हैं। ये बिल जमीनमें गड़े हुए ढोलकी पोल के समान होते है ॥ २ ॥

नारकियोंके दुःखका वर्णन

नारका नित्याशुभतरलेश्या[1] परिणाम-[2]देहवेदना[3]विक्रियाः ॥ ३ ॥

अर्थ- नारकी जीव हमेशा ही अत्यन्त अशुभ लेश्या, परिणाम, शरीर, वेदना और विक्रियाके धारक होते हैं।

परिणाम-स्पर्श गंध वर्ण और शब्दको परिणाम कहते है।

परस्परोदीरितदुःखाः ॥ ४ ॥

अर्थ- नारकी जीव परस्परमें एक दूसरेको दुःख उत्पन्न करते हैं- वे कुत्तोंकी तरह परस्परमें लड़ते हैं ॥ ४ ॥

संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्चप्राक् चतुर्थ्याः ।५।

1-यह द्रव्यलेश्याओंका वर्णन है जो कि आयु पर्यन्त रहती हैं। भाव लेश्याए अन्तर्मुहूर्तमें बदलती रहती हैं। परन्तु वह परिवर्तन अपने ही अवान्तर भेदमें ही होता हैं। पहली और दूसरी पृथ्वीमें कापोतीलेश्यायें, तीसरी पृथ्वीके ऊपरी भागमें कापोती और नीचले भागमे नील चौथीमें नील, पांचवीके ऊपरी भागमें नील और नीचले भागमें कृष्ण तथा छठवीं और सातवीं पृथ्वीमें भी कृष्णलेश्या होती है। 2-देह-पहली पृथ्वीमें देहकी ऊंचाई ७ धनुष, ३ हाथ और ६ अंगुल है। नीचे के नरकोंमे क्रम क्रमसे दूनी, दूनी ऊँचाई होती है। 3-वेदना-१, २, ३ और ४ पृथ्वीमें सिर्फ उष्ण वेदना, ५ वीं पृथ्वीके ऊपरी भाग में उष्ण और नीचे भागमें शीत तथा ६ और ७ वीं पृथ्वीमें महाशीतकी वेदना हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- (च) और वे नारकी (चतुर्थ्याःप्राक्) चौथी पृथ्वीसे पहले पहले अर्थात् तीसरी पृथ्वी पर्यन्त (संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाः) अत्यन्त संक्लिष्ट परिणामोंके धारक अम्बावरीष जातिके असुरकुमार देवोंके द्वारा उत्पन्न दुःखसे युक्त होते है। अर्थात् तीसरे नरक तक जाकर अम्बावरीष-असुरकुमार उन्हें पूर्व वैरका स्मरण दिलाकर आपसमें लड़ते है और उन्हें दुःखी देखकर हर्षित होते हैं। उनके इसी प्रकारकी कषायका उदय रहता है।

नरकोमें उत्कृष्ट आयुका प्रमाण-

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंश-त्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥ ६ ॥

अर्थ- (तेषु) उन नरकोंमें (सत्त्वानां) नारकी जीवोंकी (परा स्थितिः) उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे (एक त्रि सप्तदश द्वाविंशति त्रयस्त्रिशत्सागरोपमा) एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेंतीस सागर हैं।

नोट- नरकोंमें भयानक दुःख होनेपर भी असमयमें मृत्यु नहिं होती ॥ ६ ॥

मध्य लोकका वर्णन

कुछ द्वीप समुद्रोंके नाम-

जम्बूद्वीपलवणोदादयःशुभनामानोद्वीपसमुद्राः ॥

अर्थ- इस मध्यलोकमें (शुभनामानः) अच्छे अच्छे नामवाले (जम्बूद्वीपलवणोदादयः द्वीपसमुद्राः) जम्बूद्वीप आदि द्वीप और लवणसमुद्र आदि समुद्र हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक व्यवस्था

नं.	पृथिवी	प्रस्तार	बिल	शरीरकी ऊँचाई	लेश्या	शीतोष्ण वेदना	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
१	रत्नप्रभा	१३	३००००००	७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल	जघन्य कापोत	उष्ण वेदना	१ सागर	दश हजार वर्ष
२	शर्कराप्रभा	११	२५०००००	१५ धनुष २ हाथ १२ अगुंल	मध्यम कापोत	उष्ण वेदना	३ सागर	१ सागर
३	बालुका प्रभा	९	१५०००००	३१ धनुष १ हाथ	उत्कृष्ट कापोत जघन्य नील	उष्ण वेदना	७ सागर	३ सागर
४	पङ्कप्रभा	७	१००००००	६२ धनुष २ हाथ	मध्यम नील	उष्ण वेदना	१० सागर	७ सागर
५	धूमप्रभा	५	३०००००	१२५ धनुष	उत्कृष्ट नील जघन्य कृष्ण	उष्ण शीत	१७ सागर	१० सागर
६	तम:प्रभा	३	९९९९५	२५० धनुष	मध्यम कृष्ण	शीत	२२ सागर	१७ सागर
७	महातम:प्रभा	१	५	५०० धनुष	उत्कृष्ट कृष्ण	महाशीत	३३ सागर	२२ सागर

नोट: १ यह लेश्याका क्रम 'स्वायुष: प्रमाणावधृता: द्रव्यलेश्या उक्त भावलेश्यास्त्वन्तर्मुहूर्त परिवर्तिन्य:' इस सर्वार्थसिद्धिके मतानुसार लिखा है। गोम्मटसार तथा धवलसिद्धांतके मतानुसार सभी नारकियोंके विग्रहगतिमें शुक्ल, अपर्याप्तक अवस्थामें कापोत तथा पर्याप्तक अवस्थामें कृष्णद्रव्यलेश्या होती है और भावलेश्याएं, कृष्ण, नील तथा कापोत होती है जिनका क्रम उपर चित्रमें बताया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ- सबके बीचमें थालीके आकारका जम्बूद्वीप हैं, उसके चारों तरफ लवणसमुद्र है, उसके चारों तरफ घातकीखण्ड द्वीप है, उसके चारों तरफ कालोदधि समुद्र है, उसके चारों तरफ पुष्करवर द्वीप हैं, उसके चारो तरफ पुष्करवर समुद्र हैं। इस प्रकार एक दूसरे को घेरे हुये असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबके अन्तके द्वीपका नाम स्वयं भूरमण द्वीप और अन्तके समुद्रका नाम स्वयंभूरमण समुद्र है ॥ ७॥

द्वीप और समुद्रोंका विस्तार और आकार

द्विर्द्विर्विष्कम्भाःपूर्वपूर्वपरिक्षेपिणोवलयाकृतयः८

अर्थ- प्रत्येक द्वीप समुद्र दूने दूने विस्तारवाले, पहले पहलेके द्वीप समुद्रको घेरे हुए तथा चूड़ीके समान आकारवाले हैं।

जम्बूद्वीपका विस्तार और आकार

तन्मध्येमेरूनाभिर्वृत्तोयोजनशतसहस्त्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥ ९ ॥

अर्थ- (तन्मध्ये) उन सब द्वीपसमुद्रोंके बीचमें (मेरूनाभिः)[1] सुदर्शन [1] मेरू रूप नाभिसे युक्त (वृतः) थाली के समान गोल और (योजनशतसहस्त्रविष्कम्भः)[2] एक लाख योजन विस्तार वाला जम्बूद्वीपः[3]) जम्बूद्वीप (अस्ति) हैं ॥ ९ ॥

---

1. सुदर्शन मेरूकी उंचाई एक लाख योजन की है। जिसमें एक हजार योजन नीचे जमीनमें और ९९ हजार योजन उपर है। सब अकृत्रिम चीजोंके नापमें २००० कोशका बड़ा योजन लिया जाता है। 2. किसी भी गोल चीज की परिधि उसकी गोलाईसे कुछ अधिक तिगुनी हुआ करती है। इस प्रकार जम्बूद्विपकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दोसौ सत्ताईस योजन तीन कोश एकसौ अठ्ठाइस धनुष और साड़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक हैं। 3 इस द्वीपमें विदेह क्षेत्रान्तर्गत 'उत्तर कुरू भोगभूमि' में अनादि निधन पृथ्वीकाय अकृत्रिम जम्बू-जामुनका वृक्ष है, इसलिये इस द्वीप का नाम जम्बूद्वीप पड़ा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सात क्षेत्रोंके नाम

भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यव-तेरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥ १० ॥

अर्थ- इस जम्बूद्वीपमें भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक हैरण्यवत और ऐरावत ये क्षैत्र हैं ॥ १० ॥

क्षेत्रोंका विभाग करनेवाले ६ कुचालकोके नाम-

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरूक्मिशिखरिणोवर्षधरपर्वताः ।११ ।

अर्थ- (तद्विभाजिनः) उन सात क्षेत्रोंका विभागकरने वाले (पूर्वापरायताः) पूर्वसे पश्चिम तक लम्बे हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरूक्मिशिखरिणः) हिमवत्, महाहिमवत्, निषध, नील, रूक्मिन् और शिखरिन् ये छह (वर्षधरपर्वताः) वर्षधरकुलाचल पर्वत हैं । वर्ष-क्षेत्र ॥ ११ ॥

कुलाचलोंके वर्ण

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्यरजतहेममयाः ॥ १२ ॥

अर्थ- ऊपर कहे हुए पर्वत क्रमसे सुवर्ण, चांदी तपाया हुआ सुवर्ण, वैडूर्य (नील) मणि, चांदी और सुवर्णके समान वर्णवाले हैं ॥ १२ ॥

कुलाचलोंका आकार

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अर्थ- (मणिविचित्रपार्श्वाः) कई तरहकी मणियोंसे चित्रविचित्र तटोंसे युक्त (उपरि मूले च) उपर नीचे और मध्यमें (तुल्यविस्ताराः) एकसमान विस्तारवाले हैं ॥ १३ ॥

कुलाचलोंपर स्थित सरोवरोंके नाम

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिमहापुण्डरीक पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

अर्थ- (तेषाम् उपरि) उन पर्वतोंके ऊपर क्रमसे (पद्म-महापद्म तिगिञ्छ केशरि महापुण्डरीक और पुण्डरीक ह्रदाः) पद्म, महापद्म तिगिञ्छ, केशरिन, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नामके ह्रद-सरोवर हैं ॥ १४ ॥

प्रथम सरोवरकी लंबाई चौडाई

प्रथमो योजनसहस्त्रयामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः ।

अर्थ- (प्रथमह्रदः) पहला सरोवर (योजनसहस्त्रायामः) एक हजार योजन लम्बा और तदर्द्धविष्कम्भः) लम्बाईसे आधा अर्थात् पांचसौ योजन विस्तारवाला है ॥ १५ ॥

प्रथम सरोवर की गहराई-

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अर्थ- पहला सरोवर दशयोजन गहरा है ॥ १६ ॥

उसके मध्यमें क्या है ?

तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥ १७ ॥

अर्थ- उसके बीचमें एक योजन विस्तारवाला कमल है । ७ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ह्रदोंका विस्तार आदि

नं.	ह्रद नाम	स्थान	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई	कमल	देवी
१	पद्म	हिमवत्	१००० योजन	५०० योजन	१० योजन	१ योजन	श्री
२	महापद्म	महाहिमवत्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	ह्री
३	तिगिच्छ	निषध	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	धृति
४	केशरी (केशरिन)	नील	४००० योजन	२००० योजन	४० योजन	४ योजन	कीर्ति
५	महापुण्डरीक	रुक्मिन्	२००० योजन	१००० योजन	२० योजन	२ योजन	बुद्धि
६	पुण्डरीक	शिखरिन्	१००० योजन	१००० योजन	१० योजन	१ योजन	लक्ष्मी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महापद्म आदि सरोवर तथा उनमें रहनेवाले कमलोका प्रमाण-

तद्‌द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

अर्थ- आगेके सरोवर और कमल क्रमसे प्रथम सरोवर तथा उसके कमल से दूने दूने विस्तारवाले हैं।

नोट- यह दूने दूनेका क्रम तिगिञ्छ नामक तीसरे सरोवर तक ही है। उसके आगे तीन सरोवर और कमल दक्षिण सरोवर के कमलों के समान विस्तारवाले है ॥ १८ ॥

कमलोंमे रहनेवाली छह देवियां-

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्य पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः। १९।

अर्थ- (पल्योपमस्थितयः) एक पल्यकी आयु वाली तथा (ससामानिक परिषत्काः) सामानिक और परिषद जातिके देवोसे सहित (श्री ह्रीधृतिकीर्तिलक्ष्म्यः) श्री ह्री, धृति, कीति, बुद्धि और लक्ष्मी नामकी (देव्यः) देवियाँ क्रमसे (तन्निवासिन्यः) उन सरोवरोके कमलों पर निवास करती हैं।[1]

1. उक्त कमलोंकी कर्णिकाके मध्यभागमें एक कोश लम्बे आधे कोश चौड़े और कुछ कम एक कोश ऊंचे सफेद रंगके भवन बने हुए है। उन्हींमें ये देवियां रहती है तथा उन्ही तालाबोंमें जो अन्य परिवार कमल है उनपर सामानिक और पारिषद् देव रहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चौदह महानदियोंके नाम

गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीता-सीतोदानारीनरकान्तासुवर्णरुप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥

अर्थ- गङ्गा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित् हरिकान्ता, सीता, सीतोदा नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला और रक्ता, रक्तोदा, ये चौदह नदियाँ जम्बूद्वीपके पूर्वोक्त ७ क्षेत्रोके बीचमें बहती हैं।

विशेष- पहले पद्म और छठवें पुण्डरीक नामक सरोवरसे तीन तीन नदियाँ निकली है तथा बाकीके सरोवरसे दो-दो नदियाँ निकली है। नदियों और क्षेत्रोंका क्रम इस प्रकार हैं-भरतमें-गंगा सिन्धु, हैमवतमें-रोहीत रोहितास्या, हरिमें-हरित हरिकांता विदेहमें-सीता सीतोदा, रम्यकमें-नारी नरकांता, हैरण्यवतमें-सुवर्णकूला, रूप्यकूला, और ऐरावतमें-रक्ता-रक्तोदा नदियाँ बहती है ॥ २० ॥

नदियोंके बहनेका क्रम

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाःपूर्वगाः ॥ २१ ॥

अर्थ- सूत्रके क्रमानुसार गंगा सिंधु इत्यादि दो दो नदियोंमेंसे प्रथम नंबरवाली नदियाँ पूर्व समुद्रमें जाती है। जैसे गंगा सिंधुमें गंगा आदि ॥ २१ ॥

शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥

बाकी बची हुई सात नदियाँ पश्चिमकी ओर जाती हैं। जैसे गंगा सिंधुमें सिंधु आदि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीप का नकशा

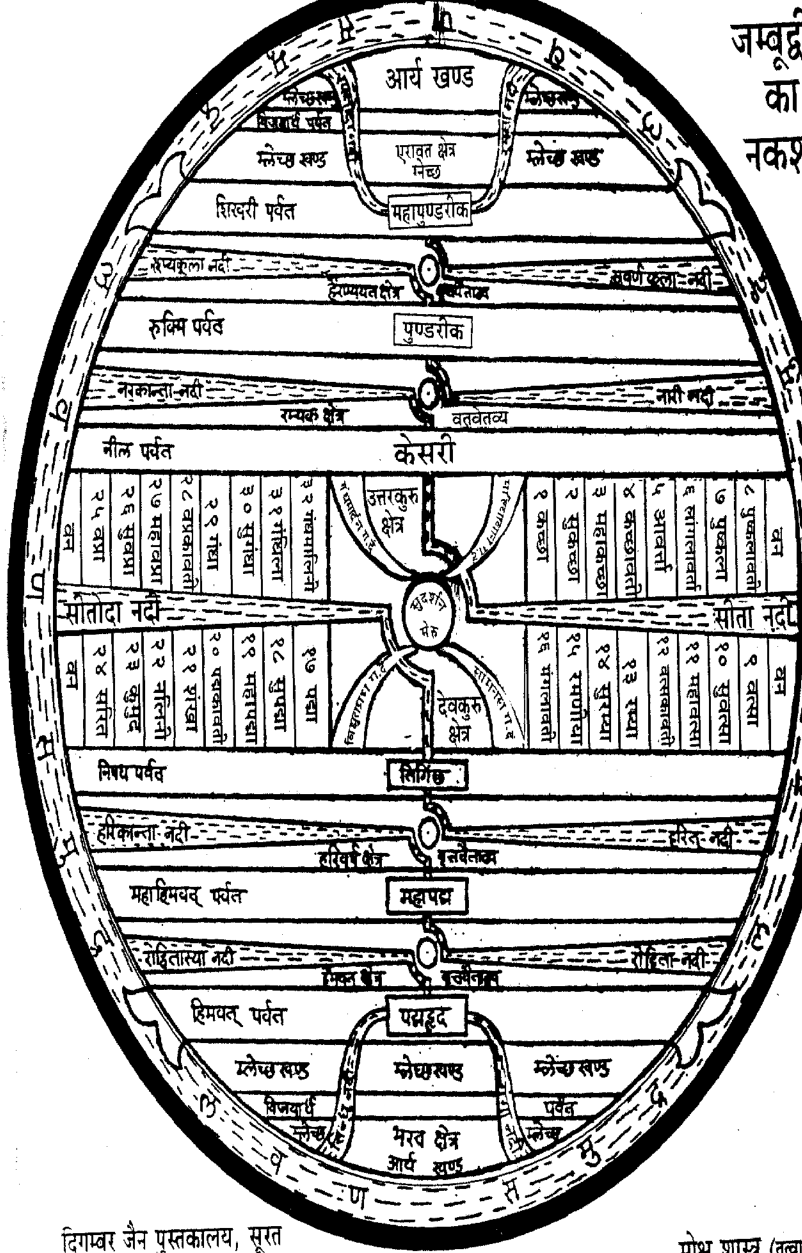

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत
फोन :- (०२६१) ४२७६२१

मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महानदियोंकी सहायक नदियां

चतुर्दशनदीसहस्त्रपरिवृतागङ्गासिन्ध्वाद-योनद्य ॥ २३ ॥

अर्थ- गंगा सिंधु आदि नदियोंके युगल चौदह हजार सहायक नदियोंसे घिरे हुए हैं।

नोट-सहायक नदियोंका क्रम भी विदेह क्षेत्र तक आगे आगेके युगलोंमे पूर्वके युगलोंसे दूना दूना है। और उक्त के तीन क्षेत्रोंमें दक्षिणके तीन क्षेत्रोंके समान है ॥ २३ ॥

नदि युगल	सहायक नदी संख्या
गंगा सिंधु	१४ हजार
रोहित-रोहितास्या	२८ हजार
हरित-हरिकान्ता	५६ हजार
सीता-सीतोदा	०१ लाख बारह हजार
नारी-नरकांता	५६ हजार
सुवर्णकूला-रूप्यकूला	२८ हजार
रक्ता-रक्तोदा	१४ हजार

भरतक्षेत्रका विस्तार-

भरतः षड्विंशतिंपञ्चयोजनशत विस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥२४ ॥

अर्थ-(भरतः) भरतक्षेत्र(षड्विंशतिपञ्चयोजनविस्तारः) पांचसो छब्बीस योजन विस्तारवाला (च) और (योजनस्य) एक योजनके (एकोनविंशतिभागाः) उन्नीस भागोंमेंसे (षट्) छह भाग अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ- भरतक्षेत्रका विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन हैं ॥ ५४ ॥[1]

आगेके क्षेत्र और पर्वतोंका विस्तार-

तद्‌द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः ॥ २५ ॥

अर्थ- (विदेहान्ताः) विदेहक्षेत्र पर्यन्तके (वर्षधरवर्षाः) पर्वत और क्षेत्र (तद्विगुणद्विगुणाः) भरतक्षेत्रसे दूने दूने विस्तारवाले हैं ॥ २५ ॥

विदेह क्षेत्रके आगेके पर्वत और क्षेत्रोंका विस्तार-

उत्तरा दक्षिणतुल्याः ॥ २६ ॥

अर्थ- विदेहक्षेत्रसे उत्तरके तीन पर्वत और तीन क्षेत्र दक्षिणके पर्वत और क्षेत्रोंके समान विस्तारवाले है।

इनका क्रम इस प्रकार है-

क्षेत्र और पर्वत	विस्तार		ऊचाई	गहराई
भरत क्षेत्र	$526\frac{6}{19}$	योजन	+	+
हिमवत् कुलाचल	$1052\frac{12}{19}$	"	१००यो.	२५यो.
हैमवत् क्षेत्र	$2105\frac{5}{19}$	"	+	+
महाहिमवत् कुलाचल	$4210\frac{10}{19}$	"	+	+
हरिक्षेत्र	$8421\frac{1}{19}$	"	+	+
निषध कुलाचल	$16842\frac{2}{19}$	"	४००यो.	१००यो.

1. भरत और ऐरावत क्षेत्र के बीचमें पूर्व व पश्चिम तक लम्बे विजयार्ध पर्वत हैं। जिनसे गङ्गा सिंधु और रक्तारक्तोदा नदियोंके कारण दोनों क्षेत्रोंके छह छह खण्ड हो जाते है। उनमें बीचका आर्यखण्ड और शेषके पाँच म्लेच्छखण्ड कहलाते हैं। तीर्थङ्कर आदि पदवीधारी पुरुष भरत, ऐरावतके आर्यखण्डमें और विदेह क्षेत्रोंमें उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदेह क्षेत्र	$33684 \frac{4}{19}$	"	+	+
नील कुलाचल	$16842 \frac{2}{19}$	"	४००यो.	१००यो.
रम्यक क्षेत्र	$8421 \frac{1}{19}$	"	+	१००यो.
रूक्मि कुलाचल	$4210 \frac{10}{19}$	"	२००यो.	५० यो.
हैरण्यवत क्षेत्र	$2105 \frac{5}{19}$	"	+	५० यो.
शिखरी कुलाचल	$1052 \frac{12}{19}$	"	२००यो.	२५ यो.
ऐरावत क्षेत्र	$526 \frac{6}{19}$ -	"	+	+

भरत और ऐरावतक्षेत्रमें कालचक्र का परिवर्तन-

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौषट्समययाभ्यामु-त्सर्पिण्यव सर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

अर्थ- (षट् समयाभ्याम्) छह कालोंसे युक्त (उत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके द्वारा (भरतैरावतयोः) भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जीवोंके अनुभव आदिकी (वृद्धिह्रासौ) बढती तथा न्यूनता होती रहती है।

भावार्थ- बीस कोड़ाकोड़ी सागरका एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं-१ उत्सर्पिणी-जिसमें जीवोंके ज्ञान आदिकी वृद्धि होती है और २ अवसर्पिणी- जिसमें जीवोंके ज्ञान अदिका ह्रास होता है। अवसर्पिणीके छ भेद हैं-१ सुषमसुषमा २ सुषमा, ३ सुषमदुःषमा, ४ दुःषमसुषमा, ५ दुःषमा और ६ अतिदुःषमा। इसी प्रकार उत्सर्पिणीके भी अतिदुःषमाको आदि लेकर छह भेद हैं।

इन छह भेदोंके कालका नियम इस प्रकार हैं-

१-सुषमासुषमा-चार कोड़ाकोड़ी सागर, २ सुषमा-तीन कोड़ाकोड़ी सागर, ३ सुषमादुःषमा-दों कोड़ा कोड़ी सागर, ४-दुषमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुषमा-व्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर, ५ दु:षमा-इक्कीस हजार वर्ष ६-अतिदु:षमा-इक्कीस हजार वर्ष। भरत और ऐरावत क्षेत्रमें इन छह भेदों सहित उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीका परिवर्तन होता रहता है। असंख्यात अवसर्पिणी बीत जानेके बाद एक हुण्डावसर्पिणी काल होता है। अभी हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है॥ २७॥

नोट- भरत और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी म्लेच्छखण्डों तथा विजयार्ध पर्वत की श्रेणियोंमें अवसर्पिणी कालके समय चतुर्थकालके आदिसे लेकर अन्त तक परिर्वतन होता है, और उत्सर्पिणी काल के समय तृतीय कालके अन्तसे लेकर आदि तक परिवर्तन होता है। इनमें आर्यखंडोकी तरह छहों कालोंका परिवर्तन नहीं होता है और न इनमें प्रलयकाल पड़ता है।

अन्य भूमियोंकी व्यवस्था-

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता: ॥ २८ ॥

अर्थ- (ताभ्याम्) भरत और ऐरावतके सिवाय (अपरा:) अन्य (भूमय:) क्षेत्र (अवस्थिता:) एक ही अवस्थामें रहते हैं-उनमे कालका परिवर्तन नहीं होता ॥ २८ ॥

हैमवत आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था-

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवका: ॥ २९ ॥

अर्थ- हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरू (विदेह क्षेत्रके अन्तर्गत एक विशेष स्थान) के निवासी मनुष्य तिर्यञ्च क्रमसे एक पल्य दो पल्य और तीन पल्यकी आयुवाले होते है[1] *॥ २९ ॥*

1. इन तीन क्षेत्रोंमें मनुष्योंके शरीरकी ऊँचाई क्रमसे एक दो और तीन कोशकी होती हैं। शरीरका रंग क्रमसे नील, शुक्ल और पीत होता है। दो हजार धनुषका एक कोश होता है और चार हाथका एक धनुष होता है। शरीर की अवगाहना छोटे योजन से होती है। चार कोशका छोटा योजन होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अढ़ाई द्वीप का नकशा

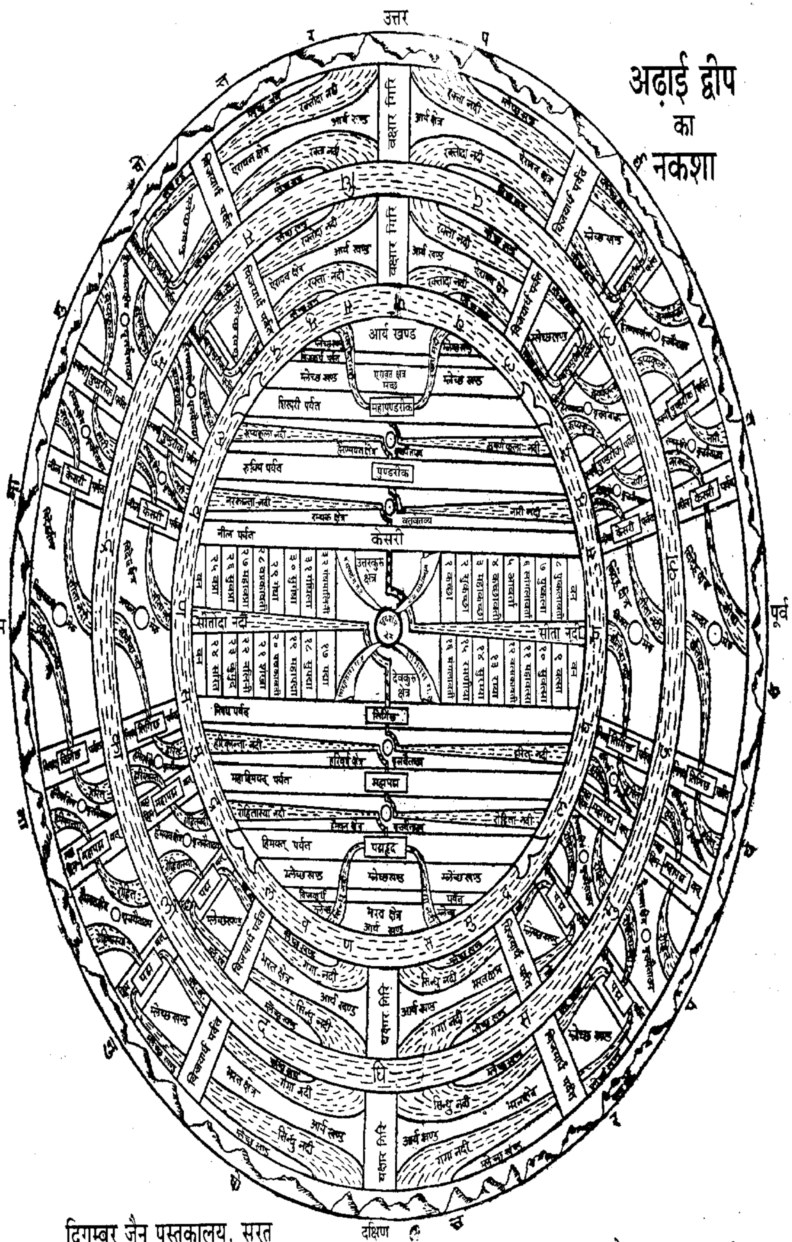

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत

फोन :- (०२६१) ४२७६२१

मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैरण्यवत आदि क्षेत्रोंमें आयुकी व्यवस्था-

तथोत्तराः ॥ ३० ॥

अर्थ- उत्तरके क्षेत्रोंमें रहनेवाले मनुष्य भी हैमवत आदिके मनुष्योंके समान आयुवाले होते हैं।

भावार्थ- हैरण्यवत क्षेत्रकी रचना हैमवत क्षेत्रके समान, रम्यककी रचना हरिक्षेत्रके समान और उत्तरकुरू (विदेहक्षेत्रके अन्तर्गत स्थान-विशेष) की रचना देवकुरूके समान है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्यरूप तीनों भोगभूमियोंके दो दो क्षेत्र हैं। जम्बूद्वीपमें छः भोगभूमियाँ और अढ़ाईद्वीपमें कुल ३० भोगभूमियाँ हैं ॥ ३० ॥[2]

विदेहक्षेत्रमें आयुकी व्यवस्था

विदेहेषु संख्येयकालाः ॥ ३१ ॥

अर्थ- विदेहक्षेत्रमें मनुष्य और तिर्यञ्च संख्यात वर्षकी आयुवाले होते हैं ॥ ३१ ॥[3]

भरतक्षेत्रका अन्य प्रकारसे विस्तार

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ॥ ३२ ॥

अर्थ- भरतक्षेत्रका विस्तार जम्बूद्वीपके एकसौ नव्वेवां भाग है।

---

2. जिनमें सब तरहकी भोगोपभोगकी सामग्री कल्पवृक्षोंसे प्राप्त होती है उन्हें भोगभूमि कहते हैं। 3. विदेहक्षेत्र में मनुष्यों की ऊँचाइ पांचसौ धनुष और आयु एक करोड़ वर्ष पूर्वकी होती है। चौरासी लाख वर्षो का एक पूर्वाङ्ग होता है और चौरासी लाख पूर्वाङ्गोंका एक पूर्व होता है । एक पूर्वमें एक करोड़का गुणा करने पर एक करोड़ पूर्व होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट- २३वें सूत्रमें भरतक्षेत्रका जो विस्तार बतलाया है उसमें और इसमें कोई भेद नहीं है। सिर्फ कथन करनेका प्रकार दूसरा है। यदि एक लाखके एकसौ नव्वे हिस्से किये जायें तो उनमें हरएकका प्रमाण $526 \frac{1}{19}$ योजन होगा ॥ ३२ ॥

धातकी खण्डका वर्णन

द्विर्धातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

अर्थ- धातकीखण्डे[1] नामक दूसरे द्वीपमें क्षेत्र, कुलाचल मेरू, नदी आदि समस्त पदार्थोंकी रचना जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी है ॥ ३३ ॥

पुष्कर द्वीपका वर्णन

पुष्करार्द्धे च ॥ ३४ ॥

अर्थ- पुष्करार्द्ध द्वीपमें भी जम्बूद्वीपकी अपेक्षा सब रचना दूनी दूनी है।

विशेष- पुष्करवर द्वीपका विस्तार १६ लाख योजन हैं, उसके ठीक बीच में चूड़ीके आकार मानुषोत्तर पर्वत पड़ा हुआ है, जिससे इस द्वीपके दो हिस्से हो गये हैं। पूर्वार्धमें सब रचना धातकीखण्डके समान है और जम्बूद्वीपसे दूनी दूनी हैं। इस द्वीपके उत्तरकुरू प्रांतमें एक पुष्कर (कमल) है, उसके संयोगसे ही इसका नाम पुष्करवर द्वीप पड़ा है ॥ ३४ ॥

मनुष्य क्षेत्र

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥ ३५ ॥

अर्थ- मानुषोत्तर पर्वतके पहले अर्थात् अढ़ाईद्वींपमें[2] ही मनुष्य

1. धातकीखण्ड द्वीप लवणसमुद्रको घेरे हुए है, इसका विस्तार ४ लाख योजन है। इसके उत्तरकुरु प्रांतमें धातकी (आंबला) का वृक्ष हैं, उसके संयोगसे इसका नाम धातकीखण्ड पड़ा हैं। 2. जम्बूद्वीप, लवणसमुद्र धातकीखण्ड, कालोदधि और पुष्करार्द्ध इतना क्षेत्र अढ़ाई द्वीप कहलाता है। इसका विस्तार ४५ लाख योजन हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। मानुषोत्तर पर्वतके आगे ऋद्धिधारी मुनिश्वर तथा विद्याधर भी नहीं जा सकते ॥ ३५ ॥

मनुष्योंके भेद-

आर्याम्लेच्छाश्च ॥ ३६ ॥

अर्थ- आर्य और म्लेच्छके भेदसे मनुष्य दो प्रकारके होते हैं।

आर्य- जो अनेक गुणोंसे सम्पन्न हों तथा गुणी पुरूष जिनकी सेवा करें उन्हें आर्य कहते हैं।

म्लेच्छ- जो आचार विचारसे भ्रष्ट हों तथा जिन्हें धर्मकर्म का कुछ विवेक न हो उन्हें म्लेच्छ कहते हैं ॥ ३६ ॥

कर्मभूमिका वर्णन-

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्रदेवकुरूत्तरकुरूभ्यः ॥ ३७ ॥

अर्थ- पांच[3] मेरू सम्बन्धी ५ भरत, ५ ऐरावत और देवकुरू-उत्तरकुरूको छोड़कर ५ विदेह, इस तरह अढ़ाईद्वीपमें कुल १५ कर्मभूमियां हैं।

कर्मभूमि- जहाँपर असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प इन छह कर्मों की प्रवृति हो उसे कर्म भूमि कहते हैं ॥ ३७ ॥

मनुष्योंकी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति-

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥ ३८ ॥

अर्थ- मनुष्योंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है ॥ ३८ ॥

---

3. जम्बूद्वीपका १, धातकीखण्डके २ और पुष्करार्द्ध के २ इस प्रकार कुछ ५ मेरु होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यञ्चों की स्थिति-

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

अर्थ- तिर्यञ्चोंकी भी उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति क्रम से तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त की है।

इति श्री मदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः

प्रश्नावली

[१] नारकियोंके दुःखोंका वर्णन कर उनकी उत्कृष्ट आयु बताइये।

[२] जम्बूद्वीप की परिधि कितनी हैं ?

[३] कर्मभूमि और भोगभूमि के क्षेत्र बताइये।

[४] धातकी खण्ड द्वीप का चित्र बनाइये।

[५] गङ्गा, सीतोदा, रक्तोदा और हरिकांता नदियोंके निकलने तथा बहने के स्थान बताएं।

[६] मानुषोत्तर पर्वत कहाँ है ?

[७] मनुष्यों के भेद बताकर उनकी उत्कृष्ट और जघन्य आयु के बारे में समझावे।

[८] आप किस क्षेत्र में रहते हैं।

[९] जम्बूद्वीपका नक्शा बनाइए।

[१०] तीर्थङ्कर किस किस क्षेत्रमें जन्म लेते हैं ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्याय

देवों के भेद-

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥ १ ॥

अर्थ- देव चार समूहवाले हैं अर्थात् देवों के चार भेद हैं - १-भवनवासी, २-व्यन्तर, ३-ज्योतिष्क, और ४-वैमानिक। देव-जो देवगति नामकर्मके उदयकी सामर्थ्य से नाना द्वीप समुद्र तथा पर्वत आदि रमणीक स्थानों पर क्रीड़ा करें वे देव कहलाते हैं ॥ १ ॥

भवनत्रिक देवोंमें लेश्या का विभाग-

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ॥ २ ॥

अर्थ- पहलेके तीन निकायों में पीतान्त अर्थात् कृष्ण नील कापोत और पीत ये चार लेश्याएं होती हैं ॥ २ ॥

चार निकायोंके प्रभेद-

दशाष्टपंचद्वादशविकल्पाःकल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।३ ।

अर्थ- कल्पोपपन्न [सोलहवें स्वर्ग तकके देव] पर्यन्त उक्त चार प्रकारके देवोंके क्रमसे दश आठ पांच और बारह भेद हैं ॥ ३ ॥

चार प्रकार के देवोंके सामान्य भेद-

इंद्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपाला नीकप्रकीर्णकाभियोग्यकिल्विषिकाश्चैकशः ।४ ।

अर्थ- उक्त चार प्रकार के देवोंमें प्रत्येक के इन्द्र, सामानिक त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मारक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक ये दस भेद होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्र -जो देव दूसरे देवोंमें नहीं रहने वाली अणिमा आदि ऋद्धियोंसे सहित हों उन्हें इन्द्र कहते हैं। ये देव, राजाके तुल्य होते हैं।

सामानिक- जिनकी आयु वीर्य भोग उपभोग आदि इन्द्रके तुल्य हों, पर आज्ञारूप ऐश्वर्यसे रहित हों, उन्हें सामानिक कहते हैं।

त्रायस्त्रिंश- जो देव मन्त्री पुरोहितके स्थानापन्न हों उन्हें त्रायस्त्रिंश कहते हैं। ये देव एक इन्द्रकी सभामें तेतीस ही होते हैं।

पारिषद- जो देव इन्द्रकी सभामें बैठनेवाले हों उन्हें पारिषद कहते हैं।

आत्मरक्ष- जो देव अंगरक्षकके सदृश होते हैं उन्हें आत्मरक्ष कहते हैं।

लोकपाल- जो कोतवालके समान लोकका पालन करते हैं उन्हें लोकपाल कहते हैं।

अनीक- जो देव पदाति आदि सात तरहकी सेनामें विभक्त रहते हैं वे अनीक कहलाते हैं।

प्रकीर्णक- जो देव नगरवासियोंके समान हों उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं।

आभियोग्य- जो देव दासोंके समान सवारी आदिके काम आवें वे आभियोग्य हैं।

किल्विषिक- जो देव चाण्डालादिकी तरह नीच काम करनेवाले हों उन्हें किल्विषिक कहते है।

व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें इंद्र आदि भेदों की विशेषता

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ५

अर्थ- व्यन्तर और ज्योतिषी देव त्रायस्त्रिंश तथा लोकपाल भेद से रहित हैं ॥ ५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवोंमें इन्द्रकी व्यवस्था

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥ ६ ॥

अर्थ- भवनवासी और व्यन्तरोंमें प्रत्येक भेद में दो दो इन्द्र होते हैं।

भावार्थ- भवनवासीयोंके दश भेदों में बीस और व्यन्तरों के आठ भेदों में सोलह इन्द्र होते हैं तथा इतने ही प्रतीन्द्र होते हैं ॥ ६ ॥

देवोंमें स्त्रीसुखका वर्णन-

कायप्रवीचारा आ ऐशानात् ॥ ७ ॥

अर्थ- [आ ऐशानात्] ऐशान स्वर्ग पर्यन्त के देव अर्थात् भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और पहले दूसरे स्वर्ग के देव [कायप्रवीचाराः] मनुष्यों के समान शरीर से काम सेवन करते हैं। प्रवीचार=कामसेवन ॥ ७ ॥

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनःप्रवीचाराः ॥ ८ ॥

अर्थ- शेष स्वर्ग के देव, देवियों के स्पर्श से, रूप देखने से शब्द सुनने से और मनके विचारने से कामसेवन करते हैं। अर्थात् तीसरे और चौथे स्वर्ग के देव देवाङ्गनाओं के स्पर्श से पाँचवें, छठवें, सातवें, आठवें, स्वर्ग के देव देवियों के रूप देखने से, नौवें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्ग के देव देवियों के शब्द सुननेसे तथा तेरहवे, चौदहवें, पन्द्रहवें और सोलहवें स्वर्ग के देव देवाङ्गनाओं के मनके विचारने मात्र से तृप्त हो जाते हैं-उनकी कामेंच्छा शांत हो जाती है ॥ ८ ॥

परेऽप्रवीचारा ॥ ९ ॥

अर्थ- सोलहवें स्वर्ग से आगे देव काम सेवनसे रहित होते हैं। इनके कामेच्छा ही उत्पन्न नहीं होती, तब उनके प्रतिकारसे क्या प्रयोजन ? ॥ ९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनवासियों के दश भेद-

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्नि वातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ॥ १० ॥

अर्थ- भवनवासी देवोंके असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार ये दश भेद हैं।[1]

व्यन्तर देवोंके आठ भेद-

व्यन्तराः किन्नरकिंपुरूषमहोरगगन्धर्व यक्षराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

अर्थ- व्यन्तरदेव-किन्नर, किम्पुरूष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भूत और पिशाच इस प्रकार आठ तरहके भेद होते हैं।

ज्योतिष्क देवोंके पाँच भेद-

ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्ण कतारकाश्च ॥ १२ ॥

अर्थ- ज्योतिष्क देव-सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारोंके भेद से पाँच प्रकार के हैं।

नोट- ज्योतिष्कदेवोंका निवास मध्यलोकके समधरातलसे ७९० योजनकी ऊँचाईसे लेकर ९०० योजनकी ऊँचाई तक आकाशमें है। १२।

ज्योतिष्कदेवोंका विशेष वर्णन-

मेरूप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।१३।

1. असुरकुमार को छोड़कर ९ प्रकारके भवनवासी देव और राक्षसको छोड़कर ७ प्रकारके व्यन्तर देव रत्नप्रभा पृथ्वीके उपरके खर भागमें रहते हैं तथा असुरकुमार और राक्षस उसी पृथ्वीके पंक भागमें रहते है, इसके सिवाय व्यन्तर देवोंका मध्यलोकमें भी कई जगह निवास है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- ऊपर कहे हुए ज्योतिष्कदेव (नृलोके) मनुष्यलोकमें [मेरूप्रदक्षिणा:] मेरू पर्वतकी प्रदक्षिणा देते हुए [नित्यगतय:] हमेशा गमन करते रहते है[1] ॥ १३ ॥

तत्कृत: कालविभाग: ॥ १४ ॥

अर्थ- [कालविभाग:] घडी घण्टा दिन रात आदि व्यवहारकालका विभाग [तत्कृत:] उन्ही गतिशील ज्योतिष्क देवोंके द्वारा किया गया है ॥ १४ ॥

बहिरवस्थिता: ॥ १५ ॥

अर्थ- मनुष्यलोक-अढ़ाईद्वीपसे बाहरके ज्योतिष्क देव स्थिर हैं ॥१५ ॥

वैमानिक देवोंका वर्णन-

वैमानिका: ॥ १६ ॥

अर्थ- अब यहांसे वैमानिक देवोंका वर्णन शुरू होता है।

विमान- जिसमें रहनेवाले देव अपनेको विशेष पुण्यात्मा समझें उन्हें विमान कहते है और विमानोंमें जो पैदा हों उन्हें वैमानिक कहते हैं ॥ १६ ॥

वैमानिक देवोंके भेद-

कल्पोपपन्ना: कल्पातोताश्च ॥ १७ ॥

अर्थ- वैमानिक देवोंके दो भेद हैं-१-कल्पोपपन्न और २-कल्पातीत। जिनमें इन्द्र आदि दश भेदोंकी कल्पना होती हैं ऐसे सोलह स्वर्गोंको कल्प कहते है, उनमें जो पैदा हों उन्हे कल्पोपपन्न कहते है। और जो सोलहवें स्वर्गसे आगे पैदा हों उन्हें कल्पातीत कहते हैं ॥ १७ ॥

1. जम्बूद्वीपमें २, लवणसमुद्रमें ४, धातकीखण्डमें १२, कालोदधिमें ४२ और पुष्करार्द्धमें ७२ सूर्य तथा इतनेही चंद्रमा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पोंका स्थितिक्रम-

उपर्युपरि ॥ १८ ॥

अर्थ- सोलह स्वर्गोंके आठ युगल, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर ये सब विमान क्रमसे ऊपर ऊपर हैं ॥ १८ ॥

वैमानिक देवोंके रहनेका स्थान-

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्र ब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्र सतार सहस्त्रारेष्वानत प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसुग्रैवेयकेषु विजय वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।१९।

अर्थ-सौधर्म-ऐशान, सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लान्तव-कापिष्ठ, शुक्र-महाशुक्र, सतार-सहस्त्रार इन छह युगलोंके बारह स्वर्गोंमें, आनत-प्राणत, इन दो स्वर्गोंमें, आरण-अच्युत इन दो स्वर्गोंमें, नव ग्रैवेयक [1]विमानोमें, नव अनुदिश [2] विमानोंमें और विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि इन पांच अनुत्तर विमानोमें वैमानिक देव रहते है।

नोट- इस सूत्रमें यद्यपि अनुदिश विमानोंका पाठ नहीं है तथापि 'नवसु' इस पदसे उनका ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ १९ ॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर अधिकता-

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रिया वधि विषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥

---

1. नवग्रैवेयक - सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, विशाल, सुमन, सौमनस और प्रीतिकर। 2. नव अनुदिश, आदित्य, अर्चि, अर्चिमाली, वैरोचन, प्रभास, अर्चिप्रभ, अर्चिर्मध्य, अर्चिरावर्त और अर्चिर्विशिष्ट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- वैमानिक देव-आयु, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याकी विशुद्धता, इन्द्रिय विषय और अवधिज्ञानका विषय इन सबकी अपेक्षा उपर उपर विमानोमें अधिक अधिक हैं ॥ २० ॥

वैमानिक देवोंमें उत्तरोत्तर हीनता-

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥

अर्थ- ऊपर ऊपरके देव, गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा हीन हीन हैं।

नोट- सोलहवें स्वर्गसे आगेके देव अपने विमानको छोडकर अन्यत्र कहीं नहीं जाते ॥ २१ ॥

वैमानिक देवोंमें शरीरकी ऊचाईका क्रम इस प्रकार है

स्वर्ग	हाथ	स्वर्ग	हाथ
१-२	7	१३-१४	$3\frac{1}{2}$
३-४	6	१५-१६	3
५-८	5	अधोग्रैवेयक	$2\frac{1}{2}$
९-१२	4	मध्यग्रैवेयक	2
		उपरिमग्रैवेयक, अनुदिश	$1\frac{1}{2}$
		अनुत्तर विमान	1

वैमानिक देवोंमे लेश्याका वर्णन-

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

अर्थ- (द्वित्रिशेषेषु) दो युगलोंमें तीन युगलोंमें तथा शेषके समस्त विमानोंमें क्रमसे (पीतपद्मशुक्ललेश्याः) पीत पद्म और शुक्ल लेश्या होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ- पहले और दूसरे स्वर्गमें पीतलेश्या, तीसरे और चौथे स्वर्गमें पीत और पद्म लेश्या, पांचवे, छठवें, सातवें आठवें स्वर्गमें पद्मलेश्या, नवमें, दशमें, ग्यारहवें और बारहवें स्वर्गमें पद्म और शुक्ललेश्या तथा शेष समस्त विमानोंमें शुक्ललेश्या है। अनुदिश और अनुत्तरके १४ विमानोंमें परम शुक्ललेश्या होती है ॥ २२ ॥

कल्पसंज्ञा कहांतक है ?

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥

अर्थ- (ग्रैवेयकेभ्यः प्राक्) ग्रैवेयकोंसे पहले पहलेके १६ स्वर्ग [कल्पाः] कल्प कहलाते हैं इससे आगेके विमान कल्पातीत हैं। नवग्रैवेयक वगेरहके देव एकसमान वैभवके धारी होते हैं और वे अहमिन्द्र कहलाते हैं ॥ २३ ॥

लौकान्तिक देव-

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ॥ २४ ॥

अर्थः ब्रह्मलोक [पांचवां स्वर्ग] है आलय [निवासस्थान] जिनका ऐसे लौकान्तिक देव हैं ।

नोट-ये देव ब्रह्मलोकके अन्तमें रहते हैं अथवा एक भवावतारी होनेसे लोक [संसार] का अन्त [नाश] करनेवाले होते हैं । इसलिये लौकान्तिक कहलाते हैं। ये द्वादशांगके पाठी होते है, ब्रह्मचारी रहते हैं और तीर्थंकरोंके सिर्फ तपकल्याणकमें आते हैं । इन्हे 'देवर्षि' भी कहते हैं ।

लौकान्तिक देवोंके नाम-

सारस्वतादित्यवह्न्यरूणगर्दतोयतु-षिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ-१ सारस्वत, २ आदित्य, ३ वह्नि, ४ अरूण, ५ गर्दतोय, ६ तुषित, ७ अव्याबाध और ८ अरिष्ट ये आठ लौकान्तिक देव हैं । वे ब्रह्मलोकका ऐशान आदि आठ दिशाओंमें रहते हैं ॥ २५ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्र सं० १४

भरत क्षेत्र

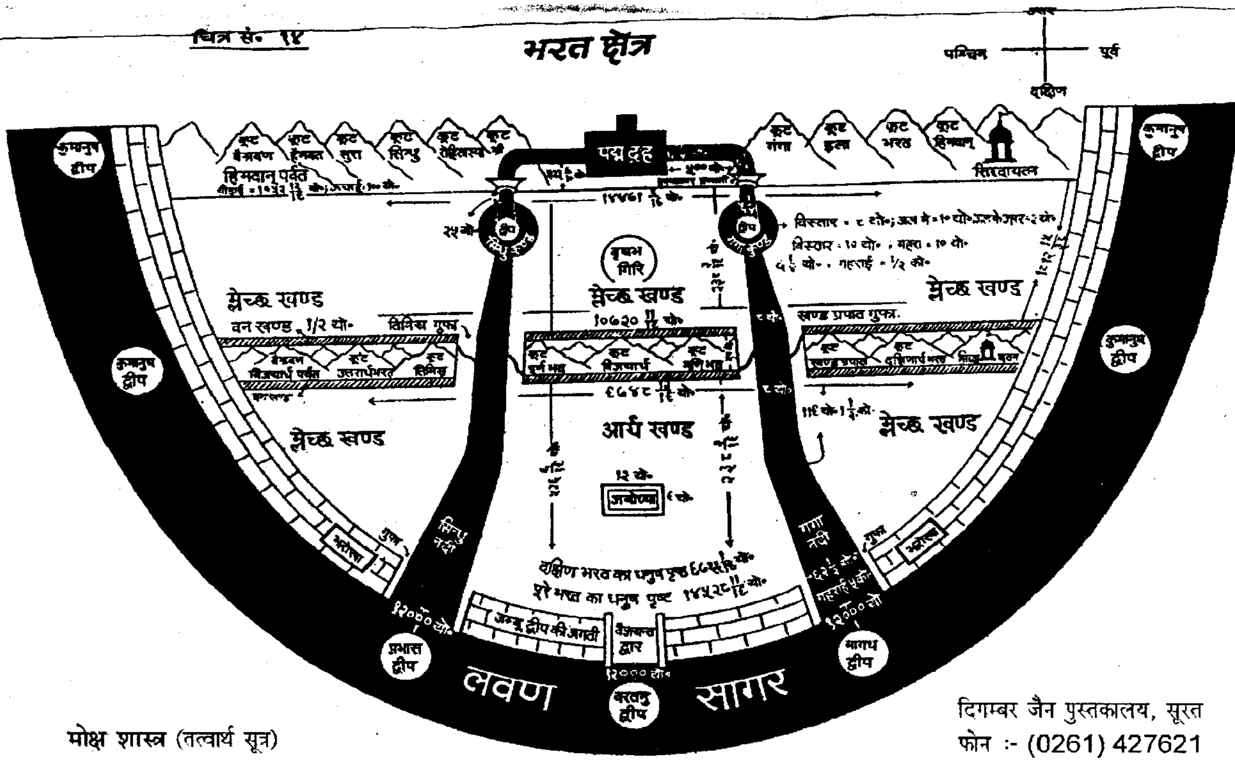

मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र)

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत
फोन :- (0261) 427621

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुदिश तथा अनुत्तरवासी देवोंमें अवतारका नियम-

विजयादिषु द्विचरमाः ॥ २६ ॥

अर्थ-विजय वैजयंत जयंत अपराजित तथा अनुदिश विमानोंके अहमिन्द्र द्विचरम होते है, अर्थात मनुष्योंके दो जन्म लेकर नियमसे मोक्ष चले जाते है। किन्तु सर्वार्थसिद्धिके अहमिन्द्र एक भवावतारी ही होते है ॥ २६ ॥

तिर्यञ्च कौन है ?

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।२७।

अर्थ-उपपाद जन्मवाले- देव नारकी तथा मनुष्योंसे अतिरिक्त जीव [तिर्यग्योनयः] तिर्यञ्च है । तिर्यञ्च समस्त संसारमें व्याप्त हैं । परन्तु त्रसनालीमें ही रहते हैं।

भवनवासी देवोंकी उत्कृष्ट आयुका वर्णन-

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥

अर्थ- भवनवासीयोंमें असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेषके ६ कुमारोंकी आयु क्रमसे १ सागर, ३ पल्य, $2\frac{1}{2}$ पल्य २ पल्य और $1\frac{1}{2}$ पल्य है ॥२८ ॥

वैमानिक देवोंकी उत्कृष्ट आयु-[1]

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

---

1. यद्यपि भवनवासियोंके बाद व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंकी आयु बतलानेका क्रम है तथापि लाघवके ख्यालसे यहाँ क्रमभंग कर वैमानिक देवोंकी आयु बतला रहे है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- सौधर्म ऐशान स्वर्गके देवोंकी आयु दो सागरसे कुछ अधिक है।[1]

नोट- यहां 'सागरोपमे' इस द्विवचनान्त प्रयोगसे ही दो सागर अर्थ किया जाता है ॥ २९ ॥

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अर्थ- सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें देवोकीं आयु सात सागरसे कुछ अधिक है।

नोट- इस सूत्रमें अधिक शब्दोंकी अनुवृति पूर्व सूत्रसे हुई है ॥ ३० ॥

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्च दशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

अर्थ- आगेके युगलोंमें ७ सागरसे क्रमपूर्वक ३-७-९-११-१३ और १५ सागर अधिक आयु है। अर्थात् ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें १० सागरसें कुछ अधिक, लान्तव और कापिष्ट स्वर्गमें १४ सागरसे कुछ अधिक, शुक्र और महाशुक्र स्वर्गमें १६ सागरसे कुछ अधिक, सतार और सहस्त्रार स्वर्गमें १८ सागरसे कुछ अधिक[2] *आनत और प्राणत स्वर्गमें २० सागर तथा आरण और अच्युत स्वर्गमें २२ सागर उत्कृष्ट स्थिति हैं ॥ ३१ ॥*

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रेवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

1. यह अधिकता धातायुष्क जीवोंकी अपेक्षा है। जिन्होंने पहले ऊपरकी स्वर्गोंकी आयु बांधी थी, बादमें संक्लेश परिणामोंके कारण आयुमें ह्रास होकर नीचेके स्वर्गमें उत्पन्न होते है वे घातायुष्क कहलाते है. ऐसे देवोंकी आयु अन्यं देवोंकी अपेक्षा आधा सागर अधिक होती है। 2. सूत्रमें 'तु' शब्द होनेके कारण अधिक शब्दका सम्बन्ध बारहवें स्वर्ग तक ही होता है. क्योंकि घातायुष्क जीवोंकी उत्पत्ति यहीं तक होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- [आरण्याच्चुतात्] आरण और अच्चुत स्वर्गसे [उर्ध्वम्] ऊपर [नवसु ग्रेवेयकेषु] नवग्रेवेयकोंमें [विजयादिषु] विजय आदि चार विमान तथा नव अनुदिशोंमें[3] [च] और [सर्वार्थसिद्धौ] सर्वार्थसिद्धि विमानमें [एकैकेन] एक एक सागर बढ़ती हुई आयु है। अर्थात् पहले ग्रेवेयकमें २३ सागर, दूसरेमें २४ सागर आदि। अनुदिशोंमें ३२ सागर और अनुत्तरोंमें ३३ सागर उत्कृष्ट स्थिति है।

नोट-सूत्रमें 'सर्वार्थसिद्धौ' इस पदको विजयादिसे पृथक् कहनेसे सूचित होता हैं कि सर्वार्थसिद्धिमें सिर्फ उत्कृष्ट स्थिति ही होती है।

स्वर्गोंमें जघन्य आयुका वर्णन-

अपरा पल्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-सौधर्म और ऐशान स्वर्गमें जघन्य आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है ॥ ३३ ॥[4]

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तराः ॥ ३४ ॥

अर्थ- [पूर्वापूर्वा] पहले पहले युगलकी उत्कृष्ट आयु [परतः परतः] आगे आगेके युगलोंमें [अनन्तराः] जघन्य आयु है। जैसे सौधर्म और ऐशान स्वर्गकी जो उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक दो सागरकी है वह सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गमें जघन्य आयु है। इसी क्रमसे आगे जानना चाहिए। सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य आयु नहीं होती ॥ ३४ ॥

नारकियोंकी जघन्य आयु-

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

अर्थ- और इसी प्रकार दूसरे आदि नरकोंमें भी नारकियोंकी

3. आदि शब्द के 'प्रकारार्थक' होनेसे अनुदिशका भी ग्रहण होता है।

4. असंख्यात वर्षोका एक पल्य होता है और दश कोड़ाकोड़ी पल्योंका एक सागर होता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य आयु है। अर्थात् पहले नरककी उत्कृष्ट आयु दूसरे नरककी जघन्य आयु है। इसी तरह समस्त नरकों में जानना चाहिए।

प्रथम नरककी जघन्य आयु-

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

अर्थ- पहले नरकमें नारकियोंकी जघन्य आयु दश हजार वर्षों की है॥ ३६ ॥

भवनवासियोंकी जघन्य आयु-

भवनेषु च ॥ ३७ ॥

अर्थ- भवनवासियोंमें भी जघन्य आयु दश हजार वर्षों की है ॥ ३७ ॥

व्यन्तरोंकी जघन्य आयु-

व्यन्तराणां च ॥ ३८ ॥

अर्थ- व्यन्तर देवोंकी भी जघन्य स्थिति दश हजार वर्षों की है ॥ ३८ ॥

व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु-

परा पल्योपममधिकम् ॥ ३९ ॥

अर्थ- व्यन्तरोंकी उत्कृष्ट आयु एक पल्यसे कुछ अधिक है ॥ ३९ ॥

ज्योतिषी देवोंकी उत्कृष्ट आयु-

ज्योतिष्काणाम् च ॥ ४० ॥

अर्थ- ज्योतिष्क देवोंकी भी उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एक पल्यकी है ॥ ४० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन लोक की रचना

संकेत → को. = कोश
यो. = योजन
सिद्ध लोक = ३२१६२२४१ $\frac{2}{3}$ धनुष

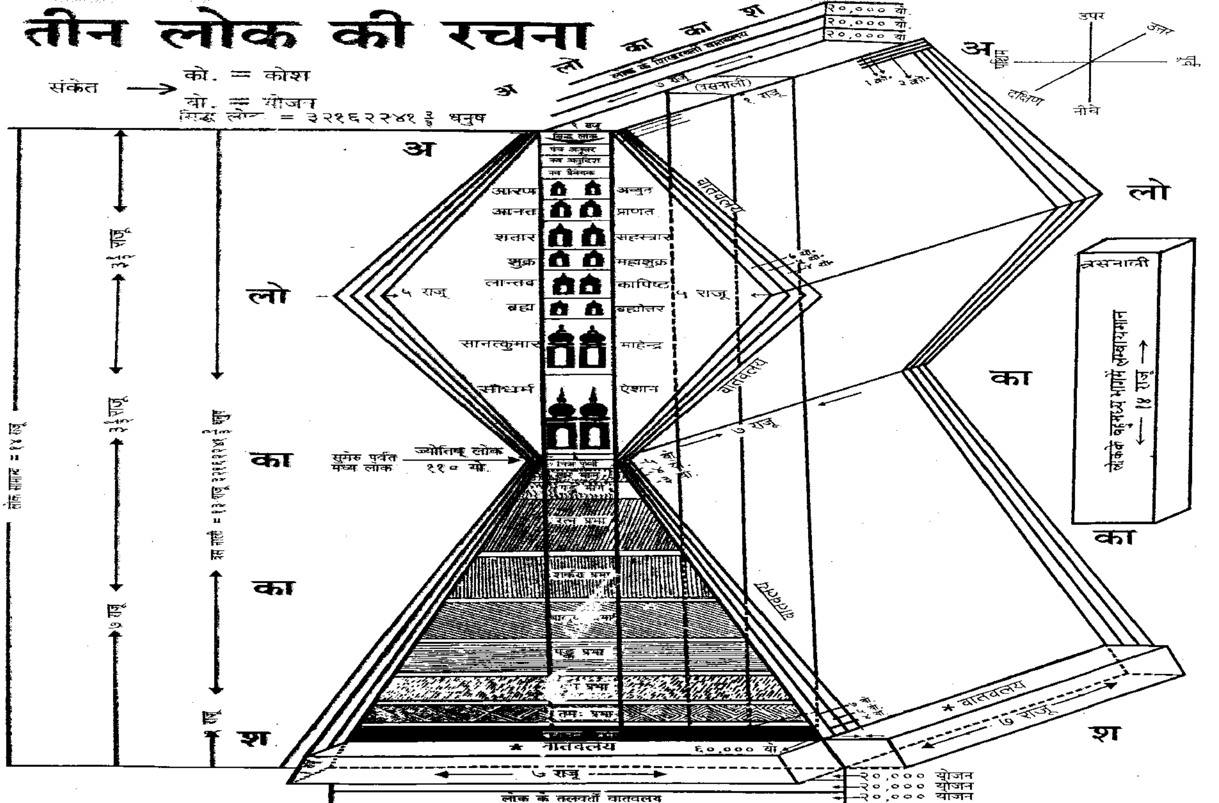

* लोक के नीचे वाले एक राजू प्रमाण कलकल नामक स्थावर लोक को चारों ओर से घेर कर अवस्थित ६०,००० योजन मोटा वातवलय ।

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत
फोन :- (0261) 427621

मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिष्क देवोंकी जघन्य आयु-

तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

अर्थ-ज्योतिष्क देवोंकी जघन्य आयु उस-एक पल्यके आठवें भाग है ॥ ४१ ॥

लौकांतिक देवोंकी आयु-

लौकांतिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

अर्थ- [सर्वेषाम्] समस्त [लौकांतिकानाम्] लौकांतिक देवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट आयु [अष्टौ सागरोपमाणि] आठ सागरप्रमाण है ॥ ४२ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।

प्रश्नावली

(१) भवनत्रिकमें लेश्याएँ कौन कौन होती हैं ?

(२) सोलहवें स्वर्गके आगेके देव प्रवीचारके बिना सुखी किस तरह रहते हैं ?

(३) सामानिक आत्मरक्षक और किल्विषिक जातिके देवोंके लक्षण बताओ।

(४) स्वर्गलोकका नकशा खींचकर यथास्थान सब व्यवस्था दर्शाओ।

(५) सर्वार्थसिद्धिमें जघन्य स्थिति कितनी है ?

(६) व्यन्तर देव कहां रहते हैं ?

(७) अढ़ाईद्वीपमें कितने सूर्य और कितने चन्द्रमा हैं ?

(८) दिन आदिका विभाग किससे होता है ?

(९) स्वर्गमें दिन रात होते हैं या नहीं ?

(१०) लौकांतिक देवोंकी कितनी आयु है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगति व्यवस्था (भवनत्रिक)

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीरकी उँचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
भवनवासी-		10	40	कृष्ण नील				
१ असुरकुमार	रत्नप्रभाकापंकबहुल			कापोत और	25 धनुष	1 सागर	दश हजार वर्ष	कायप्रवीचार
२ नागकुमार	भाग			जघन्य पीत	10 ,,	3 पल्य		,,
३ विद्युत्कुमार	रत्नप्रभा पृथ्वीके ऊपर नीचे एक एक हजार योजन छोड़कर खर भागमें			,,	10 ,,	$1\frac{1}{2}$,,		,,
४ सुपर्णकुमार				,,	10 ,,	$2\frac{1}{2}$,,		,,
५ अग्निकुमार				,,	10 ,,	$1\frac{1}{2}$,,		,,
६ वातकुमार				,,	10 ,,	$1\frac{1}{2}$,,		,,
७ स्तनितकुमार				,,	10 ,,	$1\frac{1}{2}$,,		,,
८ उदधिकुमार				,,	10 ,,	$5\frac{1}{2}$,,		,,
९ द्वीपकुमार				,,	10 ,,	2 ,,		,,
१० दिक्कुमार				,,	10 ,,	$1\frac{1}{2}$,,		,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीरकी उँचाई	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
व्यंतर		८	३२	कृष्ण, नील कापोत और जघन्य पीत		एक पल्यसे कुछ अधिक	दश हजार वर्ष	
१ किन्नर	उपरिष्ट खरभाग				१० धनुष			काय प्रवीचार
२ किपुरूष	,,				१० ,,			
३ महोरग	,,			,,	१० ,,			
४ गन्धर्व	,,			,,	१० ,,			
५ यक्ष	,,			,,	१० ,,			
६ राक्षस	पङ्कवहुल भाग			,,	१० ,,			
७ भूत	उपरिष्ट खर भाग			,,	१० ,,			
८ पिशाच	,,			,,	१० ,,			
ज्योतिष्क-	समान धरातलसे ७९० योजनकी ऊँचाईसे लेकर ९०० योजन तक मध्य लोकमें	५	२			कुछ अधिक		
१ सूर्य				,,	७ धनुष		१/८ पल्य	काय प्रवीचार
२ चन्द्र				,,	७ ,,	१ पल्य		
३ ग्रह				,,	७ ,,			
४ नक्षत्र				,,	७ ,,			
५ प्रकीर्णक				,,	७ ,,			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगति व्यवस्था (वैमानिक देव)

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीर की ऊं.	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
कल्प-								
सौधर्म-ऐशान	ऊर्ध्वलोक	12	24	पीत	7 हाथ	साधिक २ सामर	साधिक1ल्य	काय
सानत्कुमार-माहेन्द्र	"			पीत पद्म	6 हाथ	" ७ "	" 2 सागर	स्पर्श
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	"			पद्मलेश्या	5 हाथ	" १० "	" 7 "	रुप
लांतव-कापिष्ट	"			"	5 हाथ	" १४ "	" 10 "	"
शुक्र-महाशुक्र	"			पद्मशुक्ल	4 हाथ	" १६ "	" 14 "	शब्द
शतार-सहस्रार	"			"	4 हाथ	" १८ "	" 16 "	"
आनत-प्राणत	"			शुक्ल	$3\frac{1}{2}$ हाथ	20 "	" 18 "	मन
आरण-अच्युत	"			"	3 हाथ	22 "	" 20 "	"
ग्रैवेयक-			अहमिंद्र					
सुदर्शन	"			शुक्ल	$2\frac{1}{2}$ हाथ	23 सागर	" 22 "	अवीचार
अमोध	"			"	"	24 "	" 23 "	"
सुप्रबुद्ध	"			"	"	25 "	" 24 "	"
यशोधर	"			"	2 हाथ	26 "	" 25 "	"
सुभद्र	"			"	"	27 "	" 26 "	"
विशाल	"			"	"	28 "	" 27 "	"
सुमन	"			"	$1\frac{1}{2}$ हाथ	29 "	" 28 "	"
सौंमन	"			"	"	30 "	" 29 "	"
प्रीतिंकर	"			"	"	31 "	" 30 "	"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव	निवास	भेद	इन्द्र	लेश्या	शरीर की ऊं.	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु	प्रवीचार
अनुदिश–								
आदित्य	ऊर्ध्वलोक			परमशुल्क	$1\frac{1}{2}$ हाथ	32 सागर	साधि 31 सागर	अप्रवीचार
अर्चि	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अर्चिमाली	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
वैरोचन	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
प्रभास	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अर्चिप्रभ	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अर्चिर्मध्य	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अर्चिरावर्त	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अर्चिविशिष्ट	,,			,,	,,	32 ,,	,, 31 ,,	,,
अनुत्तर–								
विजय	,,			,,	1 हाथ	33 ,,	,, 32 ,,	,,
विजयन्त	,,			,,	,,	33 ,,	,, 32 ,,	,,
जयन्त	,,			,,	,,	33 ,,	,, 32 ,,	,,
अपराजित	,,			,,	,,	33 ,,	,, 32 ,,	,,
सर्वार्थसिद्धि	,,			,,	,,	33 ,,	जघन्य नहीं होती	,,

(१) वैमानिक देवोंके १२ भेद इन्द्रोंकी अपेक्षा हैं। १, २, ३, ४, तथा १३, १४, १५ और १६ वें स्वर्गमें प्रत्येक स्वर्ग का एक–एक इन्द्र तथा मध्यके ८ स्वर्गोमें युगल युगलके इन्द्र है।

(२) पाँचवें स्वर्ग में जो लौकांतिक देव रहते हैं उनकी आयु ८ सागर की होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचम अध्याय

अजीवतत्वका वर्णन

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥

अर्थ- (धर्माधर्माकाशपुद्गलाः) धर्म अधर्म आकाश और पुद्गल ये चार (अजीवकायाः) अजीव तथा बहुप्रदेशी हैं।

नोट- इन सूत्रमें बहुप्रदेशी नहीं होनेसे काल द्रव्यका ग्रहण नहीं किया है [1] ॥ १ ॥

द्रव्योंकी गणना-

द्रव्याणि ॥ २ ॥

अर्थ- उक्त चार पदार्थ द्रव्य हैं। द्रव्यका लक्षण आगेके सूत्रोंमें कहा जावेगा ॥ २ ॥

जीवाश्च ॥ ३ ॥

अर्थ- जीव भी द्रव्य है।

नोट- यहां 'जीवाः' इस बहुवचनसे जीवद्रव्यके अनेक भेद सूचित होते है। इनके सिवाय ३९वें सूत्रमें कालद्रव्यका भी कथन होगा, इसलिये इन सबको मिलानेपर १-जीव द्रव्य, २-पुद्गल द्रव्य, ३-धर्म द्रव्य, ४-अधर्म द्रव्य, ५-आकाश द्रव्य और ६-काल द्रव्य ये छह द्रव्य होते हैं ॥ ३ ॥

द्रव्योंकी विशेषता-

नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

अर्थ- उपर कहे हुए सभी द्रव्य नित्य अवस्थित और अरूपी हैं ।

1. जो द्रव्य सत्तारूप होकर बहुप्रदेशी हों उन्हें अस्तिकाय कहते है। वे पांच है - १ जीव, २ पुद्गल, ३ धर्म, ४ अधर्म और ५ आकाश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कभी नष्ट नहीं होते इसलिए नित्य हैं। अपनी ६ संख्याका उल्लङ्घन नहीं करते इसलिए अवस्थित हैं और रूप रस, गन्ध तथा स्पर्शसे रहित हैं इसलिये अरूपी हैं ॥ ४ ॥

पुद्‌गल द्रव्य अरूपी नहीं है-

रूपिणः पुद्‌गलाः ॥ ५ ॥

अर्थ- पुद्‌गल द्रव्य रूपी अर्थात् मूर्तिक हैं।

नोट- यद्यपि सूत्रमें पुद्‌गलको सिर्फ रूपी बतलाया हैं; पर साहचर्यसे रस, गन्ध तथा स्पर्शका भी ग्रहण हो जाता है ॥ ५ ॥

द्रव्योंके स्वभेदकी गणना-

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

अर्थ- आकाश पर्यंत एक एक द्रव्य हैं अर्थात् धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य एक एक हैं। जीव द्रव्य अनन्त हैं, पुद्‌गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं और कालद्रव्य असंख्यात (अणुरूप) हैं ॥ ६ ॥

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

अर्थ- धर्म, अधर्म और आकाश ये तीनों द्रव्य क्रिया रहित हैं।

क्रिया- एक स्थानसे दूसरे स्थानमें प्राप्त होनेको क्रिया कहते हैं।

नोट- धर्म और अधर्म द्रव्य समस्त लोकाकाशमें व्याप्त हैं तथा आकाशद्रव्य लोक और अलोक दोनोंजगह व्याप्त है; इसलिये अन्य क्षेत्रका अभाव होनेसे इनमें क्रिया नहीं होतीं ॥ ७ ॥

द्रव्योंके प्रदेशोंका वर्णन-

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ॥ ८ ॥

अर्थ- (धर्माधर्मैकजीवानाम्) धर्म अधर्म और एक जीव द्रव्यके (असंख्येयाः) असंख्यात (प्रदेशाः) प्रदेश होते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश- जितने क्षेत्रको एक पुद्गल परमाणु रोकता हैं उतने क्षेत्रको एक प्रदेश कहते हैं।

नोट- सब जीव द्रव्योंके अनन्तानन्त प्रदेश होते हैं, इसलिए सूत्रमें एक जीवका ग्रहण किया है ॥ ८॥

आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥

अर्थ- आकाशके अनन्त प्रदेश हैं। परन्तु लोकाकाशके असंख्यात ही हैं ॥ ९ ॥

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥

अर्थ- (पुद्गलानाम्) पुद्गलोंके (संख्यैयाऽसंख्यैयाःच) संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं।

शङ्का- जब लोकाकाशमें असंख्यात ही प्रदेश हैं तब उसमें अनन्त प्रदेशवाले पुदगल द्रव्य तथा शेष द्रव्य किस तरह रह सकेंगे ?

समाधान- पुद्गलद्रव्योंमें दो तरहका परिणमन होता है-एक सूक्ष्म और दूसरा स्थूल। जब उसमें सूक्ष्म परिणमन होता है तब लोकाकाशके एक प्रदेशमें भी अनन्त प्रदेशवाला पुद्गल स्कन्ध स्थान पा लेता है। इसके सिवाय समस्त द्रव्योमें एक दूसरेको अवगाहन देनेकी सामर्थ्य है, जिसके अल्प क्षेत्रमें ही समस्त द्रव्योके निवासमें कोई बाधा नहीं होती ॥ १० ॥

नाणोः ॥ ११ ॥

अर्थ- पुद्गलके परमाणुके द्वितीयादिक प्रदेश नहीं हैं अर्थात् वह एक प्रदेशी ही है ॥ ११ ॥

समस्त द्रव्योंके रहनेका स्थान-

लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥

अर्थ- ऊपर कहे हुए समस्त द्रव्योंका अवगाह (स्थान) लोकाकाशमें है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकाकाश- आकाशके जितने हिस्सेमें जीव आदि छहों द्रव्य पाए जावें उतने हिस्सेको लोकाकाश कहते है। बाकी हिस्सा अलोकाकाश कहलाता है ॥१२॥

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ॥ १३ ॥

अर्थ- धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह तिलमें तेलकी तरह समस्त लोकाकाशमें है ॥ १३ ॥

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

अर्थ-(पुद्गलानाम्) पुद्गल द्रव्यका अवगाह (एकप्रदेशादिषु) लोकाकाशके एक प्रदेशको लेकर संख्यात असंख्यात प्रदेशोंमें (भाज्यः) विभाग करने योग्य हैं ॥ १४॥

असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

अर्थ- (जीवानाम्) जीवोंका अवगाह (असंख्येयभागादिषु) लोकाकाशके असंख्यातवें भागसे लेकर सम्पूर्ण लोकक्षेत्र में है ॥ १५ ॥

प्रश्न- जबकि एक जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशी है तब वह लोकके असंख्यातवें भागमे कैसे रह सकता है ? समाधान--

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्याम् प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अर्थ-(प्रदीपवत्) दीपकके प्रकाशकी तरह (प्रदेशसंहार विसर्पाभ्यां) प्रदेशोके संकोच और विस्तारके द्वारा जीव लोकाकाशके असंख्यातवें आदि भागोमें रहता है अर्थात् जिस तरह एक बड़े मकानमें दीपकके रख देनेसे उसका प्रकाश समस्त मकानमे फैल जाता है और उसी दीपकको एक छोटेसे बर्तनके भीतर रख देनेसे उसका प्रकाश उसीमें संकुचित होकर रह जाता है, उसी तरह जीव भी जितना बड़ा या छोटा शरीर पाता है उसमें उतना ही विस्तृत या संकुचित होकर रह जाता है। परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवली समुद्धात[1] अवस्थामें सम्पूर्ण लोकाकाशमें व्याप्त हो जाता है और सिद्ध अवस्थामें अन्तिम शरीरसे कुछ कम रहता है ॥ १६ ॥

धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकार या लक्षण-

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरूपकारः ॥ १७ ॥

अर्थ-स्वयमेव गमन तथा स्थितिको प्राप्त हुए जीव और पुद्गलोंको गति तथा स्थितिमें सहायता देना क्रमसे धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकार है।

भावार्थ- जो जीव और पुद्गलोंको चलनेमें सहायक हो उसे धर्म द्रव्य तथा जो ठहरनेमें सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं ॥ १७ ॥

आकाशका उपकार या लक्षण-

आकाशस्यावगाहः ॥ १८ ॥

अर्थ- समस्त द्रव्योका अवकाश देना आकाशका उपकार है।

भावार्थ- जो सब द्रव्योंको ठहरनेके लिये स्थान देवे उसे आकाश कहते है ॥ १८ ॥

पुद्गल द्रव्यका उपकार-

शरीरवाङ्मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

अर्थ- औदारिक आदि शरीर, वचन मन तथा श्वासोच्छ्वास ये पुद्गलद्रव्यके उपकार हैं, अर्थात्त् शरीरदिकी रचना पुद्गलसे ही होती हैं ॥१९ ॥

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ॥ २० ॥

---

1. मूल शरीरको न छोड़कर आत्माके प्रदेशोंके बाहर निकलनेको समुद्धात कहते हैं। इसके सात भेद होते है। १. आहारक, २. वैक्रियिक, ३. तैजस, ४. कषाय, ५. वेदना, ६. मारणान्तिक और ७. केवलि लोक पूरण।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अर्थ- इन्द्रियजन्य सुख दुःख जीवन और मरण ये भी पुद्गल द्रव्यके उपकार हैं।

नोट १- इस सूत्रमें जो उपग्रह शब्दका ग्रहण किया है उससे सूचित होता है कि पुद्गल परस्परमें एक दूसरेका उपकार करते हैं जैसे- राख कांसेका, पानी लोहाका, साबुन कपड़ेका आदि।

नोट- यहां उपकार शब्दका अर्थ निमित्त मात्र ही समझना चाहिए। अन्यथा दुःख, मरण आदि उपकार नहीं कहलावेंगे ॥ २० ॥

जीवोंका उपकार-

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

अर्थ- जीवोंका परस्पर उपकार हैं अर्थात् जीव कारणवश एक दूसरेका उपकार करते है। जैसे-स्वामी सेवकका, सेवक स्वामीका, गुरु शिष्यका और शिष्य गुरुका ॥२१॥

कालका उपकार-

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वेच कालस्य ॥ २२ ॥

अर्थ- वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्यके उपकार है।

वर्तना- जो द्रव्योंको वरतावें उसे वर्तना कहते हैं।[2]

परिणाम- एक धर्मके त्याग रुप और दूसरे धर्मके ग्रहणरुप जो पर्याय है उसे परिणाम कहते है। जैसे जीवोंमें ज्ञानादि और पुद्गलोंमें वर्णादि।

क्रिया- हलन चलनरुप परिणतिको क्रिया कहते हैं।

---

2. यद्यपि सर्व द्रव्य अपने आप वर्तते है तथापि उसके वर्तनमें जो बाह्य सहकारी कारण हो उसे वर्तना कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परत्वापरत्व- छोटे बड़े व्यवहारको परत्वापरत्व कहते है। जैसे- २५ वर्षके मनुष्यको बड़ा और २० वर्षके मनुष्यको उसकी अपेक्षा छोटा कहते है।

ये सब कालद्रव्यकी सहायतासे होते हैं, इसलिये इन्हें देखकर अमूर्तिक निश्चय कालद्रव्यका अनुमान कर लेना चाहिए ॥ २२॥

पुद्गल द्रव्यका लक्षण-

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्गलाः ॥ २३ ॥

अर्थ- स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णनवाले पुद्गल होते हैं।

विशेष- ये चारों गुण हरएक पुद्गलमें एक साथ रहते हैं।

इनके उत्तर भेद इस प्रकार है-

स्पर्श के आठ भेद- १ कोमल, २ कठोर, ३ हलका, ४ भारी, ५ शीत, ६ उष्ण, ७ स्निग्ध और ८ रुक्ष।

रसके पांचभेद- १ खट्टा, २ मीठा, ३ कडूवा, ४ कषायला और ५ चरपरा।

गन्धके दो भेद- १ सुगन्ध, २ दुर्गन्ध।

वर्णके पांच भेद- काला, नीला, पीला, लाल और सफेद। ये बीस पुद्गलके गुण कहलाते हैं क्योंकि हमेशा उसीमें रहते हैं॥ २३॥

पुद्गलकी पर्याय-

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतम-श्छायातपोद्योतवन्तश्च ॥ २४॥

अर्थ- उक्त लक्षणवाले पुद्गल-शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता संस्थान (आकार), भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत सहित हैं। अर्थात् ये पुद्गल की पर्याय हैं ॥ २४॥

पुद्गलके भेद-

अणवः स्कन्धाश्च ॥ २५ ॥

अर्थ- पुद्गलद्रव्य के अणु और स्कन्ध इस प्रकार दो रुप हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणु- जिसका दूसरा विभाग न हो सके ऐसे पुद्गलको अणु कहते हैं।

स्कन्ध- दो तीन संख्यात असंख्यात तथा अनन्त परमाणुओंके पिण्डको स्कन्ध कहते हैं ॥ २५ ॥

स्कन्धोंकी उत्त्पतिका कारण-

भेदसंघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥ २६ ॥

अर्थ- पुद्गलद्रव्यके स्कन्ध, भेद-बिछुड़ने, संघात-मिलने और भेद संघात-दोनोंसे उत्पन्न होते हैं। जैसे १०० परमाणुवाला स्कन्ध है उसमेंसे १० परमाणु बिखर जानेसे ९० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें १० परमाणु मिल जानेसे ११० परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है और उसीमें एकसाथ दश परमाणुओंके बिछुड़ने और १५ परमाणुओंके मिल जानेसे १०५ परमाणुवाला स्कन्ध बन जाता है।

नोट- सूत्रमें द्विवचनके स्थानमें जो बहुवचन रुप प्रयोग किया उसीसे यह तीसरा अर्थ व्यक्त हुआ है॥ २६ ॥

अणुकी उत्पत्तिका कारण-

भेदादणुः ॥ २७ ॥

अर्थ- अणुकी उत्पत्ति भेदसे ही होती है॥ २७॥

चाक्षुष (देखनेयोग्य-स्थूल) स्कन्धकी उत्पत्ति-

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥ २८ ॥

अर्थ- (चाक्षुषः) चक्षुइन्द्रियसे देखने योग्य स्कन्ध (भेदसंघाताभ्याम्) भेद और संघात दोनोंसे ही उत्पन्न होते हैं। अकेले भेदसे उत्पन्न नहीं हो सकते॥ २८॥

द्रव्यका लक्षण-

सद्द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

अर्थ- द्रव्यका लक्षण सत् (अस्तित्व) है॥ २९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य विभाग

द्रव्य

जीव अजीव

मुक्त संसारी पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश काल

१ अणु २ स्कंध, लोक अलोक, निश्चय-व्यवहार

त्रस स्थावर

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति

सैनी असैनी

नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव

१ रत्नप्रभागत जलचर आर्य म्लेच्छ

२ शर्कराप्रभागत थलचर

३ वालुकाप्रभागत नभचर, ऋद्धिप्राप्त, अनृद्धिप्राप्त, क्षेत्रम्लेच्छ

कर्मम्लेच्छ

४ पंकप्रभागत

५ धूमप्रभागत १ बुद्धि १ क्षेत्रार्य

६ तमः प्रभागत २ विक्रिया २ जात्यार्य

७ महातमः प्रभागत ३ तप ३ कर्मार्य

४ बल ४ चरित्रार्य

५ औषधि ५ दर्शनार्य

६ रस

७ अक्षीण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्‌का लक्षण-

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

अर्थ- जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित हो वह सत् है।

उत्पाद- द्रव्यमें नवीन पर्यायकी उत्पत्तिको उत्पाद कहते हैं। जैसे मिट्टीको पिण्डपर्यायसे घटका।

व्यय- पूर्व पर्यायके विनाशको व्यय कहते हैं। जैसे घटपर्याय उत्पन्न होनेपर पिण्डपर्यायका।

ध्रौव्य- दोनों पर्यायोंमें मौजुद रहनेको ध्रौव्य कहते हैं। जैसे पिण्ड़ तथा घटपर्यायमें मिट्टीका॥ ३० ॥

नित्यका लक्षण-

तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥ ३१ ॥

अर्थ- जो द्रव्य तद्‌भावरूपसे अव्यय है वही नित्य है।

भावार्थ- प्रत्यभिज्ञानके हेतुको सद्‌भाव कहते हैं। जिस द्रव्य को पहले समयमें देखनेके बाद दूसरे आदि समयोंमें देखने पर 'यह वही है जिसे पहले देखा था' ऐसा जोड़रूप ज्ञान हो वह द्रव्य नित्य हैं। परंतु यह नित्यता पदार्थमें सामान्य स्वरूपकी अपेक्षा होती है, विशेष अर्थात् पर्यायकी अपेक्षा सभी द्रव्य अनित्य हैं। इसलिये संसारके सब पदार्थ नित्यानित्य रूप हैं ॥ ३१ ॥[1]

प्रश्न- एक ही द्रव्यमें नित्यता और अनित्यता ये दो विरूद्ध धर्म किस प्रकार रहते हैं ? समाधान-

अर्पितानर्पितसिद्धेः ॥ ३२ ॥

अर्थ- विवक्षित और अविवक्षितरूपसे एक ही द्रव्यमें नाना धर्म रहते हैं। वक्ता जिस धर्मको कहनेकी इच्छा करता है उसे अर्पित-विवक्षित कहते हैं। और वक्ता उस समय जिस धर्मको नहीं कहना चाहता है वह अनर्पित अविवक्षित है। जैसे वक्ता यदि द्रव्यार्थिक नयसे वस्तुका प्रतिपादन

1. "नित्यं तदेवेदमिति प्रतीतेर्न नित्यमन्यत्प्रतिपत्तिसिद्धेः।
न तद्विरुद्धं बहिरन्तरङ्गनिमित्तनैमित्तिकयोगतस्ते॥" समन्तभद्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करेगा तो नित्यता विवक्षित कहलावेगी और यदि पर्यायार्थिक नयसे प्रतिपादन करेगा तो अनित्यता विवक्षित होगी। जिस समय किसी पदार्थको द्रव्यकी अपेक्षा नित्य कहा जा रहा हैं उसी समय वह पदार्थ पर्यायकी अपेक्षा अनित्य भी है। पिता, पुत्र मामा, भानजा आदिकी तरह एक ही पदार्थमें अनेक धर्म रहने पर भी विरोध नहीं आता है[1] ॥ ३२ ॥

परमाणुओंके बन्ध होनेमें कारण

स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः ॥ ३३ ॥

अर्थ- चिकनाई और रूखापनके निमित्तसे दो तीन आदि परमाणुओंका बन्ध होता है।

बन्ध- अनेक पदार्थोंमें एकपनेका ज्ञान करानेवाले सम्बन्ध विशेषको बन्ध कहते हैं ॥ ३३ ॥

न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ- जघन्य गुण सहित परमाणुओंका बन्ध नहीं होता।

गुण- स्निग्धता और रूक्षताके अविभागी प्रतिच्छेदों (जिसका टुकड़ा न हो सके ऐसे अंशों) का गुण कहते हैं।

जघन्य गुणसहित परमाणु- जिस परमाणुमें स्निग्धता और रूक्षताका एक अविभागी अंश हो उसे जघन्य गुणसहित परमाणु कहते हैं॥ ३४॥

गुणसाम्ये सदृशानाम् ॥ ३५ ॥

अर्थ- गुणोंकी समानता होनेपर समान जातिवाले परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता। जैसे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुका दूसरे दो गुणवाले स्निग्ध परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता।

---

1. जैनागममें यह 'सूत्र स्याद्वाद सिद्धान्त' का मूलभूत है। पाठक दही मथनेवाली गोपी आदिका उदाहरण देकर विद्यार्थियोंकी विविक्षा, अविविक्षा, गौणता, मुख्यता आदिका स्वरूप समझनेका प्रयत्न करें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट- सूत्रमें ''सदृशानाम्'' इस पदके ग्रहणसे प्रकट होता है कि गुणोंकी विषमतामें समान जातिवाले अथवा भिन्न जातिवाले पुद्गलोंका बन्ध हो जाता है ॥ ३५ ॥

बन्ध किनका होता है-

द्व्याधिकादिगुणानां तु ॥ ३६ ॥

अर्थ- किन्तु दो अधिक गुणवालोंके साथ ही बन्ध होता है। अर्थात् बन्ध तभी होगा जब एक परमाणुसे दूसरे परमाणुमें दो अधिक गुण होवें। जैसे दो गुणवाले परमाणुका चार गुणवाले परमाणुके साथ बन्ध होगा इससे अधिक व कम गुणवालेके साथ नहीं होगा। यह बन्ध स्निग्ध स्निग्धका, रूक्ष रूक्षका और स्निग्ध रूक्षका भी होता है ॥ ३६ ॥

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥ ३७ ॥

अर्थ- (च) और (बन्धे) बन्धरूप अवस्थामें (अधिकौ) अधिक गुणवाले परमाणुओंको अपने रूप (पारिणामिकौ) परिणमानेवाले होते हैं। जैसे गीला गुड़ अपने साथ बन्धको प्राप्त हुए रजको गुड़रूप परिणमा लेता हैं ॥ ३७ ॥

द्रव्यका लक्षण-

गुणपर्ययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

अर्थ- जिसमें गुण और पर्याय पाई जावे उसे द्रव्य कहते हैं।

गुण- द्रव्यकी अनेक पर्याय पलटते रहनेपर भी जो द्रव्यसे कभी पृथक् न हो, निरन्तर द्रव्यके साथ रहे उसे गुण कहते हैं।[2] जैसे जीवके ज्ञान आदि, पुद्गलके रूप रसादि।

---

2. यह द्रव्यका लक्षण पूर्वलक्षणसे भिन्न नहीं है। सिर्फ शब्दभेद है अर्थभेद नहीं। क्योंकि पर्यायसे उत्पाद और व्ययकी तथा गुणसे ध्रौव्य अर्थकी प्रतीति हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्याय- क्रमसे होनेवाली वस्तुकी विशेषताको पर्याय कहते है जैसे जीवकी नर नारकादि ॥ ३८ ॥

काल भी द्रव्य है-

कालश्च[3] ॥ ३९ ॥

अर्थ- काल भी द्रव्य है, क्योंकि यह भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य तथा गुण पर्यायोंसे सहित है।

नोट- यह काल द्रव्य रत्नोंकी राशिकी तरह एक दूसरेसे पृथक् रहते हुए लोकाकाशके समस्त प्रदेशोंपर स्थित है। यह एकप्रदेशी और अमूर्तिक है॥ ३९ ॥

कालद्रव्यकी विशेषता-

सोऽनन्तसमयः ॥ ४० ॥

अर्थ- वह काल द्रव्य अनन्त समयवाला है। यद्यपि वर्तमान काल एक समयमात्र ही है तथापि भूत भविष्यत्‌की अपेक्षा अनन्त समयवाला है।

समय- कालद्रव्यके सबसे छोटे हिस्सेको समय कहते हैं। मंदगतिसे चलनेवाला पुद्गल परमाणु आकाशके एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशपर जितने कालमें पहुँचता है उतना काल एक समय है। इन समयोंके समूहसे ही आवली, घण्टा आदि व्यवहारकाल होता है। व्यवहारकाल निश्चय कालद्रव्यकी पर्याय है।

निश्चय कालद्रव्य- लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेश पर रत्नोंकी राशिकी तरह जो स्थित है उसे निश्चय कालद्रव्य कहते हैं। बर्तना उसका कार्य है ॥ ४० ॥

गुणका लक्षण-

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥ ४१ ॥

3. 'च' का अन्वय 'द्रव्याणि' सूत्रके साथ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- जो द्रव्यके आश्रय हों और स्वयं दूसरे गुणोंसे रहित हों वे गुण कहलाते हैं, जैसे-जीवके ज्ञान आदि। ये जीव द्रव्यके आश्रय रहते हैं तथा इनमें कोई दूसरा गुण नहीं रहता ॥ ४१ ॥

पर्यायका लक्षण-

तद्भावः परिणामः ॥ ४२ ॥

अर्थ- जीवादि द्रव्य जिस रूप हैं उनके उसीरूप रहनेको परिणाम या पर्याय कहते हैं। जैसे जीवकी नर-नारकादि पर्याय ॥ ४२ ॥

विशेष- पर्यायके दो भेद हैं-१ व्यञ्जन पर्याय और २ अर्थ पर्याय। प्रदेशतत्व गुणके विकारको व्यञ्जन पर्याय कहते हैं और अन्य गुणोंके अविभागी प्रतिच्छेदोंके परिणमनको अर्थ पर्याय कहते हैं।

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥

प्रश्नावली

(१) अस्तिकाय किसे कहते हैं व कितने हैं ?
(२) जीव असंख्यात-प्रदेशी होनेपर भी अल्प शरीरमें किस प्रकार रहता है ?
(३) कालद्रव्यके क्या उपकार हैं ?
(४) अलोकाकाशके आकाशमें कालद्रव्यके बिना उत्पाद आदि किस तरह होते हैं ?
(५) पुद्गल द्रव्यके कितने प्रदेश हैं ?
(६) "अर्पितानर्पितसिद्धेः" इस सूत्रका क्या आशय है ?
(७) 'जघन्य गुण' शब्दका क्या अर्थ है ?
(८) बन्ध किन-किनका होता है ?
(९) यदि कर्म द्रव्य न मानकर उसका कार्य आकाश द्रव्यसे लिया जावे तो क्या हानि होगी ?
(१०) काल द्रव्य अजीव क्यों है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ अध्याय

आस्रव तत्वका वर्णन

योगके भेद व स्वरूप-

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥ १ ॥

अर्थ- काय, वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं। अर्थात् काय, वचन और मनके द्वारा आत्माके प्रदेशोंमें जो परि(हलन चलन) होता है उसे योग कहते हैं। योगके तीन भेद हैं-

काययोग- कायके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे काययोग कहते हैं।

वचनयोग- वचनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे वचनयोग कहते हैं।

मनोयोग- मनके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंमें जो हलन-चलन होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

इन तीनों योगोंकी उत्पत्तिमें वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम कारण है ॥ १ ॥

आस्रवका स्वरूप-

स आस्रवः ॥ २ ॥

अर्थ- वह तीन प्रकारका योग ही आस्रव है। जिस प्रकार कुएके भीतर पानी आनेमें झिरें कारण होती हैं उसी प्रकार आत्मामें कर्म आनेमें योग कारण हैं। कर्मोंके आनेके द्वारको आस्रव कहते हैं।

नोट- यद्यपि योग आस्रवके होनेमें कारण है तथापि सूत्रमें कारणमें कार्यका उपचार कर उसे आस्रव रुप कह दिया है। जैसे-प्राणोंकी स्थितिमें कारण होनेसे अन्न ही को प्राण कह देते हैं ॥ २ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगके निमित्तसे आस्रवका भेद-

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

अर्थ- शुभ योग पुण्यकर्मके आस्रवमें और अशुभ योग पापकर्मके आस्रवमें कारण है।

शुभयोग- शुभ परिणामोंसे रचे हुए योगको शुभयोग कहते हैं। जैसे-अरहन्त भक्ति करना, जीवोंकी रक्षा करना आदि।

अशुभ योग- अशुभ परिणामोसे रचे हुए योगको अशुभ योग कहते हैं। जैसे-जीवोंकी हिंसा करना, झूठ बोलना आदि।

पुण्य- जो आत्माको पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं।

पाप- जो आत्माको अच्छे कार्योंसे बचावे-दूर करे उसे पाप कहते हैं ॥३ ॥

स्वामीकी अपेक्षा आस्रवके भेद-

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ॥ ४ ॥

अर्थ- वह योग कषाय सहित जीवोंके साम्परायिक आस्रव और कषाय रहित जीवोंके ईर्यापथ आस्रवका कारण है।

कषाय- जो आत्माको कषै अर्थात् चारों गतियोंमें भटकाकर दुःख देवे उसे कषाय कहते हैं। जैसे-क्रोध, मान, माया, लोभ।

साम्परायिक आस्रव- जिस आस्रवका संसार ही प्रयोजन है उसे साम्परायिक आस्रव कहते हैं।

ईर्यापथ- स्थिति और अनुभाग रहित कर्मोंके आस्रवको ईर्यापथ आस्रव कहते हैं।

नोट- ईर्यापथ आस्रव ११ वें से १३ वें गुणस्थान तकके जीवोंके होता है, और उसके पहले गुणस्थानोंमें साम्परायिक आस्रव होता है। १४ वें गुणस्थानमें आस्रवका सर्वथा अभाव हो जाता है ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्परायिक आश्रवके भेद-

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥ ५ ॥

अर्थ- स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियां, क्रोधादि चार कषाय, हिंसादि पांच अव्रत और सम्यक्त्व आदि पच्चीस क्रियाएं, इस तरह साम्परायिक आस्त्रवके ३९ भेद हैं अर्थात् इन सब ३९ भेदोंके द्वारा साम्परायिक कर्मका आस्त्रव होता है।

पच्चीस क्रियाएं-

(१) सम्यक्त्वको बढ़ाने वाली क्रियाको सम्यक्त्व क्रिया कहते हैं जैसे देव पूजन आदि।

(२) मिथ्यात्वको बढ़ानेवाली क्रियाको मिथ्यात्व क्रिया कहते हैं, जैसे कुदेवपूजन आदि।

(३) शरीरादिसे गमनागमन रुप प्रवृति करना सो प्रयोग क्रिया है।

(४) संयमीका असंयमके सन्मुख होना सो समादान क्रिया है।

(५) गमनके लिए जो क्रिया होती है उसे ईर्यापथ क्रिया कहते हैं।

(६) क्रोधके वशसे जो क्रिया हो वह प्रादोषिकी क्रिया है।

(७) दुष्टतापूर्वक उद्यम करना सो कायकी क्रिया है।

(८) हिंसाके उपकरण तलवार आदिका ग्रहण करना सो अधिकरण क्रिया है।

(९) जीवोंको दुःख उत्पन्न करनेवाली क्रियाको पारितापिकी क्रिया कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१०) आयु, इन्द्रिय आदि प्राणोंका वियोग करना सो प्राणातिपातिनी क्रिया है।

(११) रागके वशीभूत होकर मनोहर रुप देखना सो दर्शन क्रिया है।

(१२) रागके वशीभूत होकर वस्तुका स्पर्श करना स्पर्शन क्रिया है।

(१३) विषयोंके नये २ कारण मिलना प्रात्ययिकी क्रिया हैं।

(१४) स्त्री पुरुष अथवा पशुओंके बैठने तथा सोने आदिके स्थानमें मलमुत्रादि क्षेपण करना समन्तनुपात क्रिया है।

(१५) बिना देखी बिना शोधी हुइ भूमिपर उठना बैठना अनाभोग क्रिया है।

(१६) लोभसे वशीभूत हो दूसरेके द्वारा करने योग्य क्रियाको स्वयं करना स्वहस्त क्रिया है।

(१७) पापकी उत्पन्न करनेवाली प्रवृतिको भला समझना निसर्ग क्रिया है।

(१८) परके किये हुये पापोंको प्रकाशित करना विदारण क्रिया है।

(१९) चारित्रमोहनीय कर्मके उदयसे शास्त्रोक्त आवश्यकादि क्रियाओके करनेमें असमर्थ होकर उनका अन्यथा निरुपण करना सो आज्ञाब्यापादिकी क्रिया है।

(२०) प्रमाद अथवा अज्ञानके वशीभूत होकर आगमोक्त क्रियाओंमें अनादर करना अनाकाक्षा क्रिया है।

(२१) छेदन भेदन आदि क्रियाओंमें स्वयं प्रवृत होना तथा अन्यको प्रवृत देखकर हर्षित होना प्रारम्भ क्रिया है।

(२२) परिग्रहकी रक्षामें प्रवृत होना पारिग्रहिकी क्रिया है।

(२३) ज्ञान दर्शन आदिमें कपटरुप प्रवृति करना माया क्रिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(२४) प्रशंसा आदिसे किसीको मिथ्यात्व रूप परिणतिमें दृढ़ करना मिथ्यादर्शन क्रिया है।

(२५) चारित्र मोहनीयके उदयसे त्यागरूप प्रवृत्ति नहीं होना अप्रत्याख्यान क्रिया है।

आस्रवकी विशेषतामें कारण-

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञात भावाधिकरणवीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

अर्थ- तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरणविशेष और वीर्यविशेषसे आस्रवमें विशेषता-हीनाधिकता होती है।

तीव्रभान- अत्यन्त बढ़े हुए, क्रोधादिके द्वारा जो तीव्ररूप भाव होते हैं उनको तीव्रभाव कहते हैं।

मन्दभाव- कषायोंको मन्दतासे जो भाव होते हैं उन्हें मन्दभाव कहते हैं।

ज्ञातभाव- यह प्राणी मारनेके योग्य है इस तरह जानकर प्रवृत्त होनेको ज्ञातभाव कहते हैं।

अज्ञातभाव- प्रमाद अथवा अज्ञानसे प्रवृत्ति करनेको अज्ञातभाव कहते हैं।

अधिकरण- जिसके आश्रय अर्थ रहे उसे अधिकरण कहते हैं।

वीर्य- द्रव्यकी स्वशक्तिविशेषको वीर्य कहते हैं।

अधिकरणके भेद-

अधिकरणं जीवाऽजीवाः ॥ ७ ॥

अर्थ- अधिकरणके दो भेद हैं १ जीव और २-अजीव। अर्थात् आस्रव, जीव और अजीव दोनोंके आश्रय है॥ ७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्परायिक आस्रवके ३९ भेद

आस्रव

ईर्यापथ — साम्परायिक

इन्द्रिय	कषाय	अव्रत	क्रिया
स्पर्शन	क्रोध	हिंसा	सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, प्रयोग, समादान, ईर्यापथ, प्रादोषिकी,
रसना	मान	असत्य	कायिकी, अधिकरण, पारितापिकी, प्राणातिपातिनी, दर्शन,
घ्राण	माया	चौर्य	स्पर्शन, प्रात्ययिकी, समन्तानुपात, अनाभोग, स्वहस्त,
चक्षु	लोभ	कुशील	निसर्ग, विदारण, आज्ञाव्यापादिकी, अनाकांक्षा, प्रारम्भ,
कर्म		परिग्रह	पारिग्रहिकी, माया, मिथ्यादर्शन, अप्रत्याख्यान।
५	४	५	२५

जीवाधिकरणके भेद-

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥

अर्थ- आदिका जीवाधिकरण आस्रव-संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ, मन वचन कायरूप तीन योग कृत कारित अनुमोदना तथा क्रोधादि चार कषायोंकी विशेषतासे १०८ भेदरूप हैं।

भावार्थ- संरम्भादि तीनोमें तीन योगोंका गुणा करनेसे ९ भेद हुए। इन ९ भेदोंमें कृत आदि तीनका गुणा करने पर २७ भेद हुए। और इन २७ भेदोंमें ४ कषायका गुणा करनेसे कुल १०८ भेद हुए।

संरम्भ- हिंसादि पापोंके करनेका मनमें निचार करना संरम्भ है।

समारम्भ- हिंसादि पापोंके कारणोंका अभ्यास करना समारम्भ है।

आरम्भ- हिंसादि पापोंके करनेका प्रारम्भ कर देना आरम्भ है।

कृत- स्वयं करना कृत है।

कारित- दूसरेसे कराना कारित है।

अनुमत- दूसरेके द्वारा किये हुए कार्यको भला समझना अनुमत है॥ ८॥

अजीवाधिकरणके भेद-

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतर्द्वित्रिभेदाः परम् ॥ ९ ॥

अर्थ- पर अर्थात् अजीवाधिकरण आस्रव-दो प्रकारकी निवर्तना, चार प्रकारका निक्षेप, दो प्रकारका संयोग और तीन प्रकारका निसर्ग, इस तरह ११ भेदवाला है।

निर्वर्तना- रचना करनेको निर्वर्तना कहते हैं। इसके दो भेद हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१-मूलगुण निर्वर्तना और २-उत्तरगुण निर्वर्तना। शरीर, मन तथा श्वासोच्छ्वासकी रचना करना मूलगुण निर्वर्तना है। और काष्ठ, मिट्टी आदिसे चित्र वगैरहकी रचना उत्तर गुण निर्वर्तना है।

निक्षेप- वस्तुके रखनेको निक्षेप कहते हैं-इसके चार भेद हैं-१-अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण, २-दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण, ३-सहसानिक्षेपाधिकरण और ४-अनाभोगनिक्षेपाधिकरण हैं। बिना देखे किस वस्तुको रखना अप्रत्यवेक्षित निक्षेपाधिकरण हैं। यत्नाचार रहित होकर रखनेको दुःप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण कहते हैं। शीघ्रतासे रखना सहसा निक्षेपाधिकरण है। और किसी वस्तुको योग्य स्थानमें न रखकर बिना देखे ही यहां वहां रख देना अनाभोग निक्षेपाधिकरण है।

संयोग- मिला देनेका नाम संयोग है। इसके दो भेद हैं-१-भक्तपान संयोग, २-उपकरण संयोग। आहार पानीको दूसरे आहार पानीमें मिलाना भक्तपान संयोग है। और कमण्डल आदि उपकरणोंको दूसरेकी पीछी आदिसे पोंछना उपकरण संयोग है।

निसर्ग- प्रवर्तनको निसर्ग कहते हैं। इसके ३ भेद हैं। १-कायनिसर्ग अर्थात् कायको प्रवर्ताना, २-वाङ्गनिसर्ग अर्थात् वचनोंको प्रवर्ताना और मनोनिसर्ग अर्थात् मनको प्रवर्तानः ॥ ९ ॥

ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आस्त्रव-

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥ १० ॥

अर्थ- ज्ञान और दर्शनके विषयमें किये गये प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादना और उपघात ये ज्ञानावरण तथा दर्शनावरण कर्मके आस्त्रव है।

प्रदोष- किसी धर्मात्माके द्वारा की गई तत्वज्ञानकी प्रशंसाका नहीं सुहाना प्रदोष है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निह्नव- किसी कारणसे ज्ञानको छुपाना निह्नव है।

मात्सर्य- वस्तु स्वरूपको जानकर यह भी पण्डित हो जावेगा ऐसा विचार कर किसीको नहीं पढ़ाना मात्सर्य है।

अन्तराय- किसीके ज्ञानाभ्यासमें विघ्न डालना अन्तराय है।

आसादन- दूसरेके द्वारा प्रकाशित होने योग्य ज्ञानको रोक देना आसादन है।

उपघात- सच्चे ज्ञानको दोष लगाना उपघात हैं [1] ॥ १० ॥

असातावेदनीयके आस्रव-

दु:खशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

अर्थ- (आत्मपरोभयस्थानि) निज तथा पर दोनोंके विषयमें स्थित (दु:खशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनानि) दु:ख शोक ताप आक्रन्दन वध और परिदेवन ये (असद्वेद्यस्य) असातावेदनीयके आस्रव हैं।

दु:ख- पीड़ारूप परिणामविशेषको दु:ख कहते हैं।

शोक- अपना उपकार करनेवाला पदार्थका वियोग होने पर विकलता होना शोक है।

ताप- संसारमें अपनी निन्दा आदिके हो जानेसे पश्चात्ताप करना ताप है।

आक्रन्दन- पश्चात्तापसे अश्रुपात करते हुए रोना आक्रन्दन हैं।

---

1. यद्यपि प्रतिसमय आयु-कर्मको छोड़कर शेष सात कर्मोका बन्ध हुआ करता है। तथापि प्रदोषादि भावोंके द्वारा जो ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोका बन्ध होना बताया है, वह स्थितिबन्ध और अनुभाग-बन्धकी अपेक्षा समझना चाहिये। अर्थात् उस समय प्रकृति और प्रदेशबन्ध तो सब कर्मोका हुआ करता है, किन्तु स्थिति और अनुभागबन्ध ज्ञानावरणादि विशेष २ कर्मोका अधिक होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वध- आयु आदि प्राणोंका वियोग करना वध है।

परिदेवन- संक्लेश परिणामोंका अवलम्बन कर इस तरह रोना कि सुननेवालेके हृदयमें दया उत्पन्न हो जावे सो परिदेवन है।

नोट- यद्यपि शोक आदि दुःखके ही भेद हैं तथापि दुःखकी जातियाँ बतलानेके लिये सबका ग्रहण किया है ॥ ११ ॥

सात वेदनीयका आस्रव-

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमितिसद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥

अर्थ- भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग, क्षांति और शौच तथा अर्हद् भक्ति आदि ये सातावेदनीयके आस्रव हैं। भूतव्रत्यनुकम्पा- भूत=संसारके समस्त प्राणी और व्रती=अणु व्रत या महाव्रतधारी जीवोंपर दया करना सो भूतव्रत्यनुकम्पा है।

दान- निज और परके उपकार योग्य वस्तुके देनेको दान कहते हैं।

सरागसंयमादि योग- पांच इन्द्रिय और मनके विषयोंसे विरक्त होने तथा छह कायके जीवोंकी हिंसा न करनेको संयम कहते है, और राग सहित संयमको सरागसंयम कहते हैं।

नोट- यहाँ आदि शब्दसे संयमासंयम-(श्रावकके व्रत) अकाम निर्जरा-(बन्दीखाने आदिमें संक्लेशतारहित भोगोपभोगक त्याग करना)- और बाल तप (मिथ्या दर्शनसहित तरस्या करना)-का भी ग्रहण होता है।

इन सबको अच्छी तरह धारण करना सरागसंयमादि योग कहलाता है।

क्षांति- क्रोधादि कषायके अभावको क्षांति कहते हैं।

शौच- लोभका त्याग करना शौच है।

नोट- इति शब्दसे अर्हद्भक्ति, मुनियोंकी वैयावृत्ति आदिका ग्रहण करना चाहिये ॥ १२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शनमोहनीयका आस्त्रव-

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवा-
दोदर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥

अर्थ- केवली, श्रुत-(शास्त्र), संघ (मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका) धर्म और देव इनका अवर्णवाद करना दर्शनमोहनीय कर्मका आस्त्रव है।

अवर्णवाद- गुणवानोंको झूठे दोष लगाना सो अवर्णवाद है।

केवलीका अवर्णवाद- केवली ग्रासाहार करके जीवित रहते है, इत्यादि कहना सो केवलीका अवर्णवाद है।

श्रुतका अवर्णवाद- शास्त्रमें मांस भक्षण करना आदि लिखा है, ऐसा कहना सो श्रुतका अवर्णवाद है।

संघका अवर्णवाद- ये शुद्र है, मलिन हैं, नग्न हैं इत्यादि कहना सो संघका अवर्णवाद है।

धर्मका अवर्णवाद- जिनेन्द्रभगवानके द्वारा कहे हुए धर्ममें कुछ भी गुण नहीं है-उसके सेवन करनेवाले असुर होवेंगे इत्यादि कहना धर्मका अवर्णवाद है।

देवका अवर्णवाद- देव मदिरा पीते हैं, मांस खाते हैं, जीवोंकी बलीसे प्रसन्न होते हैं, आदि कहना देवका अवर्णवाद हैं॥ १३॥

चारित्र मोहनीयका आस्त्रव-

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

अर्थ- कषायके उदयसे होनेवाले तीव्र परिणाम चारित्रमोहनीयके आस्त्रव हैं॥ १४॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नरक आयुका आस्रव-

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥

अर्थ- बहुत आरंभ और परिग्रहका होना नरक आयुका आस्रव हैं ॥१५ ॥

तिर्यंच आयुका आस्रव-

माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥

अर्थ- माया (छलकपट) तिर्यंच आयुका आस्रव है ॥ १६ ॥

मनुष्य आयुका आस्रव-

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥

अर्थ- थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रहका होना मनुष्य आयुका आस्रव है ॥ १७ ॥

स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥

अर्थ- स्वभावसे ही सरल परिणामी होना भी मनुष्य आयुका आस्रव है।

नोट- इस सूत्रको पृथक लिखनेका आशय यह है कि इस सूत्रमें बताई हुई बातें देवायुके आस्रवमें भी कारण है ॥ १८ ॥

सब आयुओंका आस्रव-

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

अर्थ- दिग्व्रतादि ७ शील और अहिंसादि पाँच व्रतोंका अभाव भी समस्त आयुओंका आस्रव है।

नोट- शील और व्रतका अभाव कहते हुए जब कषायोंमें अत्यन्त तीव्रता और अत्यन्त मन्दता होती है तभी वे क्रमसे चारों आयुओंके आस्रवके कारण होते है ॥ १९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव आयुका आस्रव-

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥

अर्थ- सरागसंयम, संयमासंयम, अकाम निर्जरा और बाल तप ये देव आयुके आस्रव हैं[1] ॥ २० ॥

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

अर्थ- सम्यग्दर्शन भी देव आयु कर्मका आस्रव है।

नोट- १-इस सूत्रको पृथक् लिखनेका प्रयोजन यह है कि सम्यक्त्व अवस्थामें वैमानिक देवोंकी ही आयुका आस्रव होता है।

नोट- २-यद्यपि सम्यग्दर्शन किसी भी कर्मके बन्धमें कारण नहीं है तथापि सम्यग्दर्शनकी अवस्थामें जो रागांश पाया जाता है उसीसे बन्ध होता है। इसी तरह सरागसंयम, संयमासंयम आदिके विषयमें भी जानना चाहिये[2] ॥२१ ॥[3]

अशुभ नामकर्मका आस्रव-

योगवक्रता विसम्वादनं चाशुभस्यनाम्नः ॥२२ ॥

अर्थ- योगोंकी कुटिलता और विसम्वादन-अन्यथा प्रवृति करना अशुभ नामकर्मका आस्रव है ॥ २२ ॥

शुभ नामकर्मका आस्रव-

तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥

1. इन सबका शब्दार्थ पीछे १२वें सूत्रके नोटमें लिखा जा चुका है।
2. येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति।
   येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥ - अमृतचन्द्रसूरि
3. आयु कर्मका आस्रव सामान्यरूपसे जीवनके त्रिभागमें होता है। अर्थात् आयुके दो भाग निकल जाने पर तृतीय भागके प्रारंभमें होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- योग वक्रता और विसंवादनसे विपरीत अर्थात् योगोंकी सरलता और अन्यथा प्रवृतिका अभाव ये शुभ नामकर्मके आस्त्रव हैं ॥२३॥

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नताशीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौशक्तितस्त्यागतपसी-साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना-प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ॥ २४॥

अर्थ- १-दर्शनविशुद्धि-पच्चीस दोषरहित निर्मल[1]-सम्यग्दर्शन, २-विनयसम्पन्नता-रत्नत्रय तथा उनके धारकोंकी विनय करना, ३-शीलव्रतेष्वनतिचार-अहिंसादि व्रत और उनके रक्षक क्रोधत्याग आदि शीलोंमें विशेष प्रवृत्ति, ४-५ अभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ-निरन्तर ज्ञानमय उपयोग रखना और संसारसे भयभीत होना, ६-७-शक्तितस्त्याग तपसी-यथाशक्ति दान देना और उपवासादि तप करना, ८-साधुसमाधि-साधुओंके विघ्न आदिको दूर करना, ९-वैयावृतकरणम्-रोगी तथा बालवृद्ध मुनियोंकी सेवा करना, १०-११-१२-१३-अर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्ति अरहन्त भगवानकी भक्ति करना, दीक्षा देने वाले आचार्योंकी भक्ति करना, उपाध्यायोंकी भक्ति करना, शास्त्रोंकी भक्ति करना, १४-आवश्यकापरिहाणि-सामायिक आदि छह आवश्यक क्रियाओंमें हानि नहीं करना, १५-मार्गप्रभावना-जैनधर्मकी प्रभावना

---

1. यहाँ दर्शनविशुद्धिसे तात्पर्य अपाय विचय धर्मध्यानके मध्यस्थित मनुष्यके जो लोककल्याणकी सातिशय भावना होती है उससे है। मनुष्य शुभ राग ही तीर्थंकर प्रकृतिका आस्त्रव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना और १६-प्रवचनवत्सलत्वम् गोवत्सकी तरह धर्मात्मा जीवोंसे स्नेह रखना। ये सोलह भावनायें तीर्थंकर प्रवृति नामक नामकर्मके आस्त्रव हैं [1] ॥ २४॥

नोट- इन भावनाओंमें दर्शनविशुद्धि मुख्य भावना हैं। उसके अभावमें सबके अथवा यथासम्भव हीनाधिक होनेपर भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्त्रव नहीं होता और उसके रहते हुए अन्य भावनाओंके अभावमें भी तीर्थंकर प्रकृतिका आस्त्रव होता है [1] ॥ २४॥

नीच गोत्रकर्मका आस्त्रव

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५॥

अर्थ- (परात्मनिन्दाप्रशंसे) दूसरे की निन्दा और अपनी प्रशंसा करना, (च) तथा (सदसद्गुणोद्भवने) दूसरेके मौजूद गुणोंको ढांकना और अपने झूठे गुणोंको प्रकट करना, व नीच गोत्रकर्मके आस्त्रव हैं ॥२५॥

उच्च गोत्रकर्मका आस्त्रव-

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥२६॥

अर्थ- (तद्विपर्ययः) नीच गोत्रके आस्त्रवोंसे विपरीत अर्थात् परप्रशंसा तथा आत्मनिन्दा (च) और (नीतर्वृत्त्यनुत्सेकौ) नम्र वृत्ति तथा मदका अभाव ये (उत्तरस्य) उच्च गोत्रकर्मके आस्त्रव हैं ॥ २६॥

अन्तराय कर्मका आस्त्रव-

विघ्नकरणमऽन्तरायस्य ॥ २७॥

अर्थ- परके दान, लाभ, भोग, उपभोग तथा वीर्य में विघ्न करना, अन्तरायकर्म का आस्त्रव हैं ॥ २७॥

1. इस प्रकृतिके उदयसे समवसरणमें अष्ट प्रातिहार्य रूप विभूति प्राप्त होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे षष्ठेऽध्यायः ॥

प्रश्नावली

[१] योग किसे कहते हैं ? और उसके कितने भेद हैं ?

[२] अजीवाधिकरण आस्रवके भेद बताओ ।

[३] जबकि आयु को छोड़कर शेष सात कर्मो का बन्ध प्रति समय होता रहता है तब प्रदोषादि विशेष २ कर्मो के आस्रव किस प्रकार हो सकेंगे ?

[४] साम्परायिक और ईर्यापथ आस्रवमें उदाहरण देकर भेद समझाओ ।

[५] जबकि सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग है तब उसे देव आयुका कारण क्यों लिखा ।

[६] एक मिथ्याद्रष्टि जीव विनयसम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओं का पालन कर तीर्थंकर प्रकृतिका आस्रव कर सकता है या नहीं ? यदि नहीं तो क्यों ?

[७] इस संसार में क्या कोई ऐसे भी जीव हैं जिनके किसी भी कर्म का आस्रव नहीं होता हो ?

[८] नीचे लिखे हुए शब्दों के लक्षण बताओ–
निह्नव, सरागसंयम, बाल तप, योगवक्रता, अनुत्सेक, साधुसमाधि, अवर्णवाद, समारम्भ और ईर्यापथ आस्रव ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम अध्याय

शुभास्त्रवका वर्णन-

व्रतका लक्षण-

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।१ ।

अर्थ- हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पांच पापोंसे भावपूर्वक विरक्त होना व्रत कहलाता है ॥ १ ॥

व्रतके भेद-

देशसर्वतोऽगुणमहती ॥ २ ॥

अर्थ- व्रतके दो भेद हैं- १ अणुव्रत और २ महाव्रत । हिंसादि पापों का एकदेश त्याग करनेसे अणुव्रत और सर्वदेश त्याग करनेसे महाव्रत हैं ॥ २ ॥

व्रतोंकी स्थिरताके कारण-

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

अर्थ- उन व्रतों की स्थिरताके लिए प्रत्येक व्रतकी पांच पांच भावनायें हैं।

भावना - किसी वस्तु का बार-बार चिन्तवन करना सो भावना है ॥ ३ ॥

अहिंसा व्रतकी पांच भावनाएँ-

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- वाग्गुप्ति-वचनको रोकना, मनोगुप्ति-मन की प्रवृत्तिको रोकना, ईर्यामिति-चार हाथ जमीन देखकर चलना, आदाननिक्षेपण समिति-भूमिको जीवरहित देखकर सावधानीसे किसी वस्तुको उठाना, रखना और आलोकितपान भोजन-देख शोधकर भोजनपान ग्रहण करना ये पांच अहिंसा व्रतकी भावनायें हैं ॥ ४॥

सत्यव्रतकी भावनाएँ-

क्रोधलोभभीरूत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ॥५॥

अर्थ- क्रोधप्रत्याख्यान-क्रोधका त्याग करना, लोभ प्रत्याख्यान-लोभ का त्याग करना, भीरूत्वप्रत्याख्यान-भयका त्याग करना, हास्यप्रत्याख्यान-हास्यका त्याग करना और अनुवीचि भाषण-शास्त्रकी आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना, ये पांच सत्य व्रत की भावनायें है ॥५॥

अचौर्य व्रतकी भावनाएँ-

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्य-शुद्धिसधर्माऽविसंवादाः पञ्च ॥६॥

अर्थ- शून्यागारावास-पर्वतोंकी गुफा, वृक्षकी कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना, विमोचितावास-राजा वगैरहके द्वारा छुड़वाये हुए स्वामित्वहीन स्थानमें निवास करना, परोपरोधाकरण-अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरों को नहीं रोकना, भैक्ष्यशुद्धि-चरणानुयोग शास्त्रके अनुसार भिक्षाकी शुद्धि रखना और सधर्माविसंवाद-सहधर्मी भाइयोंसे यह हमारा है, वह आपका है इत्यादि कलह नहीं करना, ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनायें हैं ॥ ६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनाएँ-

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानु-स्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ।७।

अर्थ- स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग-स्त्रियोंमें राग बढ़ानेवाली कथाओं के सुननेका त्याग करना, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षणत्याग-स्त्रियों के मनोहर अङ्गोंके देखनेका त्याग करना, पूर्वरतानुस्मरणत्याग-अव्रत अवस्थामें भोगे हुए विषयोंके स्मरणका त्याग करना वृष्येष्टरस त्याग-कामवर्धक गरिष्ठ रसोंका त्याग करना और स्वशरीरसंस्कारत्याग-अपने शरीरके संस्कारोंका त्याग करना, ये पांच ब्रह्मचर्य व्रतकी भावनायें हैं ॥ ७ ॥

परिग्रहत्याग व्रतकी भावनाएँ-

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानिपञ्च ।८।

अर्थ- स्पर्श आदि पांचों इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट आदि विषयोंमें क्रमसे रागद्वेषका त्याग करना, ये पांच परिग्रह त्याग व्रतकी भावनायें हैं ॥८॥

हिंसादि पांच पापोंके विषयमें करनेयोग्य विचार-

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥९॥

अर्थ-(हिंसादिषु) हिंसादि पांच पापों के होने पर (इह) इस लोक में तथा (अमुत्र) परलोकमें (अपायावद्यदर्शनम्) सांसारिक और पारमार्थिक प्रयोजनोंका नाश तथा निन्दाको देखना पड़ता है ऐसा विचार करे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ- हिंसादि पाप करनेसे इसलोक तथा परलोकमें अनेक आपत्तियां प्राप्त होती हैं और निंदा भी होती है, इसलिये इनको छोड़ना ही अच्छा है ॥९॥

दुःखमेव वा ॥१०॥

अर्थ- अथवा हिंसादि पाँच पाप दुःखरूप ही हैं ऐसा विचार करे।

नोट- यहाँ कार्यमें कारणका उपचार समझना चाहिये, क्योंकि हिंसादि दुःखके कारण है, पर यहाँ उन्हे कार्य अर्थात् दुःखरूप वर्णन किया है ॥१०॥

निरन्तर चिन्तवन करने योग्य चार भावनाऐ-

मैत्रीप्रमोदकारूण्यमाध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणा-धिक क्लिश्यमानाऽविनयेषु ॥११॥

अर्थ- (च) और (सत्त्वगुणाधिक क्लिश्यामानाविनयेषु) सत्व[1], गुणाधिक[2], क्लिश्यमान[3] और अविनय[4] जीवों में क्रमसे (मैत्रीप्रमोदकारूण्यमाध्यस्थ्यानि) मैत्री प्रमोद कारूण्य और माध्यस्थ्य भावना भावे।

मैत्री - दूसरोंको दुःख न हो ऐसे अभिप्रायको मैत्री भावना कहते हैं।

प्रमोद- अधिक गुणोंके धारी जीवोंको देखकर सुख प्रसन्नता आदिसे प्रकट होनेवाली अन्तरङ्गकी भक्तिको प्रमोद कहते हैं।

कारूण्य- दुःखी जीवोंको देखकर उनके उपकार करनेके भावोंको कारूण्यभाव कहते हैं।

---

1. प्राणीमात्र, 2. जो गुणो से अधिक हो, 3. दुःखी, 4. रोगी वगैरह, मिथ्यादृष्टि उदण्डप्रकृतिके धारक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माध्यस्थ्य- जो जीव तत्वार्थश्रद्धानसे रहित हैं तथा हितका उपदेश देनेसे उलटे चिढ़ते हैं उनमें राग द्वेषका अभाव होना सो माध्यस्थ्य भावना है[1] ॥११॥

संसार और शरीरके स्वभावका विचार-

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ॥१२॥

अर्थ- संवेग(संसारके भय)और वैराग्य(राग द्वेषके अभाव)के लिये क्रमसे संसार और शरीरके स्वभावका चिन्तवन करे ॥१२॥

हिंसा पापका लक्षण-

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥१३॥

अर्थ- प्रमादके[2] योगसे यथासंभव द्रव्य[3] प्राण या भाव[4] प्राणोंका वियोग करना सो हिंसा है।

नोट १- जिस समय कोई व्रती जीव ईर्यासमितिसे गमन कर रहा हो, उस समय कोई क्षुद्र जीव अचानक उसके पैरके नीचे आकर दब जावे तो वह व्रती उस हिंसा पापका भागी नहीं होगा क्योंकि उसके प्रमाद नहीं हैं।

---

1. मैत्रीभाव जगतमें मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दु:खी जीवोंपर मेरे, उरमें करुणा स्रोत वहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग रतोंपर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खू में उनपर, ऐसी परिणति हो जावे॥
गुणी जनोंको देख हृदयमें, मेरे प्रेम उमड़ आवे॥
- जुगलकिशोर मुख्तार

2. पाँच इन्द्रिय, चार कषाय, चार विकथा (स्त्री० राज० राष्ट्र० और भोजन०) राग द्वेष और निंद्रा वे १५ प्रमाद हैं।

3. पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छवास ये १० द्रव्य प्राण है।

4. ज्ञान दर्शनको भाव प्राण कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट २- एक जीव किसी जीवको मारना चाहता था पर मौका न मिलनेसे मार न सका तो भी वह हिंसाका भागी होगा क्योंकि वह प्रमाद सहित है और अपने भाव प्राणोंकी हिंसा करनेवाला है ॥ १३ ॥

असत्यका लक्षण-

असदभिधानमनृतम् ॥ १४ ॥

अर्थ- प्रमादके योगसे जीवोंको दुखदायक वा मिथ्यारुप वचन बोलना सो असत्य है ॥ १४ ॥

स्तेय-चोरीका लक्षण-

अदत्तादानं स्तेयम् ॥ १५ ॥

अर्थ- प्रमादके योगसे बिना दी हुई किसीकी वस्तुको ग्रहण करना चोरी है ॥ १५ ॥

कुशीलका लक्षण-

मैथुनमब्रह्म ॥ १६ ॥

अर्थ- मैथुनम्को अब्रह्म अर्थात् कुशील कहते है।

मैथुन- चरित्रमोहनीय कर्मके उदयसे राग परिणाम सहित स्त्री पुरुषोंके परस्पर स्पर्श करनेकी इच्छाको मैथुन कहते हैं ॥ १६ ॥

परिग्रह पापका लक्षण-

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

अर्थ- मूर्च्छाको परिग्रह कहते है।

मूर्च्छा- बाह्य धन, धान्यादि तथा अन्तरंग क्रोधादि कषायोंमें 'ये मेरे है ' ऐसा भाव रहना सो मूर्च्छा है॥ १७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रतों की विशेषता-

निःशल्यो व्रती ॥ १८ ॥

अर्थ- शल्यरहित जीव ही व्रती है।

शल्य- जो आत्माको कांटेकी तरह दुःख दे उसे शल्य कहते हैं। उसके तीन भेद है। १-मायाशल्य (छल कपट करना) २-मिथ्यात्वशल्य (तत्वोंका श्रद्धान न होना) और ३-निदान शल्य (आगामी कालमें विषयोंकी वांछा करना।)

जब तक इनमें से एक भी शल्य रहती है तब तक जीव व्रती नहीं हो सकता।

व्रतोंके भेद-

अगार्यनगारश्च ॥ १९ ॥

अर्थ- अगारी (गृहस्थ) और अनगार (गृहत्यागी मुनि) इस प्रकार व्रतीके दो भेद है।

अगारीका लक्षण-

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अर्थ- अणु अर्थात् एकदेश व्रत पालनेवाला जीव अगारी कहलाता है।[1]

अणुव्रतके पांच भेद हैं-१ अहिंसाणुव्रत, २-सत्याणुव्रत, ३-अचौर्याणुव्रत, ४-ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५-परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

अहिंसाणुव्रत- संकल्पपूर्वक त्रस जीवोंको हिंसाका परित्याग करना सो अहिंसाणुव्रत है।

---

1. महाव्रतोंको पालनेवाले मुनि अनगार कहलाते है। इस अध्यायमें अणुव्रतधारियोंके ही विशेष चारित्रका वर्णन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्याणुव्रत- राग, द्वेष, भय आदिके वश हो स्थूल असत्य बोलनेका त्याग करना सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत-स्थूल चोरीके त्यागको अचौर्याणुव्रत कहते है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत-परस्त्री सेवनका त्याग करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

परिग्रह- परिमाणाणुव्रत-आवश्यकतासे अधिक परिग्रहका त्यागकर शेषका परिमाण करना सो परिग्रह-परिमाणाणुव्रत है ॥ २० ॥

अणुव्रतके सहायक सात शीलव्रत-

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणातिथिसंविभागव्रतसम्पन्नश्च

अर्थ- वह व्रती दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदण्डव्रत इन तीन गुणव्रतोसे तथा सामायिक, प्रोषधोपवास, उपभोग परिभोग परिमाण और अतिथि, संविभागव्रत इन चार शिक्षाव्रतोंसे सहित होता है। अर्थात् व्रती श्रावक पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत [1] और चार शिक्षाव्रत [2] इस प्रकार बारहव्रतोंका धारी होता है।

तीन गुणव्रत

१- दिग्व्रत-मरणपर्यंत सूक्ष्म पापोंकी निवृत्तिके लिए दशों दिशाओंमें आनेजानेका परिमाण कर उससे बाहर नहीं जाना सो दिग्व्रत है।

२- देशव्रत-जीवनपर्यंतके लिये किये हुये दिग्व्रतमें और भी संकोच करके घड़ी घण्टा दिन महिना आदि तक किसी गृह मुहल्ले आदि तक आना जाना रखना सो देशव्रत है। [3]

---

1. अणुव्रतोंका उपकार करें उन्हें गुणव्रत कहते है। 2. जिनसे मुनिव्रत पालन करनेकी शिक्षा मिले उन्हें शिक्षाव्रत कहते है। 3. दिग्व्रत और देशव्रतमें समयकी मर्यादाकी अपेक्षा अन्तर होता हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३- अनर्थ दण्दव्रत-प्रयोजन रहीत पापवर्धक क्रियाओंका त्याग करना सो अनर्थ दण्डव्रत है। इसके पांच भेद हैं -१-पापोपदेश(हिंसा आरम्भ आदि पापके कर्मोका उपदेश देना) २-हिंसादान (तलवार आदि हिंसाके उपकरण देना), ३-अपध्यान (दूसरेका बूरा विचारना), ४-दुःश्रुति (रागद्वेषको चढ़ानेवाले खोटे शास्त्रोंका सुनाना) और ५-प्रमादचर्या (बिना आयोजन यहां वहां घूमना तथा पृथ्वी आदिको खोदना।)

चार शिक्षाव्रत

१- सामायिक-मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे पांचों पापोंका त्याग करना सो सामायिक है।

२- प्रोषधोपवास-पहले और आगेके दिनोंमें एकाशनके साथ अष्टमी और चतुर्दशीके दिन उपवास आदि करना प्रोषधोपवास है।

३- उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत-भोग [1] और उपभोगकी [2] वस्तुओंका परिमाण कर उससे अधिकमें ममत्व नहीं करना सो भोगउपभोगपरिमाणव्रत है।

४- अतिथि संविभागव्रत-अतिथि अर्थात् मुनियोंके लिए आहार कमन्डलु पीछी वसतिका आदिका दान देना सो अतिथि संभाविभागव्रत है।

व्रतीको सल्लेखना धारण करनेका उपदेश-

मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥ २२ ॥

अर्थ- गृहस्थ, मरणके समय होनेवाली सल्लेखनाको प्रीतिपूर्वक सेवन करता है।

सल्लेखना- इसलोक अथवा परलोक सम्बन्धी किसी प्रयोजनकी अपेक्षा न करके शरीर और कषायके क्रश करनेको सल्लेखना कहते हैं ॥ २२॥

1. जो एकबार भोगनेमें आवे, 2. जो बारबार भोगनेमें आवे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावकके बारह व्रत

देशवत

अणुव्रत	गुणव्रत	शिक्षाव्रत
१. अहिंसाणुव्रत	१. दिग्व्रत	१. सामायिक
२. सत्याणुव्रत	२. देशव्रत	२. प्रोषधोपवास
३. अचौर्याणुव्रत	३. अनर्थदण्डव्रत	३. भोगोपभोग परिमाण
४. ब्रह्मचर्याणुव्रत		४. अतिथि संविभाग
५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत		

५ + ३ + ४ = १२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शनके[1] पांच अतिचार[2]

शङ्कांकाक्षाविचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ- १-शङ्का (जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहे हुए सूक्ष्म पदार्थोंमें सन्देह करना अथवा सप्तमय[3] करना) कांक्ष (सांसारिक सुखोंकी इच्छा करना), विचिकित्सा दुःखी दरिद्री जीवोंको अथवा रत्नत्रयसे पवित्रपर बाह्यमें मलिनमुनियोंके शरीरको देखकर ग्लानि करना), अन्यदृष्टिप्रशंसा (मनसे मिथ्यादृष्टियोंके ज्ञान आदिको अच्छा समझना) और अन्यदृष्टिसंस्तव (वचनसे मिथ्यादृष्टियोंकी प्रशंसा करना) ये पांच सम्यग्दर्शन के अतिचार हैं ॥ २३ ॥

५ व्रत और ७ शीलोंके अतिचारोंकी संख्या-

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

अर्थ- पांच व्रत और सात शीलोमें भी क्रमसे पांच पांच अतिचार होते है, जिनका वर्णन आगे के सूत्रोमें है। ॥ २४ ॥

अहिंसाणुव्रतके पांच अतिचार-

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥२५ ॥

अर्थ- बन्ध (इच्छित स्थानमें जानेसे रोकनेके लिये रस्सी आदिसे बांधना), वध (कोड़ा वेत आदिसे मारना), छेद (नाक, कान आदि अङ्गोंका छेदना), अतिभारारोपण (शक्तिसे अधिक भार लादना) और अन्नपाननिरोध (समयपर खाना पीना नहीं देना) ये पांच अहिंसाणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २५ ॥

1. जिसका निर्दोष सम्यग्दर्शन हो वही व्रत पाल सकता है, इसलिये पहिले सम्यग्दर्शनके पाँच अतिचार कहते हैं।

2. व्रतके एक देश भङ्ग होनेको अतिचार कहते है।

3. इसलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदना, अगुप्तिभय और आकस्मिकभय ये सात भय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्याणुव्रतके अतिचार-

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासा-पहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

अर्थ- मिथ्योपदेश [झूठा उपदेश देना], रहोभ्याख्यान [स्त्री पुरूषकी एकान्तकी बातको प्रकट करना], कूटलेखक्रिया [झूठे दस्तावेज आदि लिखना], न्यासापहार [किसीकी धरोहरका अपहरण करना] और साकारमन्त्रभेद [हाथ चलाने आदिके द्वारा दूसरेके अभिप्रायको जानकर उसे प्रकाशित कर देना] ये पांच सत्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २६ ॥

अचौर्याणुव्रतके पांच अतिचार-

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरूद्धराज्यातिक्रमही-नाधिकमानोन्मानप्रतिरूपकव्यवहाराः ॥ २७ ॥

अर्थ- स्तेनप्रयोग-[चोरको, चोरीके लिए प्रेरणा करना व उसके उपाय बताना], तदाहृतादान [चोरके द्वारा चुराई हुई वस्तुको खरीदना], विरूद्धराज्यातिक्रम [राजाकी आज्ञाके विरूद्ध चलना, टाउनड्युटी, टैक्स वगैरह नहीं देना], [1] हीनाधिकमानोन्मान [देने लेनेके बाँट तराजू वगैरहको कमती बढ़ती रखना] और प्रतिरूपक व्यवहार [बहुमूल्य वस्तुमें, अल्प मूल्यकी वस्तु मिलाकर असली भावसे बेचना], ये पांच अचौर्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २७ ॥

ब्रह्मचर्याणुव्रतके पांच अतिचार-

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृही-तागमनानङ्गक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥२८ ॥

1. अथवा राज्यमें विप्लव होनेपर अधिक मूल्यकी वस्तुको अल्प मूल्यमें खरीदना और अल्प मूल्यकी वस्तुको अधिक मूल्यमें बेचना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- परविवाहकरण [अपने संरक्षणसे रहित दूसरेके पुत्र पुत्रियोंका विवाह करना कराना], परिगृहीतेत्वरिकागमन [पतिसहित व्यभिचारिणी स्त्रियोंके पास आना जाना, लेनदेन रखना, रागभावपूर्वक बातचीत करना] , अपरिगृहीतेत्वरिकागमन [पतिरहित वेश्या आदि व्यभिचारिणी स्त्रियोंके यहाँ आना जाना लेनदेन आदिका व्यवहार रखना], अनङ्गक्रीड़ा [कामसेवनके लिये निश्चित अङ्गको छोड़कर अन्य अङ्गोंसे काम सेवन करना] और कामतीव्राभिनिवेश [कामसेवन की अत्यन्त अभिलाषा रखना], ये पांच ब्रह्मचर्याणुव्रतके अतिचार हैं ॥ २८ ॥

परिग्रहपरिमाणाणुव्रतके अतिचार-

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-प्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥

अर्थ- क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम [खेत तथा रहनेके घरोंके प्रमाणका उल्लंघन करना], हिरण्यसुवर्णप्रमाणतिक्रम [चांदी और सोनेके प्रमाणका उल्लंघन करना], धनधान्यप्रमाणातिक्रम [गाय भेंस आदि पशु तथा गेहूँ चना आदि अनाजके प्रमाणका उल्लंघन करना], दासीदासप्रमाणातिक्रम [नौकर-नौकरानियोंके प्रमाणका उल्लंघन करना] और कुप्यप्रमाणातिक्रम [वस्त्र तथा बर्तन आदिके प्रमाणका उल्लंघन करना] ये पांच परिग्रहपरिमाणुव्रतके अतिचार हैं।

दिग्व्रतके अतिचार-

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि

अर्थ- ऊर्ध्वव्यतिक्रम [प्रमाणसे अधिक ऊँचाई वाले पर्वतादि पर चढ़ना], अधोव्यतिक्रम [प्रमाणसे अधिक नीचाईवाले कुए आदिमें उतरना], तिर्यग्व्यतिक्रम [समान स्थानमें प्रमाणसे अधिक लम्बे जाना], क्षेत्रवृद्धि [प्रमाण किये हुए क्षेत्रको बढ़ा लेना] और स्मृत्वन्तराधान [किये हुए प्रमाणको भूल जाना], ये पांच दिग्व्रतके अतिचार हैं ॥ ३० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशव्रतके अतिचार-

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ।३१ ।

अर्थ- आनयन[मर्यादासे बाहरकी चीजको बुलाना], प्रेष्यप्रयोग [मर्यादाके बाहर नौकर आदिको भेजना], शब्दानुपात [खांसी आदिके शब्दके द्वारा मर्यादासे बाहरवाले आदमियोंको अपना अभिप्राय समझा देना], रूपानुपात [मर्यादासे बाहर रहनेवाले आदमियोंको अपना शरीर दिखाकर इशारा करना] और पुद्गलक्षेप [मर्यादासे बाहर कंकर पत्थर फेंकना], ये पांच देशव्रतके अतिचार हैं ॥ ३१ ॥

अनर्थदण्डव्रतके अतिचार-

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधि-करणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

अर्थ- कन्दर्प (रागसे हास्य सहित अशिष्ट वचन बोलना), कौत्कुच्य (शरीरके कुचेष्टा करते हुए अशिष्ट वचन बोलना), मौखर्य (घृष्टतापूर्वक आवश्यकतासे अधिक बोलना), असमीक्ष्याधिकरण(बिना प्रयोजन, मन वचन कायकी अधिक प्रवृति करना) और उपभोगपरिभोगानर्थक्य (भोग उपभोगके पदार्थोंका आवश्यकतासे अधिक संग्रह करना), ये पाँच अनर्थदण्डव्रतके अतिचार हैं ॥ ३२ ॥

सामायिक शिक्षाके अतिचार-

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

अर्थ- मनोयोग दुष्प्रणिधान (मनकी अन्यथा प्रवृति करना), बाग् योगदुष्प्रणिधान (वचनकी अन्यथा प्रवृति करना), कार्ययोगदुष्प्रणिधान (शरीरकी अन्यथा प्रवृति करना), अनादर (उत्साह रहित होकर सामायिक करना) और स्मृत्यनुपस्थान (एकाग्रताके अभावमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक पाठ वगैरहका भूल जाना), ये पाँच सामायिक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥ ३३ ॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार-

अप्रत्यवैक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरो-पक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

अर्थ- अप्रत्यवैक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग (बिना देखी बिना शोधी हुई जमीनमें मलमूत्रादिका क्षेपण करना), अप्रत्यवैक्षिताप्रमार्जितादान (बिना देखे बिना शोधे हुए पूजन आदिके उपकरण उठाना), अप्रत्यवैक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण (बिना देखे बिना शोधे हुए वस्त्र चटाई आदिको बिछाना), अनादर (भूखसे व्याकुल होकर आवश्यक धर्मकार्योंको उत्साहरहित होकर करना) और स्मृत्यनुम्पस्थान (करनेयोग्य आवश्यक कार्योंको भूल जाना), ये पाँच प्रोषधोपवास शिक्षाव्रतके अतिचार हैं ॥३४ ॥

भोग उपभोग परिमाणके अतिचार-

सचित्तसम्बंधसम्मिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ।३५ ।

अर्थ- सचित्ताहार (जीव सहित-हरे फल आदिका भक्षण करना), सचित्तसम्बन्धाहार सचित पदार्थसे सम्बन्ध को प्राप्त हुई चीजका आहार करना), सचित्तसन्मिश्राहार (संचित पदार्थसे मिले हुए पदार्थका आहार करना, अभिषाहार (गरिष्ठ पदार्थका आहार करना), और दुःपक्वाहार (अधपके अथवा अधिक पके हुए पदार्थका आहार करना, ये पांच भोग उपभोग परिमाणव्रतके अतिचार है। ॥३५ ॥

अतिथिसंविभागव्रतके अतिचार-

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्य-कालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- सचित्तनिक्षेप (सचित्त पत्र आदिमें भोजनको रखकर देना,) सचित्तापिधान (सचित्त पत्र आदिसे ढके हुए भोजनादिका दान करना), परव्यपदेश (दूसरे दातारकी वस्तुको देना), मात्सर्य (अनादरपूर्वक देना अथवा दूसरे दातारसे ईर्षा करके देना), और कालातिक्रम (योग्य कालका उल्लंघन कर अकालमें देना), ये पाँच अतिथिसंविभाग व्रतके अतिचार हैं॥ ३६ ॥

सल्लेखनाके अतिचार-

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि

अर्थ- जीविताशंसा (सल्लेखना धारण कर जीनेकी इच्छा करना), मरणाशंसा (वेदनासे व्याकुल होकर शीघ्र मरनेकी वाञ्छा करना), मित्रानुराग (मित्रोंका स्मरण करना), सुखानुबंध (पूर्वकालमें भोगे हुए सुखोंका स्मरण करना) और निदान (आगामी कालमें विषयोंकी इच्छा करना), ये पाँच सल्लेखना व्रतके अतिचार हैं॥ ३७ ॥

नोट- उपर कहे हुए ७० अतिचारों का त्यागी ही निर्दोष व्रती कहलाता हैं।

दानका लक्षण-

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

अर्थ- (अनुग्रहार्थम्) अपने और परके उपकारके लिए (स्वस्य) धनादिका (अतिसर्गः) त्याग करना (दानम्) दान हैं।

नोट- दान देनेमें अपना उपकार तो यह है कि पुण्यका बन्ध होता है और परका उपकार यह है कि दान लेनेवालेके सम्यग्ज्ञान आदि गुणोंकी वृद्धि होती हैं।

दानमें विशेषता-

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतिचार प्रदर्शन

		व्रत	अतिचार
१		सम्यग्दर्शन	शङ्का, आकांशा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रसंशा, अन्यदृष्टिसंस्तव।
		५ अणुव्रत	
२	१	अहिंसाणुव्रत	बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपाननिरोध।
३	२	सत्याणुव्रत	मिथ्योपदेश,रहोभ्याख्यान, कुटलेखक्रिया, न्यासापहार, साकारमंत्रभेद।
४	३	अचौर्याणुव्रत	स्तेनप्रयोग, तदाहृतादान, विरूद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिकमानोन्मान, प्रतिरूपकव्यवहार।
५	४	ब्रह्मचर्याणुव्रत	परविवाहकरण, परिगृहीतेत्वरिकागमन, अपरिगृहीतेत्वरिकागमन, अनङ्गक्रीड़ा, कामतीव्राभिनिवेश।
६	५	परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	क्षेत्रवास्तुप्रमाणातिक्रम, हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम, धनधान्यप्रमाणातिक्रम, दासीदासप्रमाणातिक्रम, कुप्यप्रमाणातिक्रम।
		३ गुणव्रत	
७	१	दिग्व्रत	ऊर्ध्वव्यतिक्रम,अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि, स्मृत्वन्तराधान।
८	२	देशव्रत	आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात, पुद्गलक्षेप।
९	३	अनर्थदण्डव्रत	कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण, उपभोगपरिभोगानर्थक्य।
		४ शिक्षाव्रत	
१०	१	सामायिक	मनोयोगदुष्प्रणिधान, काययोगदुष्प्रणिधान, वागयोगदुष्प्रणिधान, अनादर, स्मृत्यनुप्रस्थान।
११	२	प्रोषधोपवास	अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितादान, अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितसंस्तरोपक्रमण, अनादर, स्मृत्यनुप्रस्थान।
१२	३	भोगोपभोगपरिमाण	सचित्तहार, सचित्त सम्बन्धाहार, सचित्त संमिश्राहार, अभिषाहार, दु:पक्वाहार।
१३	४	अतिथि संविभाग	सचित्त निक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यप्रदेश, मात्सर्य, कालातिक्रम।
१४		**५सल्लेखना**	जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध, निदान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातृविशेष और पात्रविशेषसे उस दानमें विशेषता होती है।

विधिविशेषता- नवधाभक्तिके क्रमको विधिविशेष कहते हैं।

द्रव्यविशेष- तप स्वाध्याय आदिको वृद्धिमें कारण अहारको द्रव्यविशेष कहते हैं।

दातृविशेष- श्रद्धा आदि सप्तगुण सहित दातारको दातृविशेष कहते हैं।

पात्रविशेष- सम्यकचरित्र आदि गुणसहित मुनि आदिको पात्रविशेष कहते हैं॥ ३९ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः॥

प्रश्नावली

(१) व्रती किसे कहते है ?

(२) अचौर्य व्रतकी पांच भावनाओंको समझाओ ।

(३) मैत्री, प्रमोद, कारूण्य और माध्यस्थ्य भावनाका क्या स्वरूप है ?

(४) ईर्यासमितिसे चलनेवाला मनुष्य अकस्मात् किसी जीवके मर जानेपर पापका भागी होगा या नहीं ?

(५) मूर्च्छाकी क्या परिभाषा है ?

(६) सम्यग्दर्शनके अतिचार बतलाकर सल्लेखनाका स्वरूप समझाओ।

(७) नीचे लिखे हुये शब्दोके अर्थ बतलाओ-साकार मन्त्रभेद विमोचितावास, कुप्य, ऊर्ध्व व्यतिक्रम, सचितसंमिश्राहार और शल्य।

(८) सक्षेपमें श्रावकोंके व्रतोंका वर्णन करो ।

(९) दिग्व्रत और देशव्रतमें क्या अन्तर है ?

(१०) किस किस गतिमें व्रत धारण किये जा सकते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम अध्याय

बन्धतत्वका वर्णन

बन्धके कारण-

मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगाबन्धहेतवः१

अर्थ- मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पांच कर्मबन्धके कारण हैं।

मिथ्यादर्शन- अतत्वोंके श्रद्धानको अथवा तत्वोंका श्रद्धान न होनेको मिथ्यादर्शन कहते है। इसके दो भेद हैं-१-गृहीत मिथ्यादर्शन और २-अगृहीत मिथ्यादर्शन।

गृहीत मिथ्यादर्शन- परोपदेशके निमित्तसे जो अतत्व श्रद्धान हों, उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते है।

अगृहीत मिथ्यादर्शन- परोपदेशके बिना ही केवल मिथ्यात्वकर्मके उदयसे जो हो, उसे अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

मिथ्यादर्शनके ५ भेद और भी हैं- १-एकांत, २-विपरीत, ३-संशय, ४-वैनयिक और ५-अज्ञान।

एकांत मिथ्यादर्शन- अनेक धर्मात्मक वस्तुयें यह इसी प्रकार है, इस तरहके एकांत अभिप्रायको एकांत मिथ्यादर्शन कहते हैं। जैसे बौद्ध मतवाले वस्तुको अनित्य ही मानते हैं और वेदांती सर्वथा नित्य ही मानते हैं ॥ अन्त-धर्म, गुण ॥

विपरीत मिथ्यादर्शन- परिग्रह सहित भी गुरू हो सकता है, केवली केवलाहार करते है, स्त्रीको भी मोक्ष प्राप्त हो सकता हैं, इत्यादि उल्टे श्रद्धानको विपरीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संशय मिथ्यादर्शन- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र ये मोक्षके मार्ग है अथवा नहीं, इस प्रकारसे चलायमान श्रद्धानको संशय मिथ्यादर्शन कहते हैं।

वैनयिक मिथ्यादर्शन- सब प्रकारके देवोंको तथा सब प्रकारके मतोंको समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है।

अज्ञान मिथ्यादर्शन- हिताहितकी परीक्षा न करके श्रद्धान करना अज्ञान मिथ्यात्व है।

अविरति- छह [1] कायके जीवोंकी हिंसाके त्याग न करने और ५ इन्द्रिय तथा मनके विषयोंमें प्रवृति करनेको अविरति कहते हैं। इसके बारह भेद हैं-पृथ्वीकायिकाविरति, जलकायिकाविरति इत्यादि।

बन्धके हेतु मुख्य रुपसे ४ है-मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग। परन्तु यहां गुणस्थानोंका क्रम ध्यानमें रखते हुए कषायको दो भागोमें बांटा गया है-प्रमाद और कषाय। इसलिये यहां बन्धके पांच हेतु बतलाये हैं।

प्रमाद- ५ समिति, ३ गुप्ति, ८ शुद्धि [2] १० धर्म इत्यादि अच्छे कार्योंमें उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न करनेको प्रमाद कहते हैं। [3]

इसके १५ भेद हैं।

कषाय- इसके २५ भेद हैं।

योग- इसके १५ भेद हैं-४ मनोयोग, ४ वचनयोग और ७ काययोग।

नोट- ये मिथ्यादर्शन आदि, सम्पूर्ण तथा पृथक् पृथक् बन्धके कारण हैं। अर्थात्-किसीके पांचों ही बन्धके कारण हैं, किसीके अवरित

---

1. पांच स्थावर और त्रस ये छह कायके जीव है।
2. १-भावशुद्धि, २-कायशुद्धि, ३-विनयशुद्धि, ४-ईर्यापथशुद्धि, ५-भैक्ष्यशुद्धि, ६-प्रतिष्ठापनशुद्धि, ७- शयनासनशुद्धि, ८-वाक्यशुद्धि।
3. प्रमाद और कषायमें समान्य विशेषका अन्तर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आस्रव ५७ के भेद। आस्रव

१५=५७ योग

५ मिथ्यादर्शन
१ एकान्त
२ विपरीत
३ संयम
४ वैनयिक
५ अज्ञान

१२ अविरति
इन्द्रियाविरति
१ स्पर्शनेन्द्रियाविरति
२ रसनेन्द्रियाविरति
३ घ्राणेन्द्रियाविरति
४ चक्षुरिन्द्रियाविरति
५ कर्णेन्द्रियाविरति
६ मनोऽविरति

प्राणहिंसादिऽविरति
१ पृथिवीकायिक हिंसाविरति
२ जलकायिक हिंसाविरति
३ अग्निकायिक हिंसाविरति
४ वायुकायिक हिंसाविरति
५ वनस्पतिकायिक हिंसाविरति
६ त्रसकायिक हिंसाविरति

२५ प्रमाद

कषाय

अनंता.	अप्रत्या.	प्रत्या.	संज्वलन.
१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध	१ क्रोध
२ मान	२ मान	२ मान	२ मान
३ माया	३ माया	३ माया	३ माया
४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ	४ लोभ

नोकषाय
१ हास्य
२ रति
३ अरति
४ शोक
५ भय
६ जुगुप्सा
७ स्त्रीवेद
८ पुंवेद
९ नपुं. वेद

काययोग
१ औदारिक काययोग
२ औदारिक मिश्रकाययोग
३ वैक्रियिक काययोग
४ वैक्रियिक मिश्रकाययोग
५ आहारक काययोग
६ आहारक मिश्रकाययोग
७ कार्मण काययोग

वचनयोग
१ सत्य वचनयोग
२ असत्य वचनयोग
३ उभय वचनयोग
४ अनुभय वचनयोग

मनोयोग
१ सत्य मनोयोग
२ असत्य मनोयोग
३ उभय मनोयोग
४ अनुभय मनोयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि ४, किसीके प्रमाद आदि ३, किसीके कषाय आदि २ और किसीके सिर्फ एक योग ही बन्धका कारण है ॥ १ ॥

बन्धका लक्षण-

सकषायत्वाज्जीवःकर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥ २ ॥

अर्थ-(जीवः) जीव (सकषायत्वात्) कषाय सहित होनेसे (कर्मणः) कर्मके (योग्यान्) योग्य (पुद्गलान्) कार्मण वर्गणारूप पुद्गल परमाणुओंको जो [आदत्ते] ग्रहण करता है [सः] वह [बन्धः] है।

भावार्थ- सम्पूर्ण लोकमें कार्मण वर्गणारूप पुद्गल भरे हुए है। कषायके निमित्तसे उनका आत्माके साथ सम्बन्ध हो जाता है यही बन्ध कहलाता है।

नोट- इस सूत्रमें 'कर्मयोग्यान्' ऐसा समास न करके जो अलग अलग ग्रहण किया है उससे सूत्रका यह अर्थ भी निकलता है कि- "जीव कर्मसे सकषाय होता है और सकषाय होनेसे कर्म-रुप पुद्गलोंको ग्रहण करता हैं, यही बन्ध कहलाता है" ॥ २ ॥

बन्धके भेद-

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥३ ॥

अर्थ- प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध ये बन्धके चार भेद हैं।

प्रकृतिबन्ध- कर्मोके स्वभावको प्रकृतिबन्ध कहते हैं।

स्थितिबन्ध- ज्ञानावरणादि कर्मोका अपने स्वभावसे च्युत नहीं होना सो स्थितिबन्ध है।

अनुभागबन्ध- ज्ञानावरणादि कर्मोके रसविशेषको अनुभागबन्ध कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशबन्ध- ज्ञानावरणादि कर्मरूप होनेवाले पुदगल स्कन्धोंके परमाणुओंकी संख्याको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

नोट- इन चार प्रकारके बन्धोंमें प्रकृति और प्रदेशबन्ध योगके निमित्तसे होते हैं तथा स्थिति और अनुभागबन्ध कषायके निमित्तसे होते हैं॥ ३॥

प्रकृतिबन्धका वर्णन-प्रकृतिबन्धके मूल भेद-

आद्योज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाम गोत्रान्तरायाः ॥ ४॥

अर्थ- पहला प्रकृतिबन्ध-ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ऐसे आठ प्रकारका है।

ज्ञानावरण- जो आत्माके ज्ञानगुणोंको घाते उसे ज्ञानावरण कहते हैं।

दर्शनावरण- जो आत्माके दर्शनगुणको घाते उसे दर्शनावरण कहते हैं।

वेदनीय-जिसके उदयसे जीवोंको सुख दुःख होवे उसे वेदनीय कहते हैं।

मोहनीय- जिसके उदयसे जीव अपने स्वरूपको भूलकर अन्यको अपना समझने लगे उसे मोहनीय कहते हैं।

आयु- जो इस जीवको नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवोंमें से किसी शरीर में रोक रखे उसे आयुकर्म कहते है।

नाम- जिसके उदयसे शरीर आदिकी रचना हो उसे नाम-कर्म कहते है।

गोत्र- जिसके उदयसे यह जीव ऊँच नीच कुलमें पैदा होवे उसे गोत्रकर्म कहते हैं।

अन्तराय- जिसके उदयसे दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यमें विघ्न आवे उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मवृक्ष :–

मूल प्रकृति ८
उत्तर प्रकृति १४८

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत
फोन :- (0261) 427621

मोक्ष शास्त्र (तत्वार्थ सूत्र)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट- उक्त आठ कर्मोमेसे ज्ञानावरण, दर्शनवरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया [जीवके[1] अनुजीवी गुणोंके घातनेवाले] हैं और बाकीके चार कर्म अघातिया [प्रतिजीवी [2] गुणोंके घातनेवाले] हैं।[3]

प्रकृतिबन्धके उत्तर भेद-

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

अर्थ- ऊपर कहे हुए ज्ञानावरणादि कर्म क्रमसे ५, ९, २, २८, ४, ४२, २ और ५ भेदवाले हैं ॥ ५ ॥

ज्ञानावरणके पांच भेद-

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ॥ ६ ॥

अर्थ- मतिज्ञानावरण [मतिज्ञान को ढाँकनेवाला], श्रुतज्ञानावरण [श्रुतज्ञानको ढांकनेवाला], अवधिज्ञानावरण [अवधिज्ञानको ढांकनेवाला], मनःपर्यय ज्ञानावरण [मनःपर्यय ज्ञानको ढांकनेवाला] और केवलज्ञानावरण (केवलज्ञानको ढांकनेवाला) ये पांच ज्ञानावरणके भेद हैं।

दर्शनावरण कर्मके ९ भेद-

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानांनिद्रानिद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥ ७ ॥

1. सद्‌भाव रूप गुण। 2. अभाव रूप गुण। 3. जिस प्रकार एक ही बार खाया हुआ भोजन रस, खून आदि नाना रूप हो जाता है उसी तरह एकबार ग्रहण किया हुआ कर्म ज्ञानावरणादि अनेक भेदरूप हो जाता है। विशेषता यह है कि भोजन, रस, ख़ून आदि रूप क्रम क्रमसे होता है, परन्तु कर्म ज्ञानावरणादि रूप एकसाथ हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये नौ दर्शनावरण कर्मके भेद हैं।

चक्षुर्दर्शनावरण- जो कर्म चक्षु इन्द्रियोंसे होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे चक्षुर्दर्शनावरण कहते हैं।

अचक्षुर्दर्शनावरण- जिस कर्मके उदयसे चक्षु इन्द्रियको छोड़कर शेष इन्द्रियों तथा मनसे पदार्थका सामान्य अवलोकन न हो सके उसे अचक्षुर्दर्शनावरण कहते हैं।

अवधिदर्शनावरण- जो कर्म अवधिज्ञानसे पहले होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे अवधि दर्शनावरण कहते हैं।

केवलदर्शनावरण- जो कर्म केवलज्ञानके[1] साथ होनेवाले सामान्य अवलोकनको न होने दे उसे केवलदर्शनावरण कहते है।

निद्रा- मद, खेद, श्रम आदिको दूर करनेके लिए जो शयन करते है वह निद्रा जिस कर्मके उदयसे हो वह कर्म निद्रा दर्शनावरण है।

निद्रानिद्रा- नींदके बाद फिर फिर नींद आनेको निद्रानिद्रा कहते है। निद्रानिद्राके वशीभूत होकर जीव अपनी आंखोंको नहीं खोल सकता।

प्रचला- बैठे २ नेत्र, शरीर आदिमें विकार करनेवाली, शोक तथा थकावट आदिसे उत्पन्न हुई नींद प्रचला कहलाती है। प्रचलाके वशीभूत हुआ जीव सोता हुआ भी जागता रहता है।

1. छद्मस्थ जीवोंके दर्शन और ज्ञान क्रमसे होते है अर्थात् पहले दर्शन बादमें ज्ञान। परंतु केवली भगवानके दोनों एकसाथ होते है, क्योंकि उनके बाधक कर्मोका एकसाथ क्षय होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलाप्रचला- प्रचलाके ऊपर प्रचलाके आनेको प्रचलाप्रचला प्रकृति कहते हैं। प्रचलाप्रचलाके द्वारा शयन अवस्थामें मुंहसे लार बहने लगती है तथा अंगोपांग चलमें लगते हैं।

स्त्यानगृद्धि- जिस निद्राके द्वारा सोती अवस्थामें भी नाना तरहके भंयकर कार्य कर डाले और जागने पर कुछ मालूम ही नहीं हो कि मैने क्या किया है उसको स्त्यानगृद्धि कहते हैं[1]॥ ७॥

वेदनीयके दो भेद-

सदसद्वेद्ये ॥ ८॥

अर्थ- सद्वेद्य और असद्वेद्य ये दो वेदनीय कर्मके भेद है।

सद्वेद्य- जिसके उदयसे देव आदि गतियोंमें शारीरिक तथा मानसिक सुख प्राप्त हो उसे सद्वेद्य कहते हैं।

असद्वेद्य- जिसके उदयसे नरकादि गतियोंमें तरह-तरहके दुःख प्राप्त हो उसे असद्वेद्य कहते हैं॥ ८॥

मोहनीयके २८ भेद-

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्या-स्त्रिद्विनवषोडशभेदाःसम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्य-कषायकषायौहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंन-पुंसकवेदाः अनंतानुबंध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यान-संज्वलनविकल्पाश्चैकशःक्रोधमानमायालोभः।

अर्थ- दर्शन मोहनीय, चारित्र मोहनीय, कषाय वेदनीय और अकषाय वेदनीय इन चार भेदरूप मोहनीय कर्म क्रमसे तीन, दो, नौ और सोलह भेदरूप हैं। जिनमें से सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्मिथ्यात्व ये

---
1. यह पाँच तरहकी निंद्रा जिस कर्मके उदयसे होती है वह निंद्रा दर्शनावरण आदि कर्मभेद कहलाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन दर्शनमोहनीय कर्मके भेद हैं। अकषाय वेदनीय और कषाय वेदनीय ये दो भेद चारित्र मोहनीयके हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुंवेद और नपुंसकवेद ये ९ अकषाय वेदनीयके भेद हैं और अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान प्रत्याख्यान और संज्वलन इन चार भेदस्वरूप क्रोध, मान माया लोभ ये सोलह भेद कषाय वेदनीयके हैं।

भावार्थ- मोहनीय कर्मके मुख्यमें दो भेद हैं-१ दर्शनमोहनीय [1] और २ चारित्रमोहनीय [2] उनमें दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्र मोहनीयके २५ इस प्रकार कुल मिलाकर मोहनीय कर्मके २८ भेद है।

मिथ्यात्व प्रकृति- जिस कर्मके द्वारा सर्वज्ञ-कथित मार्गसे परांगमुखता हो अर्थात् मिथ्यादर्शन हो उसे मिथ्यात्व प्रकृति कहते है।

सम्यक्त्व प्रकृति- जिस प्रकृतिके उदयसे आत्माके सम्यग्दर्शनमें दोष उत्पन्न हो उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति- जिस प्रकृतिके उदयसे मिले हुए दही गुड़के स्वादकी तरह उभयरूप परिणाम हो उसे सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति कहते हैं। [3]

हास्य- जिसके उदयसे हँसी आवे वह हास्य नोकषाय हैं।

रति- जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम हो वह रति है।

अरति- जिसके उदयसे विषयोंमें प्रेम न हो वह अरति है।

शोक- जिसके उदयसे शोक चिंता हो वह शोक हैं।

भय- जिसके उदयसे डर लगे वह भय है।

जुगुप्सा- जिसके उदयसे ग्लानि हो वह जुगुप्सा हैं।

स्त्रीवेद- जिसके उदयसे पुरुषसे रमनेके भाव हो वह स्त्रीवेद है।

---

1. आत्माके सम्यक्त्व गुणको घाते।.2. जो आत्माके चारित्रगुणको घाते।

3. सम्यक्त्व प्रकृति और सम्यक्मिथ्यात्व प्रकृति इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता किन्तु आत्माके शुभ परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिकी अनुभाग शक्ति हीन हो जानेसे उसमें इन २ प्रकृतिरूप परिणमन हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुंवेद- जिसके उदयसे स्त्रीके साथ रमनेके भाव हो वह पुंवेद है।

नपुंसक वेद- जिसके उदयसे स्त्री पुरुष दोनोंसे रमनेकी इच्छा हो वह नपुंसकवेद है।[1]

अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ-जो आत्माके सम्यग्दर्शन- गुणको प्रकट न होने दे उसे अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया लोभ कहते है।

अनन्त संसारका कारण होनेसे मिथ्यात्वको अनन्त कहते हैं उसके साथ ही इसका अनुबन्ध (सम्बन्ध) रहता है इसलिये इसको अनन्तानुबन्धी कहते है।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ- जिसके उदयसे देशचारित्र न हो सके उसे [2] अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ- जो प्रत्याख्यान अर्थात् सकलचारित्रको घाते उसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध मान माया लोभ कहते हैं।

संज्वलन क्रोध मान माया लोभ - जिसके उदयसे [3] यथाख्यात चारित्र न हो सके उसे संज्वलन क्रोध मान माया लोभ कहते है। यह कषायसम अर्थात् संयमके साथ ज्वलित-जागृत रही आती है, इसलिये इसका नाम संज्वलन है।[4]

नोट- इन कषायोंमें आगे आगे मन्दता है और नीचे २ तीव्रता है।

आयुकर्मके भेद-

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ॥ १० ॥

1. हास्य आदि ९ कषाय क्रोधादिककी तरह आत्माके गुणोंका पूरा घात नहीं कर पातीं इसलीये इन्हें नोकषाय (किंचित् कषाय) कहते है। 2. अ=अल्प-प्रत्याख्यान=चारित्रका आवरण करनेवाला। 3. जो चारित्रमोहनीयके उपशम अथवा क्षयसे होता है उसे यथाख्यात चारित्र कहते है।

4.सम्मत्तदेससयलचरितजहक्खादचरणपरिणामे।
घादंति वा कसाया, चउसोल असंखलोगमिदा॥ - '२८३ जीवकाण्ड'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- नरकायु, तिर्यगायु, मानुषायु और देवायु ये चार आयुकर्मके भेद हैं।

नरकायु- जिस कर्मके उदयसे जीव नारकीके शरीरमें रुका रहे नरकायु कहते है। इसी तरह सब भेदोंसे समझना चाहिये ॥ १० ॥

नाम कर्मके भेद-

४ ५ ५ ३ ६ २ ५ ५ ६

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थान-

६ ८ ५ २ ५ ४ १ १ १

संहननस्पर्शरसगन्धवर्णानुपुर्व्यागुरुलघूपघातपर-घातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयःप्रत्येकशरीरत्र-ससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशः कीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥ ११ ॥

अर्थ- गति, जाति, शरीर, अङ्गोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघू, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति। ये इक्कीस तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यशःकीर्ति ये दश तथा इनके उल्टे साधारण, स्थावर, दुर्भग, दुःस्वर, अशुभ, स्थूल, अपर्याप्त, अस्थिर, अनादेय, अयशःकीर्ति, ये दश और तीर्थकरत्व इस प्रकार सब मिलकर नामकर्मके ४२ भेद है।[1]

१-गति- जिसके उदयसे जीव दूसरे भवको प्राप्त करता है उसे गति नामकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं १-नरकगति, २-तिर्यग्गति, ३-मनुष्यगति और ४-देवगति। जिसके उदयसे आत्माको नरकगति प्राप्त होवे उसे नरकगति नामकर्म कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

1.गति आदिके अवांतर भेद जोड़नेसे ९३ भेद होते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२-जाति- जिस कर्मके उदयसे जीव नरकादी गतियोंमें अव्यभिचाररुप समानतासे एकरुपताको प्राप्त होवे वह जाति नाम कर्म है। इसके पाँच भेद है-१-एकेन्द्रिय जाति, २-द्वीन्द्रिय जाति, ३-तीन्द्रिय जाति, ४-चातुरिन्द्रिय जाति और ५-पंचेन्द्रिय जाति। जिसके उदयसे जीव एकेन्द्रिय जातिमें पैदा हो उसे एकेन्द्रिय जाति नामकर्म कहते है। इसी प्रकार सब भेदोंका लक्षण जानना चाहिये।

३-शरीर- जिस कर्म उदयसे शरीरकी रचना हो उसे शरीर नामकर्म कहते है। इसके पाँच भेद है-१-औदारिक शरीर नामकर्म, २-वैक्रियिक शरीर नामकर्म, ३-आहारक शरीर नामकर्म, ४-तैजस शरीर नामकर्म और ५-कार्मण शरीर नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरकी रचना हो उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते है। इसी प्रकार सब भेदोंके लक्षण जानना चाहिए।

४-अङ्गोपाङ्ग- जिसके उदयसे अङ्ग-उपाङ्गो की रचना हो उसे अङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते है। इसके भेद है-१-औदारिक शरीरङ्गोपाङ्ग, २-वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग और ३-आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके अङ्ग और उपाङ्गोकी रचना हो उसे औदारिक शरीराङ्गोपाङ्ग नामकर्म कहते है । इस प्रकार शेष दो भेदोंके लक्षण समझना चाहिये।[1]

५-निर्माण- जिस कर्मके उदयसे अंगोपाँगोंका यथास्थान और यथाप्रमाण हो उसे निर्माण नाकर्म कहते हैं।

६-बन्धन नामकर्म- शरीर नामकर्मके उदयसे ग्रहण किये हुए पुद्गल स्कन्धोंका परस्पर सम्बन्ध जिस कर्मके उदयसे होता है उसे बन्धन

1.दो हाथ, दो पाँव, नितम्ब, पीठ, वक्षःस्थल और मस्तक ये ८ अंग है तथा अंगुलि आदि उपांग है। 'णलया बहुय तहा णियम्ब पुट्ठो उरो य सीसो य। अट्ठे व दु अंगाई देहे सेसा उवंगाइ ॥ ' - कर्मकांड।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्म कहते हैं इसके पाँच भेद है-१. औदारिक बन्धन नामकर्म, २. वैक्रियिक बन्धन नामकर्म, ३-आहारक बन्धन नामकर्म, ४-तैजस बन्धन नामकर्म, और ५-कार्मण बन्धन नामकर्म। जिसके उदयसे औदारिक शरीरके परमाणु दीवालमें लगे हुए इंट और गारेकी तरह छिद्र सहित परस्पर सम्बन्धको प्राप्त हों वह औदारिक बंधन नामकर्म है। इसी प्रकार अन्य भेदोंका लक्षण जानना चाहिए।

७-संघात नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे औदारिक आदि शरीरोके प्रदेशोंका छिद्ररहित बन्धन तो उसे संघात नामकर्म कहते है। इसके पांच भेद है-औदारिक, संघात आदि।

८-संस्थान नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे शरीरका संस्थान अर्थात् आकार बने उसे संस्थान नामकर्म कहते है। इसके ६ भेद है-१ समचतुरस्त्रसंस्थान नामकर्म, २न्यग्रोध-परिमण्डलसंस्थान, ३ स्वातिसंस्थान, ४ कुब्जकसंस्थान, ५ वामनसंस्थान और ६ हूण्डकसंस्थान।

जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर उपर नीचे तथा बीचमें समान भागरुप अर्थात् सुडोल हो उसे समचतुरस्त्रसंस्थान कहते हैं। जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर वटवृक्षकी तरह नाभिसे नीचे पतला और ऊपर मोटा हो उसे न्यग्राधपरिमण्डलसंस्थान कहते है। जिस कर्मके उदयसे शरीर सर्पकी बामीकी तरह ऊपर पतला और नीचे मोटा हो उसे स्वातिसंस्थान नामकर्म कहते है। जिस कर्मसे उदयसे जीवका शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जकसंस्थान नामकर्म कहते हैं और जिस कर्मके उदयसे बौना शरीर हो उसे वामनसंस्थान नामकर्म कहते हैं और जिस कर्मके उदयसे शरीरके अङ्गोपांग किसी खास आकृतिके न हों उसे हुण्डकसंस्थान नामकर्म कहते है।

९-संहनन नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे हड्डियोंके बंधनमें विशेषता हो उसे संहनन नामकर्म कहते हैं। इसके ६ भेद है-१-वज्रवृषभनाराच संहनन, २-वज्रनाराच संहनन, ३-नाराच संहनन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४-अर्द्धनाराच संहनन, ५-कीलक संहनन और ६-असंप्राप्तसृपाटिका संहनन।

जिस कर्मके उदयसे वृषभ (वेष्टन), नाराच (कील) और संहनन (हड्डियां वज्रकी ही हों उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ १ ॥ जिस कर्मके उदयसे वज्रके हाड़ और वज्रकी कीलियां हों परन्तु वेष्टन वज्रके न हों उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ २ ॥ जिसके उदयसे सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हों उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ३ ॥ जिसके उदयसे हड्डियोंकी संधियाँ अर्धकीलित हों उसे अर्धनाराच संहनन नाममकर्म कहते हैं ॥ ४ ॥ जिसके उदयसे हड्डियां परस्पर कीलित हो उसे कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसके उदयसे जुदी जुदी हड्डियां नसोंसे बंधी हुई हों, परस्परमें कीलित नहीं हो उसे असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म कहते हैं ॥ ६ ॥

१०-स्पर्श- जिसके उदयसे शरीरमे स्पर्श हो उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं । इसके आठ भेद हैं-१-कोमल, २-कठोर, ३-गुरू, ४-लघु, ५-शीत, ६-कृष्ण, ७-स्निग्ध और ८-रूक्ष ।

११-रस- जिसके उदयसे शरीरमें रस हो वह रस नामकर्म कहलाता हैं। इसके ५ भेद है-तिक्त (चरपरा), सट (कडुआ), कषाय (कषायला), आग्ल (खट्टा) और मधुर (मीठा)।

१२-गन्ध- जिसके उदयसे शरीरमे गन्ध हो उसे गन्ध नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेह हैं- १-सुगन्ध, २-दुर्गन्ध।

१३- वर्ण- जिसके उदयसे शरीरमें वर्ण अर्थात् रूप हो वह वर्ण नामकर्म कहते हैं। इसके पांच भेद है-१-शुक्ल, २-कृष्ण, ३-नील, ४-रक्त, और ५-पीत।

१४-आनुपूर्व्य- जिसके कर्मके उदयसे विग्रह गतिमें मरणासे पहलेके शरीरके आकार आत्माके प्रदेश रहते हैं उसे आनुपूर्व्य नामकर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं। इनके चार भेद हैं - १ नरक गत्यानुपूर्व्य, २ तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, ३ मनुष्यगत्यानुपूर्व्य और ४ देवगत्यानुपूर्व्य।

जिस समय आत्मा मनुष्य अथवा तिर्यंच आयुको पूर्णकर पूर्व शरीरसे पृथक् हो नरकभवके प्रति जानेको सन्मुख होता है उस समय पूर्व शरीरके आकार आत्माके प्रदेश जिस कर्मके उदयसे होते हैं उसे नरकगत्यानुपूर्व्य कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भेदोंके लक्षण जानना चाहिये।

१५-अगुरूलघु-नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे जीवका शरीर लोहेके गोलेकी तरह भारी और आकके तूलकी तरह हलका न हो वह अगुरूलघु नामकर्म है।

१६-उपघात- जिस कर्मके उदयसे अपने अंगोंसे अपना घात हो उसे उपघात नामकर्म कहते हैं।

१७-परघात- जिसके उदयसे दूसरेका घात करनेवाले अंगोपांग हो उसे परघात नामकर्म कहते हैं।

१८-आतप- जिस कर्मके उदयसे आतापरूप शरीर हो उसे आतप नामकर्म कहते हैं।[1]

१९-उद्योत- जिसके उदयसे उद्योतरूप शरीर हो उसे उद्योत नामकर्म कहते है।[2]

२०-उच्छ्वास- जिसके उदयसे शरीरमें उच्छ्वास हो उसे उच्छ्वास नामकर्म कहते हैं।

२१-विहायोगति- जिसके उदयसे आकाशमें गमन हो उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं-१-प्रशस्त विहायोगति और २-अप्रशस्त विहायोगति।

२२-प्रत्येक शरीर- जिस नामकर्मके उदयसे एक शरीरका एक

1. इसका उदय सूर्यके विमानमें स्थित बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवोंके होता है।
2. इसका उदय चन्द्रमाके विमानमें स्थित पृथ्वीकायिक जीवोंके तथा खद्योग (जुगनु) आदि जीवोंके होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही जीव स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नामकर्म कहते हैं।

२३-साधारण शरीर- जिसके उदयसे एक शरीरके अनेक जीव स्वामी हों उसे साधारण शरीर नामकर्म कहते है।[1]

२४-त्रस नामकर्म- जिसके उदयसे द्वीन्द्रियादिक जीवोंमें जन्म हो उसे त्रस नामकर्म कहते हैं।

२५-स्थावर नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे एकेन्द्रिय जीवोंमें जन्म हो उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं।

२६-सुभग नामकर्म- जिसके उदयसे दूसरे जीवोंको अपनेसे प्रीति उत्पन्न हो उसे सुभग नामकर्म कहते हैं।

२७-दुर्भग नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे रूपादि गुणोंसे युक्त होनेपर भी दूसरे जीवोंकों अप्रीति उत्पन्न हो उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं।

२८-सुस्वर- जिसके उदयसे उत्तम स्वर (आवाज) हो उसे सुस्वर नामकर्म कहते हैं।

२९-दुःस्वर- जिसके उदयसे खराब स्वर हो उसे दुःस्वर नामकर्म कहते हैं।

३०-शुभ- जिसके उदयसे शरीरके अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नामकर्म कहते है।

३१-अशुभ- जिसके उदयसे शरीरके अवयव देखनेमें मनोहर न हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं।

३२-सूक्ष्म- जिसके उदयसे ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसीको रोक सकता हो और न किसीसे रोका जा सकता हो उसे सूक्ष्म शरीर नामकर्म कहते हैं।

३३-बादर (स्थूल)- जिस कर्मके उदयसे दूसरेको रोकनेवाला तथा दूसरेसे रूकनेवाला स्थूल शरीर प्राप्त हो उसे बादर शरीर नामकर्म कहते है।

---

1. इनका उदय निगोदिया वनस्पतिकायिक जीवोंके होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४-पर्याप्ति नामकर्म- जिसके उदयसे अपने योग्य पर्याप्ति पूर्ण हों उसे पर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।[1]

३५-अपर्याप्ति नामकर्म- जिस कर्मके उदयसे जीवके एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो उसे अपर्याप्ति नामकर्म कहते हैं।[2]

३६-स्थिर- जिस कर्मके उदयसे शरीरको धातुऐं (रस, रूधिर, मांस, मेद, हाड़, मज्जा और शुक्र) तथा उप धातुऐं (वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम और जठराग्नि) अपने अपने स्थानमें स्थिरताको प्राप्त हों उसे स्थिर नामकर्म कहते हैं।

३७-अस्थिर- जिसके उदयसे पूर्वोक्त धातु उपधातुएं अपने अपने स्थानमें स्थिर न रहें उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं।

३८-आदेय- जिसके उदयसे प्रभासहित शरीर हो उसे आदेय नामकर्म कहते हैं।

३९-अनादेय- जिसके उदयसे प्रभारहित शरीर हो उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं।

---

1. आहारवर्गणा भाषावर्गणा और मनोवर्गणाके परमाणुओंको शरीर इन्द्रियादि रूप परिणत करनेवाली शक्तिकी पूर्णताको पर्याप्ति कहते है। इसके छह भेद हैं-, १-आहार पर्याप्ति, २-शरीर पर्याप्ति, ३-इन्द्रिय पर्याप्ति, ४-श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५-भाषा पर्याप्ति और ६ मनः पर्याप्ति। इनमें से एकेन्द्रिय जीवके भाषा और मनके बिना ४, असैनी पंचेन्द्रियके मनके बिना ५ और सैनी जीवके ६ पर्याप्तियाँ होती है। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है वह पर्याप्तक कहा जाता है।

2. जिस जीवकी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती उसे अपर्याप्तक कहते है। अपर्याप्तकके दो भेद है, १-निर्वृत्यपर्याप्तक और २-लब्ध्यपर्याप्तक। जिस जीवकी शरीर पर्याप्ति अभी पूर्ण तो न हुई हो किन्तु नियमसे पूर्ण होने वाली हो उसे निर्वृत्यपर्याप्तक कहते है। जिस जीवकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हुई हो और न होनेवाली हो उसे लब्ध्यपर्याप्तक कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०-यशः कीर्ति- जिसके उदयसे संसार में जीवकी प्रशंसा हो उसे यशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४१-अयशः कीर्ति- जिसके उदयसे जीवकी संसारमें निन्दा हो उसे अयशःकीर्ति नामकर्म कहते हैं।

४२-तीर्थंकरत्व- अरहन्तपदके कारणभूत कर्मको तीर्थंकरत्व नामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्मके भेद-

उच्चैर्नीचैश्च ॥ १२ ॥

अर्थ- उच्च गोत्र और नीच गोत्र ये दो भेद गोत्रकर्मके हैं।

१-उच्च गोत्र- जिसके उदयसे लोकमान्य कुलमें जन्म हो उसे उच्च गोत्रकर्म कहते हैं ॥ १२ ॥

२-नीच गोत्र- जिस कर्मके उदयसे लोकनिन्द्य कुलमें जन्म हो उसे नीच गोत्रकर्म कहते हैं ॥ १२ ॥

अन्तरायकर्म के भेद-

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

अर्थ- दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ये अन्तरायकर्म के ५ भेद हैं। जिसके उदयसे जीव, दानकी इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं। इस प्रकार अन्य भेदोंके भी लक्षण समझना चाहिए ॥ १३ ॥

स्थितिबन्धका वर्णन-

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकी उत्कृष्ट स्थिति

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम कोटीकोट्यः परा स्थितिः ॥ १४ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- आदिके तीन-(ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय) और अन्तराय इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है।

नोट- मिथ्यादृष्टि संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तका जीवके ही इस उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध होता है[1] ॥ १४ ॥

मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

अर्थ- मोहनीयकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरकी है ॥ १५ ॥

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति-

विंशतिर्नामगोत्रयोः ॥ १६ ॥

अर्थ- नामकर्म और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरकी है ॥ १६ ॥

आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति-

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ॥ १७ ॥

अर्थ- आयुकर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरकी हैं ॥ १७ ॥

वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति-

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अर्थ- वेदनीयकर्मकी जघन्य स्थिति बारह मुहूर्तकी[2] हैं ॥ १८ ॥

---

1. एक करोडमें एक करोडका गुणा करनेपर जो गुणनफल आवे उसे कोड़ाकोड़ी कहते है।
2. दो घडी अर्थात् ४८ मिनटका एक मुहूर्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम और गोत्रकी जघन्य स्थिति-

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

अर्थ- नाम और गोत्र कर्मकी जघन्य स्थिति आठ मुहूर्तकी है ॥ १९ ॥

शेष पांच कर्मोकी जघन्य स्थिति-

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥ २० ॥

अर्थ- बाकीके ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय और आयु कर्मकी जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त[1] है ॥ २० ॥

अनुभव (अनुभाग) बन्धका वर्णन-

अनुभव बन्धका लक्षण

विपाकोऽनुभवः ॥ २१ ॥

अर्थ- कषायोंकी तीव्रता मन्दता अथवा माध्यमतासे जो आस्रवमें विशेषता होती है उससे होने वाले विशेष पाकको विपाक कहते हैं। अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भावके निमित्तके वशने नाना-रूपताको प्राप्त होनेवाले पाकको विपाक कहते है। और इस पाकको ही अनुभव अर्थात् अनुभागबन्ध कहते हैं।

नोट-१- शुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर शुभ प्रकृतियोमें अधिक और शुभ प्रकृतियोमें हीन अनुभाग होता है।

नोट-२- अशुभ परिणामोंकी अधिकता होनेपर अशुभ प्रकृतियोमें अधिक और शुभ प्रकृतियोंमे हीन अनुभाग होता है।

---

1. आवलीमें ऊपर और मुहूर्तमें नीचेके कालको अन्तमुहूर्त कहते है। असंख्यात समयों की एक आवली होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स यथानाम ॥ २२ ॥

अर्थ- वह अनुभागबन्ध कर्मोंके नामानुसार ही होता है।

भावार्थ- जिस कर्मका जैसा नाम है उसमें वैसा ही अनुभाग बन्ध पड़ता है। जैसे ज्ञानावरण कर्ममें ज्ञानको रोकना, दर्शनावरण कर्म में 'दर्शनको रोकना' आदि ॥ २२ ॥

फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है ?-

ततश्च निर्जरा ॥ २३ ॥

अर्थ- तीव्र मन्द या मध्यम फल दे चुकनेके बाद कर्मोंकी निर्जरा हो जाती है। अर्थात् कर्म उदयमें आकर आत्मासे पृथक् हो जाते हैं।

निर्जराके दो भेद हैं- १ सविपाक निर्जरा और २ अविपाक निर्जरा।[1]

सविपाक निर्जरा- शुभ अशुभ कर्मोंको जिस प्रकार बांधाथा उसी प्रकार स्थिति पूर्ण होने पर फल देकर आत्मासे पृथक् होनेको सविपाक निर्जरा कहते हैं।

अविपाक निर्जरा- उदयकाल प्राप्त न होनेपर भी तप आदि उपायोंसे बीचमें ही फल भोगकर खिरा देनेको अविपाक निर्जरा कहते हैं।

नोट- इस सूत्रमें जो 'च' शब्दका ग्रहण किया है उससे नवमें अध्यायके 'तपसा निर्जरा च' इस सूत्रसे सम्बन्ध सिद्ध होता है जिससे यह सिद्ध हुआ कि कर्मोंकी निर्जरा तपसे भी होती है, अथात् उक्त दो प्रकारकी निर्जराके कारण क्रमसे कर्मोंका विपाक और तपश्चरण है ॥ २३ ॥

---

1. 'विशिष्ट पाक:' अथवा 'विविध: पाक: विपाक:'।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मप्रकृति भेद तथा स्थितिबन्ध

नं.	कर्म	भेद	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
१	ज्ञानावरण	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
२	दर्शनावरण	९	३० कोड़ाकोड़ी सागर	,,
३	वेदनीय	२	३० कोड़ाकोड़ी सागर-	१२ मुहूर्त
४	मोहनीय	२८	७० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त
५	आयु	४	३३ सागर	,,
६	नाम	४२ (९३)	२० कोड़ाकोडी सागर	८ मुहूर्त
७	गोत्र	२	२० कोड़ाकोड़ी सागर	८ मुहूर्त
८	अन्तराय	५	३० कोड़ाकोड़ी सागर	अन्तर्मुहूर्त

प्रदेशबन्धका वर्णन

प्रदेशबन्धका स्वरुप–

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्राव गाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः २४

अर्थ- (नामप्रत्ययाः) ज्ञानावरणादि कर्मप्रकृतियोंके कारण (सर्वतः) सब ओरसे अथवा देव नारकादि समस्त भवोंमें (योगविशेषात्) मन वचन कायरुप योगविशेषसे (सूक्ष्मैक क्षेत्रावगाहस्थिताः) सूक्ष्म तथा एकक्षेत्रावगाहरुप स्थित सर्वात्मप्रदेशेषु सम्पूर्ण आत्माके प्रदेशोमें जो (अनन्तानन्तप्रदेशाः) कर्मरुप पुद्गलके अनन्तानन्त प्रदेश हैं उनको प्रदेशबन्ध कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोट- उक्त सूत्रमें प्रदेशबन्धके विषयमें होनेवाले निम्न लिखित ६ प्रश्नोंका समाधान किया गया है।

(१) किसमें कारण है ? (२) किस समय होता है ?
(३) किस कारणसे होता है ? (४) किस स्वभाववाला है ?
(५) किसमें होता है ? और (६) कितनी संख्यावाला है ?

भावार्थ- आत्माके योग्य-विशेषों द्वारा त्रिकालमें बन्धनेवाले, ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियोंके कारणभूत, आत्माके समस्त प्रदेशोमें व्याप्त होकर कर्मरुप परिणमने योग्य सूक्ष्म, आत्माके प्रदेशोंमें क्षीर-नीरकी तरह एक होकर स्थिर रहनेवाले, तथा अनन्तानन्त प्रदेशोंका प्रमाण लिए प्रदेशबन्धरुप पुद्‌गल स्कन्धोंको प्रदेशबन्ध कहते हैं ॥ २४ ॥

पुण्यप्रकृतियां-

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥२५ ॥

अर्थ- स्नाता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियां हैं।

नोट- घातिया कर्मोकी समस्त प्रकृतियां पापरुप है। किन्तु अघातियाँ कर्मोमें पुण्य और पाप दोनोंरुप हैं। उनमेंसे ६८ प्रकृतियां पुण्यरुप है ॥ २५ ॥ [1]

---

1. सादं तिण्णेवाऊ उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।
देहा बन्धणसंघादंगोवगाइं बण्णचओ ॥४१ ॥
समचउरबज्जरिसहं उवधादूणगुरुछक्क सग्गामणं।
तसबारट्ठ सट्ठी, बादालमभेददो सत्था ॥४२ ॥ (कर्मकाण्ड)

अर्थ स्नातावेदनीय, तीन आयु (तिर्यञ्च, मनुष्य, देव) उच्च गोत्र मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगति, देवगत्यानुपूर्व्य, पंचेन्द्रिय जाती, पाँच देह, पांच बन्धन, पांच संघात, तीन अंगोपांग, २० वर्णादिक, समचतुरस्त्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, उपघातको छोड़कर अगुरुलघु आदि ६ (अगुरुलघु, परघात, उच्छ्‌वास, आतप, उद्योत), प्रशस्त विहायोगति और त्रसको आदि लेकर बादर (त्रस, बादर, पर्याप्ति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, प्रमाण और तीर्थंकरत्व।) इस तरह भेद विवक्षासे ६८ पुण्यप्रकृतियां हैं और अभेद विवक्षासे ४२ ही हैं क्योंकि १६ वर्णादिकके और शरीरमें अन्तर्गत हुए ५ बन्धन और ५ संघातके इस तरह २६ भेद घटानेसे ४२ होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाप प्रकृतियां-

अतोऽन्यत्पापम् ॥ २६ ॥

अर्थ- इससे भिन्न अर्थात् असातावेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम और अशुभ गोत्र ये पापप्रकृतियां हैं [1] ॥२६ ॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्याय: ॥

---

1 घादी णीचमसादं, णिरयाउ णिरयतिरियदुग जादी-
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ ॥ ४३ ॥
उवघादमसग्गमणं, थावरदसयं च अप्पसत्था हु ।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुरसीदिदरे ॥ ४४ ॥
(कर्मकांड)

अर्थ- घातिया कर्मोकी (५+९+२८+५=४७) सैंतालीस नीचगौत्र, असातावेदनीय, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यञ्चगति, तिर्यञ्चगत्यानुपूर्वी, आदिकी ४ जातियां, ५ संस्थान, ५ संहनन, वर्णादिक १०, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति तथा स्थावरका आदि लेकर १६ (स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्ति, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय और अयश:कीर्ति) इस प्रकार भेदविवक्षामें १०० प्रकृतियां और अभेद विवक्षामें ८४ प्रकृतियां पापरुप हैं। क्योंकि वर्णादिकके १६ भेद घटानेसे ८४ भेद रहते हैं। इनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यत्वप्रकृति इन दो का बन्ध नहीं होनेसे भेद-विवक्षामें १८ का बन्ध और १०० उदय होता है।

नोट- वर्णादि चार अथवा उनके २० भेद पुण्य और पाप दोनों रुप हैं, इसलिये वे दोनों ही भेदोंमें गिने जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नावली

(१) बन्ध किसे कहते हैं ?

(२) ज्ञानावरणादि कर्म किस द्रव्यके भेद हैं ? यदि पुद्गलके हैं तो देखनेमें क्यों नहीं आते ?

(३) दर्शनमोहनीय कर्मके कितने भेद हैं ? और उनका क्या स्वरूप है ?

(४) विग्रहगतिमें जीवका आकार कैसा होता हैं ? और वैसे होनेमें कारण क्या है ?

(५) पर्याप्ति, अस्थिर, वज्रवृषभनाराचसंहनन, प्रशस्त विहायोगति और लाभान्तराय, इन कर्मोंके लक्षण बताओ ।

(६) सब कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थिति बतलाओ ।

(७) अपने किये हुए कर्मोंका फल कब भोगना पड़ता हैं ?

(८) प्रदेशबन्ध किसे कहते हैं ?

(९) फल दे चुकनेके बाद कर्मोंका क्या होता है ?

(१०) पाप प्रकृतियां कितनी हैं ? गिनाओ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवम अध्याय

संवर और निर्जरा तत्वका वर्णन

संवरका लक्षण-

आस्त्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥

अर्थ- आस्त्रवका रोकना सो संवर हैं। अर्थात् आत्मामें जिन कारणोंसे कर्मोंका आस्त्रव होता था उन कारणोंको दूर कर देनेसे जो कर्मोंका आना बन्द हो जाता है उसको संवर कहते हैं।

संवरके दो भेद हैं- १ द्रव्य संवर (पुद्गलमय कर्मोंके आस्त्रवका रूकना) और २ भावसंवर (कर्मास्त्रवके कारणभूत भावोंका अभाव होना), ॥१ ॥

संवरके कारण--

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ।२ ।

अर्थ- वह संवर तीन गुप्ति, पांच समिति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहोंको जीतना और पांच प्रकारका चारित्र इन छह कारणोंसे होता है।

गुप्ति-संसार-भ्रमणके कारणस्वरूप काय, वचन और मन इन तीन योगोंके विग्रह करनेको गुप्ति कहते हैं।

समिति-जीवोंकी हिंसासे बचनेके लिये यत्नाचारपूर्वक प्रवृत्ति करनेको समिति कहते हैं।

धर्म-जो आत्माको संसारके दुःखोंसे छुड़ाकर अभीष्ट स्थानमें प्राप्त करावे उसे धर्म कहते है।

अनुप्रेक्षा-शरीरादिके स्वरूपका बार बार चिन्तवन करनेको अनुप्रेक्षा कहते है।

परिषहजय-भूख आदिकी वेदना उत्पन्न होनेपर कर्मोंकी निर्जरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेके लिये उसे शांत भावोसे सह लेना उसे परिषहजय कहते हैं।

चारित्र-कर्मोके आस्रवमें कारणभूत बाह्य आभ्यन्तर क्रियाओंके रोकनेको चारित्र कहते हैं ॥ २॥

निर्जरा और संवरका कारण-

तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

अर्थ- तपसे निर्जरा और संवर दोनों होते हैं।

नोट-१- तपका दश प्रकारसे धर्मोमें अन्तर्भाव हो जानेपर भी जो अलगसे ग्रहण किया है उसका प्रयोजन यह है कि यह संवर और निर्जरा दोनोंका कारण है तथा संवरका प्रधान कारण है।

नोट-२- यद्यपि पुण्यकर्मका बन्ध होना भी तपका फल हैं तथापि तपका प्रधान फल कर्मोकी निर्जरा ही है। जब तपमें कुछ न्यूनता होती है तब उससे पुण्यकर्मका बन्ध हो जाता है। इसलिये पुण्यका बन्ध होना तपका गौणफल है। जैसे खेती करनेका प्रधान फल तो धान्य उत्पन्न होना है। और गौण फल पलाल (प्यांल) वगैरहका उत्पन्न होना है ॥ ३॥

गुप्तिका लक्षण व भेद-

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥ ४ ॥

अर्थ- भले प्रकारसे अर्थात् विषयाभिलाषाको छोड़कर, काय, वचन और मनकी स्वच्छन्द प्रकृतिके रोकनेको गुप्ति कहते है। उसके तीन भेद है-१ कायगुप्ति (कायको रोकना) २ वचनगुप्ति (वचनको रोकना) और ३ मनगुप्ति (मनको वशमें करना) ॥ ४॥

समितिके भेद-

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥ ५ ॥

अर्थ- सम्यग् ईर्या[1] (चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना),

1. इस सूत्रमें ऊपरके सूत्रसे यसम्क् पदकी अनुवृत्ति आती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवरतत्वके ५७ भेद

संवर

गुप्ति	समिति	धर्म	अनुप्रेक्षा	परिषहजय		चारित्र
३ +	५ +	१० +	१२ +	२२ +		५ = ५७
१ कायगुप्ति	१ ईर्या	१ उत्तम क्षमा	१ अनित्य	१ क्षुधा	१२ आक्रोश	१ सामायिक
२ बाग्गुप्ति	२ भाषा	२ उत्तम मार्दव	२ अशरण	२ तृषा	१३ वध	२ छेदोपस्थापना
३ मनोगुप्ति	३ एषणा	३ उत्तम आर्जव	३ संसार	३ शीत	१४ याचना	३ परिहारविशुद्धि
	४ आदान निक्षेपण	४ उत्तम शौच	४ एकत्व	४ उष्ण	१५ अलाभ	४ सूक्ष्मसाम्पराय
	५ उत्सर्ग	५ उत्तम सत्य	५ अन्यत्व	५ दंशमशक	१६ रोग	५ यथाख्यात
		६ उत्तम संयम	६ अशुचित्व	६ नाग्न्य	१७ तृणस्पर्श	
		७ उत्तम तप	७ आस्रव	७ अरति	१८ मल	
		८ उत्तम त्याग	८ संवर	८ स्त्री	१९ सत्कार पुरस्कार	
		९ उत्तम आकिंचन्य	९ निर्जरा	९ चर्या	२० प्रज्ञा	
		१० उत्तम ब्रह्मचर्य	१० लोक	१० निषद्या	२१ अज्ञान	
			११ बोधिदुर्लभ	११ शय्या	२२ अदर्शन	
			१२ धर्म			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग् भाषा (हित मित प्रिय वचन बोलना), सम्यग् एषणा (दिनमें एकबार शुद्ध निर्दोष आहार लेना), सम्यग् आदान निक्षेपण (देखभालकर किसी वस्तुको उठाना रखना) और सम्यग् उपसर्ग (जीव रहित स्थानमें मलमूत्र क्षेपण करना) ये पांच समितिके भेद हैं ॥ ५ ॥

दश धर्म-

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयम-तपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥ ६ ॥

अर्थ- उत्तम क्षमा (क्रोधके कारण उपस्थित रहते हुए भी क्रोध नहीं करना), उत्तम मार्दव (उत्तम कुल, विद्या, बल आदिका घमंड नहीं करना), उत्तम आर्जव (मायाचारका त्याग करना), उत्तम शौच (लोभका त्याग कर आत्माको पवित्र बनाना), उत्तम सत्य (रागद्वेष पूर्वक असत्य वचनोंको छोड़कर हित मित प्रिय वचन बोलना,) उत्तम संयम (५ इन्द्रिय और मनको वशमें करना तथा छह कायके जीवोंकी रक्षा करना), उत्तम तप (बाह्याभ्यन्तर १२ प्रकारके तपोंका करना), उत्तम त्याग (कीर्ति तथा प्रत्युपकारकी वांच्छासे रहित होकर चार प्रकारका दान देना), उत्तम आकिञ्चन्य (पर पदार्थोंमें ममत्वरूप परिणामोंका त्याग करना) और उत्तम ब्रह्मचर्य (स्त्री मात्रका त्यागकर आत्माके शुद्ध स्वरूपमें लीन रहना) ये दश धर्म हैं।

बारह अनुप्रेक्षाएँ-

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्त्रवसंवरनिर्जरा लोकबोधिदुर्लभधर्मस्वाख्याततत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः

अर्थ- अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म इन बारहके स्वरुपको बार बार चिन्तवन करना सो अनुप्रेक्षा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनित्यानुप्रेक्षा- संसारके समस्त पदार्थ इन्द्रधनुष बिजली अथवा जलके बबूलेके समान शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाले है, ऐसा विचार करना सो अनित्यानुप्रेक्षा है।

अशरणानुप्रेक्षा- जिस प्रकार निर्जन वनमें भूखे सिंहके द्वारा पकड़े हुए हरिणके बच्चेको कोई शरण नहीं हैं उसी प्रकार इस संसारमें मरते हुए जीवको कोई शरण नहीं हैं। यदि अच्छे भावोंसे धर्मका सेवन किया है तो वही आपत्तियोंसे बचा सकता है। इस प्रकार चिन्तवन करना सो अशरण-अनुप्रेक्षा है।

संसारानुप्रेक्षा- इस चर्तुगति रुप संसारमें भ्रमण करता हुआ जीव पितासे पुत्रसे, पुत्रसे पिता, स्वामीसे दास, दाससे स्वामी हो जाता है। और तो क्या, स्वयं अपना भी पुत्र हो जाता है, इत्यादि संसारके दुःखमय स्वरुपका विचार करना सो संसारानुप्रेक्षा है।

एकत्वानुप्रेक्षा- जन्म, जरा, मरण, रोग आदिके दुःख मैं अकेला ही भोगता हूँ, कुटुम्बी आदि जन साथी नहीं है इत्यादि विचार करना सो एकत्वानुप्रेक्षा है।

अन्यत्वानुप्रेक्षा- शरीरादिसे अपनी आत्माको भिन्न चिन्तवन करना सो अन्यत्वानुप्रेक्षा है।

अशुचित्वानुप्रेक्षा- यह शरीर महा अपवित्र है, खून, मांस आदि से भरा हुआ है, स्नान आदिसे कभी पवित्र नहीं हो सकता। इससे सम्बन्ध रखनेवाले दूसरे पदार्थ भी अपवित्र हो जाते है, इत्यादि शरीरकी अपवित्रता का विचार करना सो अशुचित्वानुप्रेक्षा है।

आस्त्रवानुप्रेक्षा- मिथ्यात्व आदि भावोंसे कर्मोका आस्त्रव होता है, आस्त्रव ही संसारका मूल कारण है, इस प्रकार विचार करना सो आस्त्रवानुप्रेक्षा है।

संवरानुप्रेक्षा- आत्माके नवीन कर्मोका प्रवेश नहीं होने देना सो संवर है। संवरसे ही जीवोंका कल्याण होता है, ऐसा विचार करना सो संवरानुप्रेक्षा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्जरानुप्रेक्षा- सविपाकनिर्जरासे आत्मा का कुछ भला नहीं होता किन्तु अविपाकनिर्जरासे ही आत्माका कल्याण होता है। इत्यादि निर्जराके स्वरुपका चिंतवन करना सो निर्जरानुप्रेक्षा है।

लोकानुप्रेक्षा- अनन्त अलोकाकाशके ठीक बीचमें रहनेवाले चौदह राजु-प्रमाण लोकके आकारादिकका चिन्तवन करना सो लोकानुप्रेक्षा है।

बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा- रत्नत्रयरुप बोधिका प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है, इस प्रकार विचारना सो बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है।

धर्म स्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा- जिनेन्द्र भगवानके द्वारा कहा हुआ अहिंसा लक्षणवाला धर्म ही जीवोंका कल्याण करनेवाला है। इसके प्राप्त न होनेसे ही जीव चतुर्गतिके दुःख सहते है, आदि विचार करना सो धर्म स्वाख्यातत्वानुप्रेक्षा है।

नोट- इन अनुप्रेक्षाओं का चिन्तवन करनेवाला जीव उत्तम क्षमा आदि धर्मोको पालता है और परिषहोंको जीतता है। इसलिए इनका कथन दोनोंके बीचमें किया गया है॥ ७॥

परिषह सहन करनेका उपदेश-

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परिषहाः। ८।

अर्थ- संवरके मार्गसे च्युत न होनेके लिए तथा कर्मोकी निर्जराके हेतु बाईस परिषह सहन करने योग्य हैं॥ ८॥

बाईस परिषह-

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्या-निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्श-मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानाऽदर्शनानि॥ ९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- १ क्षुधा, २ तृष्णा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक, ६.नाग्न्य, ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या, १० निषद्या, ११ शय्या, १२ आक्रोश, १३ वध, १४ याचना, १५ अलाभ, १६ रोग, १७ तृष्ण-स्पर्श, १८ मल, १९ सत्कार पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ अदर्शन, ये बाईस परिषह हैं।

क्षुधा- (भूख) के दुःखको शांत भावसे सह लेना क्षुधा परिषहजय है।

तृष्णा- पिपासारुपी अग्निको धर्मरुपी जलसे शांत करना तृष्णा परिषहजय है।

शीत- शीतकी वेदनाको शांत भावोंसे सहना शीत परिषहजय है।

उष्ण- गर्मीकी वेदनाको शांत भावोंसे सहना उष्ण परिषहजय है।

दंशमशक- डांश, मच्छर, बिच्छू, चिंउन्टी आदिके काटनेसे उत्पन्न हुई वेदनाको शांत भावोंसे सहना सो दंशमशक परिषहजय है।

नाग्न्य- नग्न रहते हुये भी मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं करना सो नाग्न्य परिषहजय है।

अरति-अरतिके कारण उपस्थित होनेपर भी संयममें अरति अर्थात् अप्रीति नहीं करना सो अरति परिषहजय है।

स्त्री- स्त्रियोंके हावभाव, प्रदर्शन आदि उपद्रवोंको शांत भावसे सहना, उन्हे देखकर मोहित नहीं होना सो स्त्री परिषहजय है।

चर्या- गमन करते समय खेदखिन्न नहीं होना सो चर्या परिषहजय है।

निषद्या- ध्यानके लिये नियमित कालपर्यंत स्वीकार किये हुए आसनसे च्युत नहीं होना सो निषद्या परिषहजय है।

शय्या- विषय कठोर कंकरीले आदि स्थानोंमें एक करवटसे निद्रा लेना और अनेक उपसर्ग आनेपर भी शरीरको चलायमान नहीं करना, सो शय्या परिषहजय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आक्रोश- दुष्ट जीवोंके द्वारा कहे हुए कठोर शब्दोंको शांत भावोसे सह लेना सो आक्रोश परिषहजय है।

वध- तलवार आदिके द्वारा शरीरपर प्रहार करनेवालोंसे भी द्वेष नहीं करना सो वध परिषहजय है।

याचना- प्राणोंके वियोगका अवसर होनेपर भी आहारादिकको नहीं मांगना सो याचना परिषहजय है।

अलाभ- भिक्षाके प्राप्त न होनेपर सन्तोष धारण करना सो अलाभ परिषहजय है।

रोग- अनेक रोग होनेपर भी उनकी वेदनाको शांत भावोंसे सह लेना सो रोगपरिषहजय है।

तृणस्पर्श- चलते समय पावोंमें तृण कंटक वगैरहके चुभ जानेसे उत्पन्न हुए दुःखको सहना सो तृणस्पर्श परिषहजय है।

मलपरिषहजय- जलकायिक जीवोंकी हिंसासे बचनेके लिए स्नान न करना तथा अपने मलिन शरीरको देखकर ग्लानि नहीं करना सो मलपरिषहजय है।

सत्कारपुरस्कार- अपनेमें गुणोंकी अधिकता होनेपर भी यदि कोई सत्कारपुरस्कार न करे तो चित्तमें कलुषता न करना सो सत्कार[1] पुरस्कार[2] परिषहजय है।

प्रज्ञा- ज्ञानकी अधिकता होनेपर भी मान नही करना सो प्रज्ञा परिषहजय है।

अज्ञान- ज्ञानादिककी हीनता होनेपर लोगोंके द्वारा किये हुए तिरस्कारको शांत भावोसे सह लेना अज्ञान परिषहजय है।

अदर्शन- बहुत समय तक कठोर तपश्चर्या करने पर भी मुझे

1. प्रसंशाको सत्कार कहते है।

2. कोई कार्य करते समय अगुआ बना लेना सो पुरस्कार है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

अवधिज्ञान तथा चारण आदि ऋद्धियोंकी प्राप्ति नही हुई इसलिए व्रत धारण करना व्यर्थ है, इस प्रकार अश्रद्धानके भाव नही होना सो अदर्शन परिषहजय है।

नोट- उक्त बाईस परिषहोंको संक्लेशरहित भावोंसे जीत लेने पर संवर होता है।

किस गुणस्थान[1] में कितने परिषह होते है ?

सूक्ष्मसांपरायच्छद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश ॥१०॥

अर्थ- सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशवें और छद्मस्थ वीतराग अर्थात् ग्यारहवें उपशांतमोह तथा बारहवें क्षीणमोह नामक गुणस्थानमें १४ परिषह होते है। उनके नाम इस प्रकार है। १ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंशमशक , ६ चर्या, ७ शय्या, ८ वध, ९ अलाभ, १० रोग, ११ तृणस्पर्श, १२ मल, १३ प्रज्ञा और १४ अज्ञान ॥ १० ॥

एकादश जिने ॥ ११ ॥

अर्थ- संयोगकेवली नामक तेरहवें गुणस्थानमें रहनेवाले जिनेन्द्र भगवानके ऊपर लिखे हुए १४ परिषहोंमेंसे अलाभ, प्रज्ञा और अज्ञानको छोड़कर शेष ११ परिषह होते है।

नोट- जिनेन्द्र भगवानके वेदनीय कर्मका उदय होनेसे उसके उदयसे होनेवाले ११ परिषह कहे गये है। यद्यपि मोहनीय कर्मका उदय न होनेसे भगवानको क्षुधादिककी वेदना नहीं होती[2] तथापि इन परिषहोंका

---

1. मोह और योगके निमित्तसे होनेवाली आत्मपरिणामोंकी तरतमताको गुणस्थान कहते है। वे १४ होते है- १ मिथ्यादृष्टि, २ सांसादन, ३ मिश्र, ४ असंयत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तसंयत, ७ अप्रमत्तसंयत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्मसाम्पराय, ११ उपशांतमोह, १२ क्षीणमोह, १३ संयोगकेवली और १४ अयोगकेवली । 2. वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्मकी संगति पाकर ही दुःखका कारण होता है, स्वतन्त्र नहीं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारण वेदनीय कर्म मौजूद है, इसलिए उपचारसे ११ परिषह कहे गये हैं। वास्तवमें उनके एक भी परिषह नहीं होता है ॥ ११ ॥

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

अर्थ- बादर साम्पराय अर्थात् स्थूल कषायवालें छठवेंसे नववें गुणस्थानतक सब परिषह होते हैं। क्योंकि इन गुणस्थानोंमें परिषहोंके कारणभूत सब कर्मोंका उदय है ॥ १२ ॥

कौन परिषह किस कर्मके उदयसे होता है ?

ज्ञानवरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥ १३ ॥

अर्थ- प्रज्ञा[1] और अज्ञान ये दो परिषह ज्ञानावरण कर्मके उदयसे होते हैं ॥ १३ ॥

दर्शनमोहांतराययोरदर्शनालाभौ ॥ १४ ॥

अर्थ- दर्शनमोहनीय और अन्तराय कर्मका उदय होनेपर क्रमसे अदर्शन और अलाभ परिषह होते हैं ॥ १४ ॥

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचना सत्कारपुरस्काराः ॥ १५ ॥

अर्थ-चारित्रमोहनीय कर्मका उदय होनेपर नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कारके ये ७ परिषह होते हैं ॥१५ ॥

वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥

1. ज्ञानावरण कर्मका उदय होने पर जो थोड़ा ज्ञान प्रकट होता है वह अहंकारको पैदा करता है। ज्ञानावरणका नाश हो जानेपर अहंकार नहीं होता। इसलिये प्रज्ञा परिषह भी ज्ञानावरणके कर्मके उदयसे माना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- शेषके ११ परिषह (क्षुधा, तुषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्य्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल) वेदनीय कर्मके उदयसे होते हैं॥ १६ ॥

एकसाथ होनेवाले परिषहोंकी संख्या-

एकादयोभाज्यायुगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः।१७।

अर्थ- (युगपत्)एकसाथ(एकस्मिन्)एक जीवमें(एकादयः) एकको आदि लेकर (आ एकोनविंशतिः) उन्नीस परिषह तक (भाज्याः) विभक्त करना चाहिये।

भावार्थ- एक जीवके एक कालमें अधिकसे अधिक १९ परिषह हो सकते हैं, क्योंकि शांत और उष्ण इन दो परिषहोंमेंसे एक कालमें एक ही होगा तथा शय्या, चर्या और निषद्या इन तीनोंमेंसे भी एक कालमें एक ही होगा। इस प्रकार ३ परिषह कम कर दिये गये है॥ १७ ॥[1]

पांच चारित्र-

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्म-साम्पराय यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥ १८ ॥

अर्थ- सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात ये चारित्रके पांच भेद हैं।

सामायिक चारित्र- भेद रहित सम्पूर्ण पापोंके त्याग करनेको सामायिक कहते हैं।

छेदोपस्थापना- प्रमादके वशसे चारित्रमें कोई दोष लग जानेपर

1. यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि प्रज्ञा और अज्ञान भी एकसाथ नहीं होंगे इसलिये १ परिषह और कम करना चाहिये। पर वह प्रश्न ठीक नहीं है, क्योंकि एक ही कालमें एक ही जीवके श्रूतज्ञानादिकी अपेक्षा प्रज्ञा और अवधिज्ञानादिककी अपेक्षा अज्ञान रह सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चितके द्वारा उसको दूर कर पुनः निर्दोष चारित्रको स्वीकार करना सो छेदोपस्थापना कहते है।

परिहारविशुद्धि- जिस चारित्रमें जीवोंकी हिंसाका त्याग हो जानेसे विशेष शुद्धि प्राप्त होती है उसको परिहारविशुद्धि चारित्र कहते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय- अत्यन्त सूक्ष्म लोभ कषायका उदय होनेपर जो चारित्र होता है उसे सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र कहते हैं।

यथाख्यात- सम्पूर्ण मोहनीय कर्मके क्षय अथवा उपशमसे आत्माके शुद्ध स्वरुपमें स्थिर होनेको यथाख्यात चारित्र कहते हैं[1] ॥ १८ ॥

निर्जरातत्त्वका वर्णन-

बाह्य तप-

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्याग-विविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९।

अर्थ- १-अनशन (संयमकी वृद्धिके लिये चार प्रकारके आहारका त्याग करना), २-अवमौदर्य (रागभाव दूर करनेके लिये भूखसे कम भोजन करना), ३-वृत्तिपरिसंख्यान (भिक्षाको जाते समय घर, गली आदिका नियम करना), ४-रसपरित्याग (इन्द्रियोंका दमन करनेके लिये घृत दुग्ध आदि रसोंका त्याग करना), ५-विविक्तशय्यासन (स्वाध्याय ध्यान आदिकी सिद्धिके लिये एकांत तथा पवित्र स्थानमें सोना बैठना) और ६-कायक्लेश (शरीरसे ममत्व न रखकर आतापन योग आदि धारण करना), ये बाह्य तप हैं। ये तप बाह्य द्रव्योंकी अपेक्षा होते हैं तथा बाह्यमें सबके देखनेमें आते हैं इसलिये बाह्य तप कहे जाते हैं॥ १९ ॥

---

1. सामायिक और छेदोपस्थापना ये दो चारित्र ६ वें ७ वें ८ वें ९ वें गुणस्थानमें होते है। परिहारविशुद्धि ६ वें और ७ वें सूक्ष्मसाम्पराय १० वें और यथाख्यात चारित्र ११ वें, १२ वें, १३ वें और १४ वें गुणस्थानमें होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभ्यन्तर तप-

प्रायश्चितविनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

अर्थ- १-प्रायश्चित (प्रमाद अथवा अज्ञानसे लगे हुये दोषोंकी शुद्धि करना), २-विनय (पूज्य पुरुषोंका आदर करना) ३-वैयावृत्य (शरीर तथा अन्य वस्तुओंसे मुनियोंकी सेवा करना) ४-स्वाध्याय (ज्ञानकी भावनामें आलस्य नहीं करना), ५-व्युत्सर्ग (बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग करना) और ६-ध्यान (चित्तकी चंचलताको रोककर उसे किसी एक पदार्थके चिन्तवनमें लगाना) ये आभ्यन्तर तप हैं। इन तपोंका आत्मासे घनिष्ट सम्बन्ध है इसलिये उन्हें आभ्यन्तर तप कहते हैं ॥ २० ॥

आभ्यन्तर तपोंके उत्तरभेद-

नवचतुर्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् २१

अर्थ- ध्यानसे पहलेके पांच तप क्रमसे ९, ४, १०, ५ और २ भेदवाले हैं ॥ २१ ॥

प्रायश्चितके [1] नव भेद-

आलोचनाप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्ग-तपच्छेदपरिहारोपस्थापना: ॥ २२ ॥

अर्थ- १-आलोचना (प्रमादके वशसे लगे हुये दोषोंको गुरूके पास जाकर निष्कपट रीतिसे कहना), २-प्रतिक्रमण (मेरे द्वारा किये हुए अपराध मिथ्या हों ऐसा कहना), ३-तदुभय (आलोचना और प्रतिक्रमण

---

1. प्राय: = अपराध, चित्त = शुद्धि, अपराधको शुद्धि करना प्रायश्चित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोनोंको करना), ४-विवेक (संयुक्त आहार पानीका तथा अन्य उपकरणोंका नियमित समय तक पृथक् विभाग करना) व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग करना), तप (उपवासादि करना), छेद (एक दिन, एक पक्ष, महीना आदिकी दीक्षाका छेद करना[2]), परिहार (दिन, पक्ष, महीना आदि नियमित समय तक संघसे पृथक् कर देना) और उपस्थापन (संपूर्ण दीक्षाका छेद कर फिरसे नवीन दीक्षा देना) ये ९ प्रायश्चित तपके भेद हैं। यह प्रायश्चित्त संघके आचार्य देते हैं॥ २२॥

विनय तपके ४ भेद-

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥

अर्थ- १ ज्ञान विनय (आदरपूर्वक योग्यकालमें शास्त्र पढ़ना, अभ्यास करना आदि), २ दर्शन (शङ्का कांक्षा आदि दोष रहित सम्यग्दर्शन धारण करना), 3 चारित्र विनय (चारित्रको निर्दोष रीतिसे पालना), और ४ उपचार विनय (आचार्य आदि पूज्य पुरुषोंको देखकर खड़े होना, नमस्कार करना आदि) ये चार विनय तपके भेद हैं॥ २३॥

वैयावृत्य तपके १० भेद-

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्ष्यग्लानगणकुलसंघ-साधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

अर्थ- आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, मनोज्ञ, वैयावृत्य तप के दश भेद हैं।

---

2. बादमें दीक्षित हुए मुनि पहलेके दीक्षित मुनियोंको नमस्कार करते है, पर जितने समयकी दीक्षा छेद दी जाती है उसको उतने समयमें दीक्षित हुए नये मुनियोंको नमस्कारादि करना पड़ता है। जो मुनि पहले उनके शिष्य समझे जाते ये दीक्षा छेद होने पर वह मुनि उनका शिष्य कहलाने लगता है। संघ, साधु और मनोज्ञ इन १० प्रकारके मुनियोंकी सेवा टहल करना सो आचार्य, वैयावृत्य आदि १० प्रकारका वैयावृत्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य- जो मुनि पञ्चाचारका स्वयं आचरण करते और दूसरोंको आचरण कराते है उन्हें आचार्य कहते है।

उपाध्याय- जिनके पास शास्त्रोंका अध्ययन किया जाता हो वे उपाध्याय कहलाते है।

तपस्वी- महान् उपवास करनेवाले साधुओंको तपस्वी कहते है।

शैक्ष्य- शास्त्रके अध्ययनमें तत्पर मुनि शैक्ष्य कहलाते है।

ग्लान- रोगसे पीड़ित मुनि ग्लान कहलाते है।

गण- वृद्ध मुनियोंके अनुसार चलनेवाले मुनियोंके समुदायको गण कहते है।

कुल- दीक्षा देनेवाले आचार्यके शिष्योंको कुल कहते है।

सङ्घ-ऋृषि, यति, मुनि, अनगार इन चार प्रकारके मुनियोंके समूहको सङ्घ कहते है।

मनोज्ञ- लोकमें जिनकी प्रशंसा बढ़ रही हो उन्हें मनोज्ञ कहते है।

स्वाध्याय तपके ५ भेद-

वाचना प्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥ २५ ॥

अर्थ- वाचना (निर्दोष ग्रन्थोको उसके अर्थको तथा दोनोंको भव्य जीवोंको श्रवण कराना), प्रच्छना (संशयको दूर करनेके लिये अथवा कृत निश्चयको दृढ़ करनेके लिये प्रश्न पूछना) अनुप्रेक्षा (जाने हुए पदार्थका बार बार चिन्तवन करना), आम्नाय (निर्दोष उच्चारण करते हुए पाठ करना) और धर्मोपदेश (धर्मका उपदेश करना) ये पाँच स्वाध्याय तपके भेद हैं।

व्युत्सर्ग तपके दो भेद-

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ॥ २६ ॥

अर्थ- बाह्योपधिव्युत्सर्ग (धनधान्यादि बाह्य पदार्थोका त्याग करना), और आभ्योन्तरोपधिव्युत्सर्ग (क्रोध, मान आदि खोटे भावोंका त्याग करना), ये दो व्युत्सर्ग तपके भेद हैं ॥ २६ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान तपका लक्षण-

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात्२७

अर्थ-(उत्तमसंहननस्य)[1] उत्तम संहननवालेका (अन्तर्मुहूत्तात्) अन्तर्मुहूर्तपर्यन्त (एकाग्रचिन्तानिरोधः) एकाग्रतासे चिन्ताका रोकना (ध्यानम्) ध्यान है।

भावार्थ- किसी एक विषयमें चित्तको रोकना सो ध्यान है। वह उत्तम संहननधारी जीवोके ही होता है और एक पदार्थका ध्यान अन्तर्मुहूर्तसे अधिक समय तक नहीं होता है।

ध्यानके भेद-

आर्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥

अर्थ- आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये ध्यानके चार भेद हैं॥ २८ ॥

परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥

अर्थ- इनमेंसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान मोक्षके कारण हैं।

नोट १- धर्मध्यान परम्परासे और शुक्लध्यान साक्षात् मोक्षका कारण है।

नोट २- शुरूके आर्त और रोद्र ये दो ध्यान संसारके कारण हैं।

आर्तध्यान [2] का लक्षण और भेद-

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ॥ ३० ॥

1. वज्रवृषभ नाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन उत्तम संहनन कहलाते हैं। इन संहनन धारी जीवोंके ध्यान होता हैं। यह कथन उत्कृष्ट ध्यानको लक्ष्यमें रखकर किया हगया है। 2. दुःखमें होनेवाले ध्यानको आर्तध्यान कहते है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

अर्थ-अनिष्ट पदार्थका संयोग होनेपर उसे दूर करनेके लिए बार बार विचार करना सो (१) अनिष्ट संयोगज नामक आर्तध्यान है ॥ ३० ॥

विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ- स्त्री पुत्र आदि इष्टजनोंका वियोग होनेपर उनके संयोगके लिए बार बार चिन्ता करना सो (२) इष्ट वियोगज नामक आर्तध्यान हैं ॥ ३१ ॥

वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥

अर्थ- योगजनित पीड़ाका निरन्तर चिन्तन करना सो (३) वेदनाजन्य नामक आर्तध्यान है ॥ ३२ ॥

निदानं च ॥ ३३ ॥

अर्थ- आगामी काल सम्बन्धी विषयोंकी प्राप्तिमें चित्तको तल्लीन करना सो (४) निदानज नामक आर्तध्यान ॥ ३३ ॥

गुणस्थानोंकी अपेक्षा आर्तध्यानके स्वामी-

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम् ॥ ३४ ॥

अर्थ- वह आर्तध्यान अविरत अर्थात् आदिके चार गुणस्थान, देशविरत अर्थात् पंचम गुणस्थान और प्रमत्तसंयत अर्थात् छठवें गुणस्थानमें होता है।

नोट- छठवें गुणस्थानमें निदान नामका आर्तध्यान नहीं होता है ॥ ३४ ॥

रौद्रध्यानके [1] भेद व स्वामी-

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत देशविरतयोः ॥ ३५ ॥

1. क्रूर, परिणामोंके होते हुए जो ध्यान होता है उसे रौद्रध्यान कहते है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- हिंसा, झूठ, चोरी और विषय संरक्षणसे उत्पन्न हुआ ध्यान रौद्रध्यान कहलाता है और वह अविरत तथा देशविरत (आदिके पाँच) गुणस्थानोंमें होता है।

भावार्थ- निमित्तके भेदसे रौद्रध्यान चार प्रकारका होता हैं। १-हिंसानन्दी (हिंसामें आनन्द मानकर उसीके साधन जुटानेमें तल्लीन रहना), २-मृषानंदी (असत्य बोलनेमें आनन्द मानकर उसीका चिन्तवन करना), ३-चौर्यानन्दी (चोरीमें आनन्द मानकर उसीका चिन्तवन करना), और ४-परिग्रहानन्दी (परिग्रहकी रक्षाकी चिन्ता करना) ॥ ३५ ॥

धर्मध्यान [1] का स्वरुप व भेद-

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ।३६ ।

अर्थ- आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचयके लिए चिन्तवन करना सो धर्मध्यान हैं।

भावार्थ- धर्मध्यानके चार भेद हैं-१ आज्ञाविचय (आगमकी प्रमाणतासे अर्थका विचार करना), २ अपायविचय (संसारी जीवोंके दुःखका तथा उससे छुटनेके उपायका चिन्तवन करना), ३ विपाकविचय (कर्मके फलका-उदयका विचार करना) और ४ संस्थानविचय (लोकके आकारका विचार करना।)

स्वामी- यह धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर सप्तम गुणस्थान तक श्रेणी चढ़नेके पहले पहले तक होता हैं ॥ ३६ ॥

शुक्लाध्यान [2] के स्वामी-

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः [3] ॥ ३७ ॥

---

1. धर्मविशिष्टध्यानको धर्मध्यान कहते हैं। 2. शुद्धध्यानको शुक्लध्यान कहते हैं। 3. यह कथन उत्कृष्टताकी अपेक्षा है। साधारण रूपसे यह ध्यान अष्ट प्रवचन मातृका तक ज्ञानवालोंके भी हो सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ- प्रारम्भके पृथक्त्ववितर्क और एकत्ववितर्क नामक दो शुक्लध्यान पूर्वज्ञानधारी श्रुतकेवलीके ही होते हैं।

नोट- चकारसे श्रुतकेवलीके धर्मध्यान भी होता है॥ ३७॥

परे केवलिनः ॥ ३८ ॥

अर्थ- अन्तके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये दो शुक्लध्यान संयोगकेवली और अयोगकेवलीके ही होते हैं।[1] ॥ ३८ ॥

शुक्लाध्यानके चार भेदोंके नाम-

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरत-क्रियानिवर्तीनि ॥ ३९ ॥

अर्थ- पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिवर्ति ये शुक्लध्यानके चार भेद हैं॥ ३९ ॥

भावार्थ- जिसमें वितर्क और विचार दोनों हों उसे पृथक्त्ववितर्क विचार नामक शुक्लध्यान कहते हैं। और जो केवल वितर्कसे सहित हो उसे एकत्ववितर्क नामक शुक्लध्यान कहते हैं।

सूक्ष्मकाययोगके आलम्बनसे जो ध्यान होता है उसे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान कहते हैं। जिसमें आत्मप्रदेशोंमें परिस्पन्द पैदा करनेवाली श्वासोच्छ्वास आदि समस्त क्रियाए निवृत हो जाती हैं-रुक जाती हैं उसे व्युपरतक्रियानिवर्ति नामक शुक्लध्यान कहते हैं॥ ३९ ॥

1. पहला भेद सातिशय अप्रमत्त नामक सातवें गुणस्थानसे लेकर ग्यारवें गुणस्थान तक रहता है। इनसे मोहनीय कर्मका उपशम अथवा क्षय होता है। दूसरा भेद बारहवें गुणस्थानमें होता है। इससे शेष घातिया कर्मोका क्षय होकर केवलज्ञान प्राप्त होता है। तीसरा भेद तेरहवें गुणस्थानके अन्त समयमें होता है और चौथा भेद चौदहवें गुणस्थानमें होता है इससे उपान्त्य तथा अन्त समयमें क्रमसे ७२ और १३ प्रकृतियोंका क्षय होकर मोक्ष प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लध्यानके आलम्बन-

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम् ॥ ४० ॥

अर्थ- उक्त चार भेद क्रमसे तीन योग, एकयोग, काययोग और योगरहित जीवोंके होते हैं। अर्थात् पहला पृथक्त्ववितर्कध्यान काय, वचन, मन इन तीनों योगके धारकके होता है। दूसरा एकत्ववितर्क ध्यान तीन योगोंमेंसे किसी एक योगके धारकके होता है। तीसरा सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपातिध्यात्र सिर्फ काययोगके धारकके होता है और चौथा व्युपरतक्रियानिवर्ति योगरहित जीवोंके होता है ॥ ४० ॥

आधिके दो ध्यानोंकी विशेषता-

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥ ४१ ॥

अर्थ- एक-परिपूर्ण श्रुतज्ञानीके आश्रित रहनेवाले प्रारम्भके दो ध्यान वितर्क और वीचारकर सहित है॥ ४१ ॥

अवीचारं द्वितीयम् ॥ ४२ ॥

अर्थ- किन्तु दूसरा शुक्लध्यान वीचारसे रहित है।

वितर्क का लक्षण-

वितर्कः श्रुतम् ॥ ४३ ॥

अर्थ- श्रुतज्ञानको वितर्क कहते हैं।

वीचारका लक्षण-

वीचारोऽर्थव्यञ्जनयोगसंक्रान्तिः ॥ ४४ ॥

अर्थ- अर्थ, व्यञ्जन और योगको पलटनाको वीचार कहते हैं।

अर्थसंक्रान्ति- अर्थ अर्थात् ध्यान करने योग्य पदार्थको छोड़कर उसकी पर्यायको ध्यावे और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको ध्यावे सो अर्थसंक्रान्ति है।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

तपके भेद

- ब्राह्म तप
  - १ अनशन
  - २ अवमोदर्य
  - ३ वृत्तिपरिसंख्यान
  - ४ रस परित्याग
  - ५ विविक्त शय्यासन
  - ६ कायक्लेश
- अन्तरङ्ग तप
  - प्रायश्चित्त ९
    - १ आलोचना
    - २ प्रतिक्रमण
    - ३ तदुभय
    - ४ विवेक
    - ५ व्युत्सर्ग
    - ६ तप
    - ७ छेद
    - ८ परिहार
    - ९ उपस्थापन
  - विनय ४
    - १ ज्ञानविनय
    - २ दर्शनविनय
    - ३ चारित्र विनय
    - ४ उपचार विनय
  - वैयावृत्य १०
    - १ आचार्य वैयावृत्य
    - २ उपाध्याय वैयावृत्य
    - ३ तपस्वी वैयावृत्य
    - ४ शैक्ष्य वैयावृत्य
    - ५ ग्लान वैयावृत्य
    - ६ गण वैयावृत्य
    - ७ कुल वैयावृत्य
    - ८ संघ वैयावृत्य
    - ९ साधु वैयावृत्य
    - १० मनोज्ञ वैयावृत्य
  - स्वाध्याय ५
    - १ याचना
    - २ पृच्छना
    - ३ अनुप्रेक्षा
    - ४ आम्नाय
    - ५ धर्मोपदेश
  - व्युत्सर्ग २
    - १ बाह्योपधि त्याग
    - २ आभ्योन्तरोपधित्याग
  - ध्यान
    - आर्तध्यान
      - १ अनिष्टसंयोगज
      - २ इष्टवियोगज
      - ३ वेदनाजन्य
      - ४ निदान
    - रौद्रध्यान
      - १ हिंसानन्दी
      - २ मृषानन्दी
      - ३ चौर्यानन्दी
      - ४ परिग्रहानन्दी
    - धर्मध्यान
      - १ आज्ञाविचय
      - २ अपायविचय
      - ३ विपाकविचय
      - ४ संस्थानविचय
    - शुक्लध्यान
      - १ पृथकत्ववितर्क
      - २ एकत्ववितर्क
      - ३ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति
      - ४ व्युपरतक्रियानिवर्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यञ्जनसंक्रान्ति- श्रुतके एक वचनको छोड़कर अन्यका अवलम्बन करना और उसे छोड़कर किसी अन्यका अवलम्बन करना सो व्यञ्जन-संक्रान्ति है।

योगसंक्रान्ति- काययोगको छोड़कर मनोयोग या वचनयोगको ग्रहण करना और उन्हे छोड़कर किसी अन्य योगको ग्रहण करना सो योगसंक्रान्ति है ॥ ४४॥

पात्रकी अपेक्षा निर्जरामें न्यूनाधिकताका वर्णन-

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोह-क्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥

अर्थ- १ सम्यग्दृष्टि, २ पञ्चमगुणस्थानवर्ती श्रावक, ३ विरति (मुनि), ४ अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाला[1], ५ दर्शनमोहका क्षय करनेवाला, ६ चारित्रमोहका उपशम करनेवाला, ७ उपशांतमोहवाला, ८ क्षपकश्रेणि चढ़ता हुआ, ९ क्षीणमोह (बारहवें गुणस्थानवाला) और १० जिनेन्द्र भगवान् , इन सबके परिणामोंकी विशुद्धताकी अधिकतासे आयुकर्मको छोड़कर प्रतिसमय क्रमसे असंख्यातगुणी निर्जरा होती है ॥ ४५ ॥

निर्ग्रन्थ-साधुओंके भेद-

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातकानिर्ग्रन्थाः ।४६ ।

अर्थ- पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पांच प्रकारके निर्ग्रन्थ साधु है।

---

1. अनन्तानुबन्धीके परिमाणुओंका अप्रत्याख्यानावरणादि रूप बदलनेवाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाक- जो उत्तरगुणोंकी भावनासे रहित हों तथा किसीक्षेत्र व कालमें मूलगुणोंमें भी दोष लगावें उन्हे पुलाक कहते है।

वकुश- जो मूलगुणोंका निर्दोष पालन करते हों परन्तु अपने शरीर व उपकरणादिका शोभा बढ़ानेकी कुछ इच्छा रखते हों उन्हें वकुश कहते हैं।

कुशील- मुनि दो प्रकारके होते हैं- एक प्रतिसेवनाकुशील और दूसरे कषायकुशील।

प्रतिसेवनाकुशील- जिनके उपकरण तथा शरीरादिसे विरक्तता न हो और मूलगुण तथा उत्तरगुणकी परिपूर्णता है, परन्तु उत्तरगुणोंमें कुछ विराधना दोष हों, उन्हें प्रतिसेवनाकुशील कहते हैं।

कषायकुशील- जिन्होंने संज्वलनके सिवाय अन्य कषायोंको जीत लिया हो उन्हें कषायकुशील कहते हैं।

निर्ग्रन्थ- जिनका मोहकर्म क्षीण हो गया हो ऐसे बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

स्नातक- समस्त घातिया कर्मोंका नाश करनेवाले केवली भगवान् स्नातक कहलाते हैं॥ ४६॥

पुलाकादि मुनियोंमें विशेषता-

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्योपपादस्थान-विकल्पतः साध्याः ॥ ४७॥

अर्थ- उक्त मुनि संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान इन आठ अनुयोगोंके द्वारा भेदरूपसे साध्य हैं। अर्थात् इन आठ अनुयोगोंके पुलाक आदि मुनियोंके विशष भद होते हैं॥ ४७॥

इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नावली

(१) संवरके कारण क्या हैं ?

(२) गुप्ति और समितिमें क्या अन्तर हैं ?

(३) परिषह किसलिए सहन करना चाहिये ? एकसाथ कितने परिषह हो सकते हैं ?

(४) प्रायश्चित तपके भेद लक्षण सहित गिनाओ ?

(५) क्या संवरके बिना भी निर्जरा हो सकती हैं ?

(६) शुक्लध्यानके भेदोंका वर्णन कर उनके लक्षण बताओ और कौन भेद कब होता है ? उसका क्या कार्य है ? यह भी बताओ।

(७) पुलाक मुनि पूज्य हैं या अपूज्य ?

(८) रौद्रध्यानी जीव मरकर कहां जाता हैं ?

(९) आजकल ध्यान हो सकता है या नहीं ?

(१०) ध्यानकी सिद्धिके उपयोगी कुछ नियम बताओ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशम अध्याय

मोक्षतत्वका वर्णन

केवलज्ञानकी उत्पत्तिका कारण [1]

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्चकेवलम्।१।

अर्थ- मोहनीय कर्मका क्षय होनेसे अन्तर्मूहूर्तके लिये क्षीणकषाय नामक बारहवां गुणस्थान पाकर एकसाथ ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका क्षय होनेसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

भावार्थ- चार घातिया कर्मोका सर्वथा क्षय हो जाने पर केवलज्ञान होता है।

नोट- घातिया कर्मोमें सबसे पहले मोहनीय कर्मका क्षय होता है, इसलिये सूत्रमें गौरव होनेपर भी उसका पृथक् निर्देश किया है॥ १॥

मोक्षके कारण और लक्षण-

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २॥

अर्थ- बन्धके कारणोंका अभाव तथा निर्जराके द्वारा ज्ञानावरणादि समस्त कर्मप्रकृतियोंका अत्यंत अभाव होना मोक्ष है।

भावार्थ- आत्मासे समस्त कर्मोका सम्बन्ध छूट जाना मोक्ष है और वह संवर तथा निर्जराके द्वारा प्राप्त होता है॥ २॥

मोक्षमें कर्मोके सिवाय और किसका अभाव होता है ?-

औपशमिकादिभव्यत्वानां च॥ ३॥

अर्थ- मुक्त जीवमें औपशमिक आदि भावोंका तथा पारिणामिक

1. मोक्ष केवलज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये मोक्षके पहले केवलज्ञानकी उत्पत्तिका वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावोंमेंसे [1] भव्यत्व भावका भी अभाव हो जाता है।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ।४

अर्थ- केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व इन भावोंको छोड़कर मोक्षमें अन्य भावोंका अभाव हो जाता है।

भावार्थ- मुक्त अवस्थामें जीवत्व नामक पारिणामिक भाव और कर्मोके क्षयसे प्रकट होनेवाले आत्मिक भाव रहते हैं, शेषका अभाव हो जाता है।

नोट- जिन गुणोंका अनन्तज्ञानादिके साथ सहभाव सम्बन्ध है ऐसे अनन्तवीर्य, अनन्तसुख आदि गुण भी पाये जाते हैं ॥ ४॥

कर्मोका क्षय होनेके बाद-

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥ ५ ॥

अर्थ- समस्त कर्मोका क्षय होनेके बाद मुक्त जीव लोकके अन्त भाग पर्यंत ऊपरको जाता है॥ ५ ॥

मुक्त जीवके उर्ध्वगमनमें कारण-

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागति-परिणामाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ- पूर्वप्रयोग-(पूर्वसंस्कार) से, सङ्गरहित होनेसे, कर्मबन्धनके नष्ट होनेसे और तथा गतिपरिणाम अर्थात् ऊर्ध्वगमनका स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥ ६ ॥

---

1. जिसके सम्यग्दर्शनादि प्राप्त होनेकी योग्यता हो उसे भव्य कहते है। जब सम्यग्दर्शनादि गुण पूर्ण रूपसे प्रकट हो चुकते है तब आत्मामें भव्यत्वका व्यवहार मिट जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्त चारों कारणोंके क्रमसे चार दृष्टांत-

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्ड-बीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥

अर्थ- (१) मुक्तजीव कुम्भकारके द्वारा घुमाये हुए चाककी तरह पूर्वप्रयोगसे ऊर्ध्वगमन करता हैं। अर्थात् जिस प्रकार कुम्भकार चाकको घुमाकर छोड़ देता है तब भी चक्र पहलेके भरे हुए वेगके वशसे घूमता रहता है, उसी प्रकार जीव भी संसार अवस्थामें मोक्षप्राप्तिके लिए बराबर अभ्यास करता था, मुक्त होनेपर यद्यपि उसका वह अभ्यास छूट जाता है, तथापि वह पहलेके अभ्याससे ऊपरको गमन करता है। (२) मुक्त जीव, दूर हो गया है लेप जिसको ऐसे तूम्बेकी तरह ऊपरको जाता है अर्थात् तूम्बेपर जबतक मिट्टीका लेप रहता है तबतक वह वजनदार होनेसे पानीमें डूबा रहता है, पर ज्योंही उसकी मिट्टी गलकर दूर हो जाती है त्योंही वह पानीके ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार यह जीव जबतक कर्मलेपसे सहित होता है तबतक संसार समुद्रमें डूबा रहता है पर ज्योंही इसका कर्मलेप दूर होता है त्योंही वह ऊपर उठ कर लोकके ऊपर पहँच जाता है। (३) मुक्त जीव कर्मबन्धसे मुक्त होनेके कारण एरण्डके बीजके समान ऊपरको जाता है। अर्थात् एरण्ड वृक्षका सुखा बीज जब चटकता है तब उसकी मिंगी जिस प्रकार ऊपरको जाती है उसी प्रकार यह जीव कर्मोके बन्धन दूर होनेपर ऊपरको जाता है। और (४) मुक्त जीव स्वभावसे ही अग्निकी शिखाकी तरह ऊर्ध्वगमन करता है अर्थात् जिस प्रकार हवाके अभावमें अग्नि (दीपक आदि) की शिखा ऊपरको जाती है उसी प्रकार कर्मोके बिना यह जीव भी ऊपरको जाता है॥ ७॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोकाग्रके आगे नहीं जानेमें कारण-

धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥

अर्थ- धर्मद्रव्यका अभाव होनेसे मुक्त जीव लोकग्रह भागके आगे अर्थात् अलोकाकाशमें नहीं जाते। क्योंकि जीव और पुद्‌गलोंका गमन धर्मद्रव्यकी सहायतासे ही होता है और अलोकाकाशमें धर्मद्रव्यका अभाव है[1] *॥८॥*

मुक्त जीवोंमें भेद होनेके कारण-

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधित ज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।९।

अर्थ- क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्धबोधित, ज्ञान, अवगाहन, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व इन बारह अनुयोगोंसे सिद्धोंमें भी भेद साधने योग्य हैं।

भावार्थ- क्षेत्र-कोई भरतक्षेत्रसे, कोई ऐरावतक्षेत्रसे और कोई विदेहक्षेत्रसे सिद्ध हुए है।[2] इस प्रकार क्षेत्रकी अपेक्षा सिद्धोंमें भेद होता है।

काल[3]-कोई उत्सर्पिणी कालमें सिद्ध हुए हैं और कोई अवसर्पिणीकालमें।

गति-कोई सिद्ध गतिसे और कोई मनुष्य गतिसे सिद्ध हुए हैं।

1. लोकके अन्तमें ४५ लाख योजन विस्तारवाली सिद्धशिला है, मुक्त जीव उसीके उपर तनुवातवलयमें ठहर जाते हैं। मोक्षमें मुक्त जीवोंके शिर एक बराबर स्थान पर रहते हैं। मुक्त जीवोंका सिद्धशिलासे सम्बन्ध नहीं रहता। 2. संहरणकी अपेक्षा अढ़ाई द्वीप मात्रसे मुक्त होते है। 3. अवसर्पिणीके सुषमादुषमा नामक तीसरे कालके अंतिम भागसे लेकर दूषमासुषमा नामक चौथे कालतक उत्पन्न हुए जीव ही मुक्त होते है। चौथे कालका उत्पन्न हुआ जीव पंचमकालमें मुक्त हो सकता है पर पंचमका पेदा हुआ पंचममें मुक्त नहीं हो सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिंग-वास्तवमें [4] अलिंगसे ही सिद्ध होते हैं अथवा द्रव्यपुलिंगसे ही सिद्ध होते हैं। भावलिंगकी अपेक्षा तीनों लिंगोंसे मुक्त हो सकते हैं।

तीर्थ- कोई तीर्थंकर होकर सिद्ध होते हैं, कोई बिना तीर्थंकर हुए सिद्ध होते हैं। कोई तीर्थंकरके कालमें सिद्ध होते हैं और कोई तीर्थंकरके मोक्ष चले जानेके बाद उनके तीर्थ (आम्नाय) में सिद्ध होते हैं।

चारित्र- चारित्रकी अपेक्षा कोई एकसे अथवा कोई भूतपूर्व [5] नयकी अपेक्षा दो तीन चारित्रसे सिद्ध हुए हैं।

प्रत्येकबुद्धबोधित- कोई स्वयं संसारमें विरत होकर मोक्षको प्राप्त हुए हैं और कोई किसीके उपदेशसे।

ज्ञान- कोई एक ही ज्ञानसे और कोई भूतपूर्व नयकी अपेक्षा दो तीन चार ज्ञानसे सिद्ध हुए हैं।

अवगाहना- कोई उत्कृष्ट अवगाहना-पांचसौ पचीस धनुषसे सिद्ध हुए है, कोई मध्यम अवगाहनासे और कोई जघन्य अवगाहना-कुछ कम साढ़े तीन हाथसे सिद्ध हुए हैं।

अन्तर- एक सिद्ध से दूसरे सिद्ध होनेका अन्तर जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे आठ समयका है तथा विरहकाल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे छः माहका होता है।

संख्या- जघन्यसे एक समयमें एक ही जीव सिद्ध होता है। और उत्कृष्टतासे १०८ जीव सिद्ध हो सकते हैं।

अल्पबहुत्व- समुद्र आदि जल-क्षेत्रोंसे थोड़े सिद्ध होते हैं और विदेहादि क्षेत्रोंसे अधिक सिद्ध होते हैं। इस प्रकार सिद्ध जीवोंमें बाह्य निमित्तकी अपेक्षा भेदकी कल्पना की गई है। वास्तवमें आत्मीय गुणोंकी अपेक्षा कुछ भी भेद नहीं रहता॥ ९॥

॥ इति श्रीमदुमास्वामिविरचिते मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः॥

4. भाववेदका उदय नवम गुणस्थान तक रहता है इसलिए मोक्ष अवेद दशामें ही होता है। 5. भूतकालकी बातको वर्तमानमें कहनेवाला।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दोधक वृत्त-

अक्षरमात्रपदस्वरहीनंव्यञ्जनसन्धिविवर्जितरेफम्। साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं कोन विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥ १ ॥

अर्थ- इस शास्त्रमें यदि कहीं अक्षर मात्रा पद या स्वर रहित हो तथा व्यंजन सन्धि व रेफसे रहित हो तो सज्जन पुरुष मुझे क्षमा करें। क्योंकि शास्त्ररूपी समुद्रमें कौन पुरुष मोहको प्राप्त नहीं होता अर्थात् भूल नहीं करता ॥ १ ॥

अनुष्टुप्-

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थ पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः ॥२ ॥

अर्थ- दश अध्यायोंमें विभक्त इस तत्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) के पाठ करने तथा परिच्छेदन अर्थात् मननसे श्रेष्ठ मुनियोंने एक उपवासका फल कहा है।

भावार्थ- जो पुरुष भावपूर्वक पूर्ण मोक्षशास्त्रका पाठ करता है और उसका चिन्तन करता है उसे एक उपवासका फल लगता है [1] ॥ २॥

1. ये दोनों श्लोक मूल ग्रंथकर्ताके बनाये हुए नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नावली-

(१) घातिया कर्मोंमें सबसे पहले किसका क्षय होता है ?

(२) क्या केवलज्ञानके बीना भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है ?

(३) मोक्षका क्या लक्षण है ?

(४) "कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः" इस वाक्यमें विप्र शब्दका क्या अर्थ होता है ?

(५) मोक्षमें जीवोका आकार कैसा होता है ?

(६) जबकि भव्यत्वभाव पारिणामिक भाव है तब सिद्ध अवस्थामें उसका अभाव क्यों हो जाता हैं? यदि अभव्यत्वका अभाव होता है तो जीवत्वका भी अभाव क्यों नहीं होता ?

(७) मुक्त जीवोमें भेद किस प्रकार होता है ?

(८) जीवका ऊर्ध्वगमन क्यों होता है ? उदाहरण सहित बतलाओ।

(९) मुक्त जीव सिद्ध लोकसे आगे क्यों नहीं जाते ?

(१०) मुक्त जीवोंको मध्य लोकसे मोक्षगमन तक पहुँचनेमें कितना समय लगता है ?

(११) "जो जीव मोक्षमें रहते है उन्हें मुक्त कहते हैं" यदि मुक्त जीवोंका यह लक्षण माना जावे तो क्या हानि होगी ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-

शंका-समाधान

(ले:-पं. फूलचन्द्रजी जैन सिद्धांतशास्त्री, सम्पादक, जयधवला)

पाठशालाओंमें तत्त्वार्थसूत्र पढ़ाया जाता है। इसमें उपयोगी सब विषयोंका संकलन है। हमारे मित्र पंडित पन्नालालजी जैन साहित्याचार्यका आग्रह रहा कि इसके परिशिष्टमें कुछ ऐसे प्रश्नोत्तरोंका संकलन कर दिया जाये जिससे अध्यापक व स्वाध्याय-प्रेमी सबको लाभ हो। यह सोचकर हम दोनोंने कुछ प्रश्न तैयार किये थे उन्हींके अनुसार यह परिशिष्ट तैयार किया है। इसमें प्रत्येक अध्यायके क्रमसे प्रश्न व उनके उत्तर संकलित किए गये है।

पहला अध्याय-

[१] शंका- किस योग्यताके होनेपर जीवोंको सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है ?

[१] *समाधान-सम्यग्दर्शन तीन है-औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। इनमेंसे पहले औपशमिक सम्यग्दर्शनकी अपेक्षा विचार करते हैं। ऐसा नियम है कि संसारमें रहनेका काल अर्ध पुद्गल परिवर्तन शेष रह जानेपर औपशमिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। यह एक काललब्धि है। इस काललब्धिके प्राप्त हो जानेपर भी उसी जीवके औपशमिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है जो संज्ञी, पर्याप्त साकार उपयोगसे युक्त और निर्मल परिणामवाला होता है, अन्यके नहीं। लेश्याओंके विषयमें यह नियम है कि मनुष्य और तिर्यंचोंके वर्तमान शुभ लेश्याऐं होनी चाहिए। किन्तु देव और नारकियोंके जहां जो लेश्या बतलाई है उसीके रहते हुए औपशमिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती है। इसी प्रकार गोत्रके विषयमें भी जानना चाहिए।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् जिस गतिमें जो उच्च या नीच गोत्र सम्भव हैं। उसके रहते हुए औपशमिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो जाती हैं। यह भवनिमित्तक दूसरी काललब्धि है। तीसरी काललब्धिका सम्बन्ध कर्मोंकी स्थितिसे है। ऐसा नियम है कि जिसके कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक होती है उसके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं। किन्तु जिसके बन्धको प्राप्त होनेवाले कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण प्राप्त होती है और सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति संख्यात हजार सागर कम अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर शेष रह जाती है वही प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनको प्राप्त होता है। चौथी काललब्धिका सम्बन्ध कर्मोंके अनुभागसे है। जिसके अप्रशस्त कर्मोंका अनुभाग द्विस्थानगत है और प्रशस्त कर्मोंका अनुभाग चतुःस्थानगत है और उसीके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार प्रकृति या प्रदेशगत और भी विशेषताएें है जिन्हें लब्धिसार आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिए । उनमेंसे एक दो बातोंका यहाँ उल्लेख किये देते हैं । जिसके आहारक शरीर और आहारक आंगोपांगकी सत्ता होती है उसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता।

बात यह है कि तेरह उद्वेलना प्रकृतियोंमें इन दोनोंका भी समावेश है। यह मानी हुई बात है कि वेदक कालके भीतर प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु इन दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलनामें यदि पल्यका असंख्यातवां भाव काल लगता है तो भी वह वेदकालसे कम है। अतः सिद्ध हुआ है कि इन दोनों प्रकृतियोंकी सत्ता रहते हुए प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती। वेदक कालके विषयमें यह बतलाया है कि सम्यकत्वसे च्युत हुआ मिथ्यादृष्टि जीव, एकेन्द्रिय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहता है, वह संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायको प्राप्त करके प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी स्थिति एक सागरसे कम शेष रह जाय। यदि इस जीवके एक सागरसे अधिक स्थिति शेष है तो उसे नियमसे वेदक सम्यग्दर्शन ही प्राप्त हो सकता है। ऐसे जीवके तबतक वेदकाल माना गया है और यदि सम्यक्त्वसे च्युत हुआ जीव विकलत्रय पर्यायमें परिभ्रमण करता रहता हैं, तो उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सागर पृथक्त्वकी स्थितिके शेष रहने तक वेदक काल होता है। यह जीव इन दोनों प्रकृतियोंकी इतनी स्थितिके शेष रहने तक यदि सम्यग्दर्शनको प्राप्त करे तो नियमसे वेदक सम्यक्त्वकी या सम्यग्मिथ्यात्व सहित दोनोंकी उद्वेलना हो जाने पर सर्वप्रथम जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त करता हैं। इतने विवेचनसे निम्न बातें फलित हुई।

(१) अभव्यके सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं। भव्यके भी अर्धपुद्गल परिवर्तन कालके शेष रहनेपर ही सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है।

(२) औपशमिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेवाला जीव संज्ञी पर्याप्त, साकार उपयोगवाला, विशुद्ध लेश्यावाला और पर्याप्त योगवाला आदि होता है।

(३) वन्धनेवाले कर्मोंकी स्थिति अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे सत्तामें स्थित कर्मोंकी स्थिति संख्यात हजार सागर अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरसे अधिक नहीं होती। अनुभाग भी अशुभ कर्मोंका द्विस्थानगत और शुभ कर्मोंका चतुःस्थानगत होता है।

(४) अनादि मिथ्यादृष्टि जीव सर्व प्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त करता है। सादि मिथ्यादृष्टियोंमें जिसके मोहनीयको २६ या २७ प्रकृतियोंकी सत्ता है वह सर्वप्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है। किन्तु जिसके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता है वह वेदक कालके भीतर सर्वप्रथम वेदक सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है। हां, वेदक कालके व्यतीत हो जाने पर वह भी सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ही प्राप्त होता है।

(५) जिसके आहारक द्विककी सत्ता है उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं।

(६) कषायपाहुड़में एक नियम यह भी बतलाया है कि जिस अनादि मिथ्यादृष्टिको सर्वप्रथम प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त होता है वह उक्त सम्यक्त्वसे च्युत होकर नियमसे मिथ्यात्वमें ही जाता है, अन्यत्र नहीं। अन्यत्र जाना इसका इसके पश्चात् ही सम्भव है।

औपशमिक सम्यग्दर्शनके दो भेद हैं- प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम। इनमेंसे प्रथमोपशमके प्राप्त करनेमें जिस योग्यताकी आवश्यक्ता है इसका उल्लेख ऊपर किया ही है। अब रहा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व, सो इसकी प्राप्ति वेदक सम्यग्दृष्टिके सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानमें ही होती है यह जीव अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना करके दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंकी उपशमना करता है तब यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहलाता है। आगमोंमें एक ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टिके भी अनन्तानुबंधी चारकी विसंयोजना हो सकती है। यह क्रिया चारों गतिका जीव करता है। किंतु यह सम्यग्दर्शन प्रथमोपशम सम्यक्त्वका ही अवान्तर भेदतुल्य है। उपर जिस द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका उल्लेख किया है वह इससे भिन्न है।

लब्धिसारमें प्रथमोपमश सम्यक्त्व प्राप्त होनेके पहले पांच लब्धियां बतलाई है उनका स्वरुप निम्न प्रकार है-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) क्षयोपशमलब्धि-अशुभ कर्मोंकी अनुभाग शक्तिके प्रति समय अनन्तगुणी हीन न होकर उदीरणाको प्राप्त होना क्षयोपशमलब्धि है। इससे उत्तरोत्तर परिणाम निर्मल होते जाते है।

(२) जिन परिणामोंसे साता आदि प्रशस्त प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है उसे विशुद्धलब्धि कहते है। प्रथम लब्धि इस लब्धिकी प्राप्तिमें कारण है।

(३) छह द्रव्य और नौ पदार्थोके ज्ञाता गुरुके मिलने पर उनके द्वारा उपदेशे गये पदार्थके धारण करनेको देशनालब्धि कहते हैं।

(४) आयुको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी स्थितिको अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना और अशुभ कर्मोमेंसे घातिया कर्मोके अनुभागको लता और दारु इन दो स्थानगत तथा अघातिया कर्मोके अनुभागको नीम और कांजी इन दो स्थानगत कर देना प्रायोग्यलब्धि है।

पहले हमने जितनी विशेषताएं बतलाई हैं उन सबका इन चार लब्धियोंमे अन्तर्भाव हो जाता है। पांचवी करणलब्धि है। करण का अर्थ परिणाम है। अर्थात् वे परिणाम जो नियमसे प्रथमोपशम सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिमें कारण है उनकी प्राप्तिको करणलब्धि कहते है। यह लब्धि सम्यग्दर्शनको प्राप्त करनेवाले जीवके ही होती है। इसके तीन भेद है जिनका विस्तृत खुलासा लब्धिसारमें किया है। उपर्युक्त लब्धियोंके साथ इस लब्धिके होनेपर नियमसे सम्यग्दर्शन होता है। संक्षेपके कारण यहां हमने प्रत्येक लब्धिगत विशेषताका वर्णन नहीं किया है।

(२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका दूसरा नाम वेदक सम्यक्त्व है इसे मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दष्टि दोनो उत्पन्न कर सकते है। मिथ्यादृष्टियोमें जो वेदककालके भीतर स्थित है, संज्ञी प्रर्याप्त और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशुद्ध परिणामवाला है उसीके वेदक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। कर्मोंकी स्थिति इसके अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर होनी चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं हैं। अधिक भी हो सकती है जो प्रत्येक कर्मकी अपने अपने उत्कृष्ट स्थिति सत्तासे अन्तर्मूहूर्त कम तक हो सकती है। हां, सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके समय इसके बन्ध अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरका ही होगा। सम्यग्दृष्टिमें प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि या द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीवके सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय हो जानेपर वेदक सम्यक्त्व होता है। जैन शतक आदिमें क्षायोपशमिकके तीन और वेदकके चार इस प्रकार सात भेद लिखे हैं इनमेंसे वेदकके चार भेद सही हैं। तथा क्षायोपशमिकके तीन भेदोमेंसे अनन्तानुबन्धी चारकी विसंयोजना और दर्शनमोहनीय तीनके उपशमसे जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह औपशमिक ही है, जिसका उल्लेख औपशमिक सम्यक्त्वके प्रकरणमें कर आये हैं। अब रहे शेष दो भेद सो वे नहीं बनते, क्योंकि औपशमिक सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यक्त्वको नहीं उत्पन्न करता है ऐसा नियम है और इसके बीना ये भेद बन नहीं सकते। इसका विशेष खुलासा हम-सर्वार्थसिद्धि टीकामें करनेवाले है। विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा।

(३) क्षायिक सम्यक्त्वको उत्पन्न करनेवाले जीवके वेदक सम्यक्त्वका होना आवश्यक है। इसकी उत्पत्ति केवली और श्रुतकेवलीके पादमूलमें कर्मभूमिज मनुष्यके ही होती है। जिससे तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध करके उस भवमें क्षायिक सम्यक्त्वको प्राप्त नहीं किया उसके अन्तिम भवमें अपने निमित्तसे भी क्षायिक सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती हुई देखी जाती है, इस प्रकार किस योग्यताके होने पर जीवके कौनसा सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है इसका विचार किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२] शंका-सम्यग्दर्शनके कितने भेद हैं ?

[२] *समाधान-सामान्यसे सम्यग्दर्शन एक है। उत्पत्तिके निमित्तोंके वर्गीकरणकी उपेक्षा सम्यग्दर्शनके दो भेद हैं-निसर्गज और अधिगमज़। निसर्गका अर्थ स्वभाव है और अधिगमका अर्थ परोपदेश। तात्पर्य यह है कि जो सम्यग्दर्शन परोपदेशकी अपेक्षाके बिना उत्पन्न होता है वह निसर्गज सम्यग्दर्शन है और जो सम्यग्दर्शन परोपदेशपूर्वक उत्पन्न होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है। कर्मोंके उपशमादिककी अपेक्षा सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं-औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। जो दर्शन मोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके अंतकरण उपशमसे और अनंतानुबंधी चारके उपशम या विसंयोजनासे उत्पन्न होता है उसे औपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। जो पूर्वोक्त सातों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते है, तथा जो सम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होता है उसे क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर शब्दोंकी अपेक्षा संख्यात, श्रद्धान करनेवालोंकी अपेक्षा असंख्यात और श्रद्धान करनेयोग्य पदार्थोंकी अपेक्षा अनंत भेद हैं। तब भी सम्यग्दर्शनके दश भेदोंका सर्वत्र मुख्यतासे उल्लेख मिलता है। जो ये हैं आज्ञा सम्यक्त्व, मार्ग सम्यक्त्व, उपदेश सम्यक्त्व, सूत्र सम्यक्त्व, बीज सम्यक्त्व संक्षेप सम्यक्त्व, विस्तार सम्यक्त्व, अर्थ सम्यक्त्व, अवगाढ़ सम्यक्त्व और परमावगाढ़ सम्यक्त्व। जो सम्यक्त्व सर्वज्ञ जिनदेवके प्रवचनके निमित्तसे होता है उसे आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं। जो सम्यक्त्व निःसंग मोक्षमार्गके श्रवणमात्रसे उत्पन्न होता है उसे मार्ग सम्यक्त्व कहते हैं। जो सम्यक्त्व तीर्थंकर बलदेव आदि के शुभ चरित्र सुननेसे होता है उसे उपदेश सम्यक्त्व कहते हैं। दीक्षाकी मर्यादाके प्ररुपण करनेवाले आचारसूत्रके सुनने मात्रसे जो सम्यक्त्व होता है उसे सूत्र सम्यक्त्व कहते है। बीजपदके ग्रहणसे जो सूक्ष्म*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थका श्रद्धान होता है उसे संक्षेप सम्यक्त्व कहते हैं। जीवादि पदार्थोंका विस्तारसे ज्ञान होनेसे जो श्रद्धान होता है उसे विस्तार सम्यक्त्व कहते हैं। वचनोंके विस्तारके बिना अर्थके ग्रहण होनेसे जो श्रद्धान होता है उसे अर्थ सम्यक्त्व कहते हैं । आचारांग आदि बारह अंगोके मननसे जिसकी श्रद्धा दृढ़ हो गई है उसे अवगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं। परमावधि ज्ञानी और केवलज्ञानीके श्रद्धानको परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहते हैं। इसी प्रकार आगमके अनुसार सम्यग्दर्शनके यथायोग्य भेद जानना चाहिए।

[३] शंका-निक्षेप व्यवस्था किस प्रकार घटित होती है ?

[३] *समाधान-लोकमें जितना शब्द व्यवहार या तदाश्रित व्यवहार होता है वह कहां किस अपेक्षासे किया जा रहा है इस गुत्थीको सुलझाना निक्षेप व्यवस्थाका काम है। निक्षेपके मुख्यतः चार भेद है- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। आगे इस व्यवस्थाको कर्मकी अपेक्षा घटित करके बतलाते है। लोकमें गुणादिककी अपेक्षा न करके जितना संज्ञा व्यवहार चालू है वह सब नाम निक्षेपका विषय है। गुणादिककी अपेक्षा जब यह व्यवहार किया जाता है तो वह नाम निक्षेपका विषय न होकर अन्य निक्षेपका विषय होता है। जैसे आगममें मनुष्यनी यह शब्द स्त्रीधर्मकी प्रधानतासे आया है अतः इसका भावनिक्षेपमें अंतर्भाव होता है। और स्त्रीवेदका नाश हो जानेके पश्चात् मनुष्यनी शब्दका व्यवहार नामनिक्षेपका विषय हो जाता है। तो भी इसका प्रयोजक भूतप्रज्ञापन नय है इसलिये आगे भी यह व्यवहार चालू रहता है। पूर्व व्यवहारसे इसमें किसी प्रकारका अन्तर नहीं होता। इससे स्पष्ट हुआ कि नाम निक्षेपमें संज्ञाकी प्रधानता है गुणादिककी नहीं, अतः जिस किसी चेतन या अचेतन पदार्थका*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्म यह नाम रखना नामकर्म है। स्थापना निक्षेपका व्यवहार प्रतिनिधिके स्थानमें होता है अतः तदाकार या अतदाकार वस्तुमें यह 'कर्म' इस प्रकारको स्थापना करना स्थापना कर्म है। द्रव्यकर्म के दो भेद है- आगम द्रव्यकर्म और नोआगम द्रव्यकर्म। जो कर्म विषयक शास्त्रका ज्ञाता है किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगम द्रव्यकर्म कहते है। नोआगम द्रव्यकर्मके तीन भेद है- ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्त।

ज्ञायकशरीरमें कर्मविषयक शास्त्रके ज्ञाताका भूत, भविष्यत् और भावी इन तीनो प्रकारके शरीरका ग्रहण किया है। जो भविष्यत् कालमें कर्मविषयक शास्त्रका ज्ञाता होगा उसे भावी नोआगम द्रव्यकर्म कहते है। तद्व्यतिरिक्तके दो भेद है-कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म और नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादि आठ कर्मोको कर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते हैं। और इन कर्मोके उदयमें जिसकी सहायता मिलती है उन सहकारी कारणोंको नोकर्मतद्व्यतिरिक्त नोआगम द्रव्यकर्म कहते है। भावनिक्षेपके दो भेद है-आगम भावनिक्षेप और नोआगम भावनिक्षेप। इनमेंसे जो कर्मविषयक शास्त्रको जानता है और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे कर्म आगम भावनिक्षेप कहते है। तथा जो जीव कर्मोके फलको भोग रहा है उसे कर्मनोआगम भावनिक्षेप कहते है। कर्म दो प्रकारके है-जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी। पुद्गलविपाकी कर्मोका फल जीवमें नहीं होता इसलिये इन कर्मोका नोआगम भावनिक्षेप नहीं होता। किन्तु जीवविपाकी कर्मोका फल जीवमें होता है इसलिये इनका नोआगम भावनिक्षेप होता है। संसारी जीवके जितने भेद किये गये है नोआगम भावनिक्षेपकी अपेक्षा ही किये गये है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[४] शंका-मतिज्ञानके मति आदि नामान्तर है या प्रत्येक शब्दका जो अर्थ वह यहां लिया गया है ?

[४] *समाधान-षट्खण्डागमके कर्मप्रकृति अनुयोगद्वारमें मतिज्ञानावरण कर्मके कथन करनेके पश्चात् एक सूत्र आया है जिसका भाव है कि 'अब आभिनिबोधिक ज्ञानकी अन्य प्ररुपणा करते है' इसका खुलासा करते हुये वीरसेनस्वामीने लिखा है कि अब आभिनिबोधिक ज्ञानके पर्यायवाची शब्दोकी प्ररुपण करते है। इससे ज्ञात होता है कि मति आदिक शब्द मतिज्ञानके पर्यायवाची नाम है। यहा जो प्रत्येक शब्दका अलग अलग व्युत्पत्यर्थ लेकर मतिसे वर्तमानज्ञान, स्मृतिसे स्मरणज्ञान, संज्ञाके प्रत्यभिज्ञान, चिन्तासे तर्कज्ञान और आभिनिबोधसे अनुमानज्ञान लिया जाता है यह ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा माननेपर ये पर्यायवाची नाम नहीं रहते। सर्वार्थसिद्धिमें जो इन शब्दोंका 'मननं मतिः' इत्यादि रुपसे विग्रह किया है उसका प्रयोजन केवल शब्दसिद्धि मात्र है, उससे अलग अलग अर्थ लेना ठीक नहीं। जैसे इन्द्र, शक्र और पुरन्दर इनका व्युत्पत्यर्थ अलग अलग है तो भी उनसे एक देवराज रुप अर्थका ही बोध होता है। उसी प्रकार प्रकृतिमें भी जानना चाहिये। समभिरुढ़ नय एक शब्दको एक ही अर्थमें स्वीकार करता है, इस द्दष्टिसे यदि विचार करके मति आदि शब्दोंका अलग अलग अर्थ लिया जाता है तो भी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु मतिज्ञानकी मर्यादाके अन्दर ही इन शब्दोका अर्थ घटित करना चाहिये। यहां इतना विशेष जानना कि आगम ग्रन्थोमें आभिनिबोधिक ज्ञान यह नाम मुख्यतासे आया है और उसके संज्ञा, स्मृति, मति और चिंता ये चार पर्यायवाची नाम आये हैं। वहां इन नामोंका क्रम वह है जो हमने उपर दिया है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[५] शंका- दर्शनका क्या स्वरूप है ?

[५] *समाधान-आगममें सामान्य ग्रहणको दर्शन बतलाया है। इसकी व्याख्या करते हुए वीरसेनस्वामीने सामान्य शब्दका अर्थ आत्मा किया है। वे लिखते है कि वस्तु सामान्य विशेषात्मक है। इसलिए दर्शनके द्वारा केवल सामान्यका और ज्ञानके द्वारा केवल विशेषका ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु दर्शन और ज्ञान दोनोंके द्वारा सामान्य विशेषात्मक वस्तुका ही ग्रहण होता है। इससे यह निश्चित हुआ कि जब आत्मा किसी पदार्थको ग्रहण करनेके सन्मुख होता है तब सर्व प्रथम जो अन्तर्मुख उपयोग होता है उसे दर्शन कहते हैं और बहिर्भव पदार्थके उपयोगको ज्ञान कहते हैं।*

[६] शंका-व्यंजन और अर्थमें क्या भेद है ?

[६] *समाधान-वीरसेनस्वामीने प्रकृति अनुयोगद्वारमें अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रहका जो लक्षण लिखा है उससे ज्ञात होता है कि जो पदार्थ इंद्रियोंसे सम्बद्ध होकर जाना जाता है वह इंद्रियों द्वारा ग्रहण करनेकी प्रथम अवस्थामें व्यंजन कहलाता है। तथा जो पदार्थ इंद्रियोंसे सम्बद्ध न होकर जाना जाता है वह, और जो पदार्थ इंद्रियोंसे सम्बद्ध होकर जाना जाता है वह भी आद्य ग्रहणके पश्चात् अर्थ कहलाता है। सर्वार्थसिद्धिमें चक्षु आदि इंद्रियोंके विषयको अर्थ और अव्यक्त शब्दादिको व्यंजन कहा है। यहां व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रहको दृष्टांत द्वारा समझाते हुए लिखा है कि जिस प्रकार नया मिट्टीका सकोरा एकबार दो तीन बून्दोंके डालनेसे गीला नहीं होता है किंतु पुनः पुनः सींचनेसे वह गीला हो जाता है उसी प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियों द्वारा दो तीन आदि समयोंमें ग्रहण किये शब्दादि विषय व्यक्त नहीं होते हैं किंतु पुनः पुनः अवग्रह होनेपर वे व्यक्त हो जाते हैं। व्यंजनावग्रह और अर्थावग्रहमें यही अन्तर है। किंतु*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरसेनस्वामी " अस्पष्ट ग्रहणको व्यंजनावग्रह और स्पष्ट ग्रहणको अर्थावग्रह कहते हैं " इस मतका खण्डन किया है। वे लिखते हैं कि यदि अस्पष्ट ग्रहणको व्यंजनावग्रह माना जाय तो चक्षु इन्द्रियोंके द्वारा अस्पष्ट ग्रहण होनेपर उसे भी व्यंजनावग्रहका प्रसंग प्राप्त होगा। परन्तु चक्षु इन्द्रियोंसे व्यंजनावग्रह होता नहीं ऐसा सूत्र वचन है। अतः प्राप्त अर्थका ग्रहण व्यंजनावग्रह और अप्राप्त अर्थका ग्रहण अर्थावग्रह है यह निष्कर्ष निकलता है। इस परसे यह फलित होता है कि चक्षु और मनसे केवल अप्राप्त अर्थका ही ग्रहण होता है, किंतु शेष चार इन्द्रियां प्राप्त और अप्राप्त दोनों प्रकारके अर्थका ग्रहण करती हैं।

वीरसेनस्वामी लिखते हैं कि यदि ऐसा न माना जाय तो स्पर्शन आदि इन्द्रियोंका विषय ९ योजन आदि बतलाया है वह नहीं बनता है। क्योंकि ये स्पर्शन आदि इन्द्रियां दूरके पदार्थको नहीं जानती, केवल स्पष्ट पदार्थको ही ग्रहण करती है तो इनका विषय स्पष्ट ही लिखना था। परन्तु ऐसा न करके अलग अलग इंद्रियवाले जीवोंके इनका विषय परिणाम जबकि अलग अलग बतलाया है इससे ज्ञान होता है कि ये स्पर्शनादि इंद्रियां प्राप्त और अप्राप्त दोनों प्रकारके पदार्थोंको जानती हैं।

[७] शंका- चक्षुइन्द्रिय अप्राप्यकारी क्यों है ?

[७] *समाधान*- एक तो चक्षुइन्द्रिय स्पष्ट अंजन आदिको ग्रहण नहीं करती है। दूसरे भिन्न देशमें स्थित दो पदार्थोंका इसके द्वारा एकसाथ ग्रहण होता है। तीसरे चक्षुइन्द्रियके विषयमें क्षेत्रभेद प्रतीत होता है। जब कोई चक्षुइन्द्रियके द्वारा किसी पदार्थको ग्रहण करता है वह उससे कितनी दूर है यह स्पष्ट मालूम होता है इससे ज्ञात होता है कि चक्षुइन्द्रिय अप्राप्यकारी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[८] शंका-अङ्ग और पूर्वोका क्या विषय है ?

[८] *समाधान- आगममें अङ्गोंके बारह भेद किये हैं- आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तःकृद्दश, अनुत्तरोपयादिक दश, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिप्रवाद। आचारांगमें मुनियोंके आचारका वर्णन है। सूत्रकृतांगमें ज्ञानविनय, प्रज्ञापना, कल्प्याकल्प्य, छेदोपस्थापना और व्यवहार धर्म क्रियाका व्याख्यान है। स्थानांगमें पदार्थोंके एकादिक भेदोंका वर्णन है। क्रम यह है कि एक स्थानका वर्णन करते समय सबके एकसाथ भेद बतलाये हैं। दो स्थानका वर्णन करते समय सबके दो दो भेद बतलाये हैं। इसी प्रकार आगे समझना। समवायांगमें सब पदार्थोंके समवायका कथन है। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा समवाय चार प्रकारका है। धर्म, अधर्म लोकाकाश और एक जीवके प्रदेश समान हैं यह द्रव्य समवाय है, सोमान्तक नरक, मानुषलोक, ऋजुविमान और सिद्धक्षेत्र समान है, यह क्षेत्र समवाय है। एक समय दूसरे समयके बराबर है। एक मुहूर्त दूसरे मुहूर्तके बराबर है यह काल समवाय है। केवलज्ञान केवलदर्शनके समान है यह भाव समवाय है। इसी प्रकार सर्वत्र जानना। व्याख्याप्रज्ञतिमें क्या जीव है इत्यादि प्रश्नोंका समाधान किया है। ज्ञातृधर्मकथामें तीर्थंकरके धर्मोपदेश, अनेक प्रकारकी कथाओं और उपकथाओंका व्याख्यान किया है। उपासकाध्ययनमें ग्यारह प्रकारके श्रावकोंकी चर्याका वर्णन है। अन्तःकृतदशमें एक एक तीर्थंकरके समय दारुण उपसर्गोको सहकर निर्वाणको प्राप्त हुए दस दस मुनियोंका वर्णन है। अनुत्तरोपपादिक दशमें एक एक तीर्थङ्करके समयमें दारुण उपसर्गोको स[illegible] अनुत्तर विमानको प्राप्त हुए दस दस मुनियोंका वर्णन है। प्रश्नव्याकरणमें आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेगनी और निर्वेदनी इन चार प्रकारकी कथाओंका वर्णन है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रेसठ प्रकारके मतोंका निरूपण करके उनका निग्रह किया गया है। इस अंगके पांच भेद है- परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चुलिका। परिकर्मके पांच भेद है- चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति और व्याख्याप्रज्ञप्ति। चन्द्रप्रज्ञप्तिमें चन्द्रमाकी आयु, अवगाहना और उसके परिवार आदिका विस्तृत विवेचन है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिमें जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्य आदिका तथा कुलाचल, नदी और तालाब आदिका विस्तृत वर्णन है। द्वीपसागरप्रज्ञप्तिमें सब द्वीपों और समुद्रोंका तथा उनकी अवान्तर रचना आदिका वर्णन है। व्याख्याप्रज्ञप्तिमें रूपी अरूपी द्रव्योंका और भव्य तथा अभव्यादिका वर्णन है। दृष्टिवादका जो दूसरा भेद सूत्र है उसमें आत्मा अबन्धक है अभेदक है तथा त्रैराशिक नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, प्रधानवाद, द्रव्यवाद और पुरूषवादका वर्णन है। दृष्टिवादके तीसरे भेद प्रथमानुयोगमें शलाका पुरूषों व पुण्य पुरूषोंके चरित्रका वर्णन है। दृष्टिवादके चौथे भेद पूर्वगतके चौदह भेद हैं-उत्पादपूर्व, अग्रायणीय, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुप्रवाद, कल्याण प्राणावाय, क्रियाविशाल, और लोकबिन्दुसार। इनमेंसे उत्पाद पूर्वमें सब द्रव्योके उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप अवस्थाओंका विचार किया है। अग्रायणीय पूर्वमें सब अङ्गोंके प्रधानभूत विषयका वर्णन है। वीर्यानुवादमें आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य और क्षेत्रवीर्य आदिका वर्णन है। अस्तिनास्तिप्रवादमें अस्तित्व और नास्तित्वकी प्रमुखतासे जीवादि पदार्थोंका वर्णन है। ज्ञानप्रवादमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञानोका वर्णन है। सत्यप्रवादमें वचनगुप्ति, वचनके संस्कारके कारण उसके प्रयोग और बारह प्रकारकी भाषा आदिका कथन है। आत्मप्रवादमें आत्मा ज्ञाता है, विष्णु है, भोक्ता है इत्यादि रूपसे विस्तारके साथ आत्मतत्वका विवेचन किया है। कर्मप्रवादमें आठ प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। प्रत्याख्यान पूर्वमे सब प्रकारके प्रत्याख्यानका, उपासकोकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विधिका और समिति तीन गुप्ति आदिका वर्णन है। विद्यानुवादमें अंगुष्ठसेना आदि सातसौ छोटी विद्याओंका रोहिणी आदि पांचसौ महाविद्याओंका और अष्टांग महानिमित्तोंका वर्णन है। अंतरीक्ष, भौम, अङ्ग, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन और छिन्न ये आठ महानिमित्त है, इनको देखकर जो शुभाशुभका ज्ञान होता है वह निमित्त ज्ञान है। कल्याण पूर्वमें सूर्य, चंद्रमा नक्षत्र और तारागणोंके गमन, उपपाद, गतिफल आदिका तथा शलाका पुरूषोंके गर्भावतरण आदि कल्याणकोंका कथन है। प्राणावाय पूर्वमें अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म जांगुलिप्रकर्म और प्राणापानके विभागका वर्णन है। शलाका कर्म, कायचिकित्सा भूततंत्र, शल्यतंत्र, अङ्गदतन्त्र, बालरक्षातन्त्र और बीजवर्द्धनतन्त्र ये अष्टांग आयुर्वेद हैं। शरीर आदिकी रक्षाके लिये जो भस्म और सूत्र आदिके द्वारा वेष्टन किया जाता है उसे भूतिकर्म कहते हैं। जांगुलिप्रकर्मका अर्थ विषविद्या है। क्रियाविशालपूर्वमें लेखन आदि बहत्तर कलाओंका और स्त्रियोमें चौसठ गुणों आदिका वर्णन है। लोकबिंदुसारमें आठ व्यवहार, चार बीज, मोक्षगमन, क्रिया और मोक्षसूत्रका वर्णन है। दृष्टिवादके पांचवें भेद चूलिकाके पांच भेद हैं- जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता। इनमें अपने२ नामानुसार विद्याओंका वर्णन है।

[९] शंका-विभंगज्ञानके पहले कौनसा दर्शन होता है ?

[९] *समाधान*-सत्यरूपणाके १३४ वें सूत्रकी टीका करते वीरसेनस्वामीने बतलाया है कि विभंगज्ञानके पहले होनेवाले दर्शनका अवधिदर्शनमें अन्तर्भाव हो जाता है। इससे इतना तो ज्ञान होता है कि विभंगज्ञानके पहले अवधिदर्शन होता है। तब भी आगममें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि अवधिदर्शन चोथे गुणस्थानमे बतलाया है और विभंगज्ञान इसके पहले होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१०] शंका-मनःपर्ययज्ञानका क्या विषय है ?

[१०] *समाधान-मनःपर्ययज्ञानके विषयका निर्णय करते समय मुख्यतः इस बातका विचार करना आवश्यक है कि मनःपर्ययज्ञान केवल मनकी पर्यायोंको ही जानता है या मनके निमित्तसे प्रवृत होकर सीधे अन्य पदार्थोंको भी जानता है।*

मनःपर्ययज्ञानकी व्युत्पत्ति करते हुए वीरसेनस्वामीने प्रकृति अनुयोगद्धारमें लिखा है कि दूसरेके मनोगत अर्थको मन कहते हैं और पर्यय शब्दका अर्थ विशेष है, इससे यह निष्कर्ष निकला कि मनकी अवस्थाए मनःपर्यय कहलायीं और उनका ज्ञान मनःपर्यय ज्ञान कहलाया। यदि इस लक्षण पर बारीकीसे ध्यान दिया जाता है तो इससे यही ज्ञात होता है कि मनःपर्यय ज्ञान साक्षात्रूपसे मनकी अवस्थाओंको जानता है। किंतु वही प्रकृति अनुयोगद्धारमें जो मनः पर्ययज्ञानके विषयका ज्ञान करानेके लिए सूत्र आया है उनसे ज्ञात होता है कि मनःपर्ययज्ञान अन्य विषयोंको भी जानता है। सूत्र निम्न प्रकार है-

मणे माणसे पडिविदहत्ता परेसिं सण्णा सदि मदि चिंता जीविद मरणं लाहालाहं सुखदुक्खं णगरविणासं देसविणासं जयपयविणासं खेडविणासं दव्वडविणासं मडंकनिणासं पट्टणविणासं दोणमहविणासं अइवुट्ठि अणावुट्ठि सुवुट्ठ दुवुट्ठि सुभिक्खं दुभिक्खं खेमाखेम भयरोग काल संजते अत्थे वि जाणादि।

तात्पर्य यह है कि मतिज्ञानसे दूसरेके मनको ग्रहण करके ही यह जीव मनःपर्ययज्ञानसे दूसरेका नाम स्मृति, मति, चिन्ता जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख दुःख, नगरविनाश, देशविनाश, जनपदविनाश, खेटविनाश, कर्वटविनाश, मडम्बविनाश, पत्तनविनाश, द्रोणमुखविनाश, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, सुवृष्टि, दुर्वृष्टि, सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, क्षेम, अक्षेम, भय, रोगको कालकी मर्यादा लिये हुए जानता है। तात्पर्य यह है कि इन सबके उत्पाद, स्थिति और भंगको मनःपर्ययज्ञानी जानता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार यद्यपि इस सूत्रमें संज्ञा, मति आदि अन्य विषयोंका उल्लेख है तो भी इनको मनःपर्यायज्ञानी तभी जानता है जब वे किसीके मनके विषय हो गये हो या होनेवाले हों। इससे ज्ञात होता है कि मनःपर्यय ज्ञानके द्वारा मुख्यतः भूत, भविष्य और वर्तमानरूप मनकी पर्यायें जानी जाती हैं। तत्वार्थ सूत्रमें मनःपर्ययज्ञानका विषय जो अवधिज्ञानके विषयका अनन्तवां भाग बतलाया है उससे भी उक्त निष्कर्ष निकलता है।

[११] शंका-मनके आलंबनसे मनःपर्ययज्ञान होता है इसका क्या अभिप्राय है ?

[११] *समाधान-मनःपर्ययज्ञान मनोगत अर्थको ही जानता है इतना ही मनका आलम्बन यहांपर विवक्षित है। जैसे "आकाशमें चन्द्रमाको देखो " इस उदाहरणमें आकाश चन्द्रमाका आलम्बन मात्र है। यह कुछ चन्द्रमाको उत्पत्तिमें सहायक नहीं इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान कुछ मनके निमित्तसे उत्पन्न नहीं होता। किन्तु मनोगत विषय ही मनःपर्ययज्ञानका विषय है। मनःपर्ययज्ञानमें इतना ही मनका अवलम्बन विवक्षित है।*

[१२] शंका-ऋजुमति और विपुलमतिमें क्या अन्तर है ?

[१२] *समाधान-ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान उन्हींके द्वारा विचारे गये पदार्थको जानता है जिनका मन संशय विपर्यय और अनध्यवसायसे रहित है, या ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान तीनों कालके विषयको जानता हुआ भी अतीत और अनागत मनके विषयको नहीं जानता किन्तु जो जीव विद्यमान है और वर्तमान कालमे विचार कर रहे हैं उन्हींके मनसे सम्बन्ध रखनेवाले तीनों कालके*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयको जानता है। परन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञानकी यह बात नहीं है। यह तो उन सभी विषयोंको जानता है जिनका चिन्तवन किया जा चुका है, चिन्तवन किया जा रहा है या चिन्तवन किया जायगा। तथा ऋजुमति मनःपर्ययज्ञान प्रतिपाती भी है। वह, जो जीव उपशमश्रेणी पर चढ़ता है उसके भी होता है। किन्तु विपुलमति मनःपर्ययज्ञान इस प्रकारका नहीं हैं इस प्रकार दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

[१३] शंका-केवलज्ञान का क्या विषय है ?

[१३] *समाधान-प्रकृति अनुयोगद्वारमें बतलाया है कि केवली जिन, देवलोक, असुरलोक और मनुष्यलोक की गति और आगति मरण, उपपाद, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, युति, अनुमार्ग, तर्क, कल, मन, मानसिक, मुक्त, कृत प्रतिसेवित आदिकर्म, अर्हकर्म, सब लोक सब जीव और सब भाव इन सबको जानते और देखते हुए विहार करते हैं । इससे ज्ञात होता है कि केवलज्ञानका विषय सब द्रव्य और उनकी सब अर्थ और व्यंजन पर्यायें हैं।*

आत्माका स्वभाव जानना और देखना हैं। चूंकि संसारी आत्मा आवरणकी हीनाधिकताके कारण सबको नहीं जान देख पाता है। पर जिस आत्माके ये आवरण नष्ट हो गये वह या तो सबको जाने और सबको देखे या किसीको न जाने और किसीको न देखे। दूसरे विकल्पके माननेपर जानना और देखना आत्माका स्वभाव नहीं ठहरता। अतः यही सिद्ध होता है कि सब द्रव्यकी और उनकी त्रिकालवर्ती सब अर्थपर्याय और व्यंजन पर्याय केवलज्ञानका विषय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[१४] शंका-सात नयोंका स्वरुप क्या है और उनमें परस्पर क्या तारतम्य है ?

[१४] *समाधान*-*जो संग्रह और असंग्रहरुप दोंनो प्रकारके विषयोंकों ग्रहण करता है उसे नैगमनय कहते है। या अर्थके अनिष्पन्न रहते हुए संकल्प मात्रको ग्रहण करनेवाला नैगमनय है। जो गुणादिककी अपेक्षा भेद न करके सबको एकरुपसे ग्रहण करता है वह संग्रहनय हैं। जो संग्रहनयके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थोमें विधिपूर्वक भेद करता है वह व्यवहारनय है। ये तीनों द्रव्यार्थिक नय है। क्योंकि इनका विषय द्रव्य है। इसमें काल भेद नहीं पाया जाता तो भी ये उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं, क्योंकि संग्रहनय केवल संग्रहरुप पदार्थको विषय करता है परन्तु नैगमनय संग्रह और असंग्रह रूप दोनों प्रकारके पदार्थोका विषय करता है इसलिए नैगमनयके विषयसे संग्रहनयका विषय सूक्ष्म है और नैगमनयका विषय स्थूल। इसी प्रकार व्यवहारनय संग्रहनयके विषयसे विधिपूर्वक भेद करके प्रवर्तता है इसलिए संग्रहनयके विषयमें व्यवहारनयका विषय सूक्ष्म है और संग्रहनयका विषय स्थूल।*

जो वर्तमान पर्याय मात्रको विषय करता है उसे ऋजुसूत्रनय कहते है। लिंगादिकका व्यभिचार हटाकर जो शब्द द्वारा वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है उसे शब्दनय कहते है। जो शब्द जिस अर्थमें रुढ़ हो उसी शब्द द्वारा जो वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है वह समभिरुढ़ नय है तथा जिस शब्दका जो व्युत्पत्ति अर्थ हो तत्क्रियापरिणत अर्थको जो उस शब्दके द्वारा ग्रहण करता है उसे एवं भूत नय कहते हैं। ये चारों पर्यायार्थिक नय हैं इसलिए द्रव्यार्थिक नयोंसे इनका विषय सूक्ष्म है ही। फिर भी परस्पर इनका उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषय है। ऋजुसूत्र नय लिंगादिकका भेद नहीं करता। वह शब्द व्यवहारको महत्व ही नहीं देता। इसलिए इसके विषयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दनयका विषय सूक्ष्म है और इसका विषय स्थूल। समभिरुढ़ नय लिंगादिकका भेद हो जानेपर भी एक अर्थमें एक शब्दको ही स्वीकार करता है किन्तु शब्दनय में यह बात नहीं पाई जाती इसलिए शब्दनयके विषयसे समभिरुढ़ नयका विषय सूक्ष्म है और शब्दनयका विषय स्थूल। एवं भूत नय रौढ़िक अर्थको स्वीकार न करके तत्क्रियापरिणत समयमें व्युत्पत्तिरुप अर्थको ही स्वीकार करती है इसलिए समभिरूढ़ नयके विषयसे एवं भूत नयका विषय सूक्ष्म हैं और समभिरूढ़ नयका विषय स्थूल। इनमेंसे प्रारंभके चार नय अर्थ नय हैं, क्योंकि शब्दकी अपेक्षा उनके विषयका विचार नहीं किया जाता और अंतके तीन नय शब्दनय हैं क्योंकि इनके विषयका शब्दकी अपेक्षा विचार किया है। इस प्रकार सात नयोंका स्वरूप और उनमें परस्पर तारतम्य जानना चाहिये।

दूसरा अध्याय-

[१५] शंका-एकसाथ एक जीवके कमसे कम और अधिकसे अधिक कितने भाव हो सकते हैं ?

[१५] *समाधान*-भाव पांच हैं-औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक। मिथ्याद्दष्टि जीवके तीन भाव हैं-क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक। यहां मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिक भाव हैं। क्रोधादि औदयिक भाव हैं और जीवत्व आदि पारिणामिक भाव हैं। तथा जो क्षायिक सम्यग्द्दष्टि जीव उपशम श्रेणीपर चढ़कर उपशान्त मोही हो जाते हैं उनके पांचो भाव होते हैं। यहां कषायका उपशम हो जानेसे उपशान्त कषाय यह औपशमिक भाव है। दर्शनमोहनीय क्षय होनेसे क्षायिकका सम्यग्दर्शन यह क्षायिक भाव है। शेष तीन भाग पूर्ववत् हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणस्थान प्रतिपन्न जीवोंके अभव्यत्व भाव नहीं होता। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसार अवस्थामें एकजीवके एकसाथ कमसे कम तीन और अधिकसे अधिक पांच भाव होते हैं किन्तु मुक्तात्माके क्षायिक और पारिणामिक ये दो ही भाव पाये जाते हैं । इसलिये यदि संसार मोक्ष अवस्थाका भेद न करके विचार किया जाता हो तो एकसाथ एक जीवके कमसे कम दो और अधिकसे अधिक पांच भाव भी बन जाते हैं। यहां पर प्रत्येक भावके अवान्तर भावोंकी विवक्षा नहीं की है।

[१६] शंका-क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति कितनी और वह किस प्रकार घटित होती है ?

[१६] *समाधान-क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति छयासठ सागर बतलायी है, किन्तु पूरा छयासठ सागर उसी वेदक सम्यग्दृष्टिके प्राप्त होता है जो वेदक सम्यक्त्वके अन्तमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। यदि ऐसा जीव मिथ्यात्वमें जाता हैं तो उसके क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शनका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम छयासठ सागर ही प्राप्त होता हैं। मान लो कोई एक उपशम सम्यग्दृष्टि मनुष्य वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर मनुष्य पर्याय सम्बन्धी शेष भुज्यमान आयुसे रहित बीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ।*

वहांसे पुनः मनुष्य होकर तदनन्तर मनुष्य आयुसे न्यून बाईस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे पुनः मनुष्य होकर तदनन्तर भुज्यमान मनुष्यायुसे तथा देव पर्यायसे अनन्तर प्राप्त होनेवाली मनुष्यायुमेंसे क्षायिक सम्यग्दर्शनके प्राप्त होने तकके कालसे पुनः चौबीस सागर आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। तदनन्तर मनुष्य हुआ और इसके जब वेदक सम्यक्त्वके कालमें अन्तर्मुहूर्त शेष रह जाय, तब दर्शनमोहनीयके क्षपणका प्रारंभ करके यह जीव कृत्यकृत्य वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करता है। इस प्रकार कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वके अन्तिम समय तक पूरे छयासठ सागर हो जाते हैं। वेदक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वकी छयासठ सागर स्थितिको प्राप्त करनेका यह एक प्रकार हैं इसी तरह अन्य प्रकारसे भी छयासठ सागर स्थिति प्राप्त की जा सकती हैं।

मूल बात इतनी हैं की ऐसे जीवको मनुष्यसे देव और देवसे मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न करते आना चाहिए। किन्तु छयासठ सागरका मनुष्य पर्यायमें पूरा करावे क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारंभ कर्म भूमिया मनुष्यके ही होता हैं।

[१७] शंका-पांच परिवर्तनका क्या स्वरूप है?

[१७] *समाधान*-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावकी अपेक्षा परिवर्तन हैं। इनमेंसे पहले द्रव्य परिवर्तनमें कर्म और नोकर्मके ग्रहणकी मुख्यता है। इस अपेक्षासे इसके दो भेद हो जाते हैं-एक ऐसा जीव है जिसने विवक्षित रूप, रस, गन्ध और स्पर्शवाली नोकर्म वर्गणाओंका विवक्षित योगसे ग्रहण किया। अनन्तर द्वितीया समयोंमें वे निजीर्ण हो गई। तदनन्तर वह जीव संसारमें परिभ्रमण करता रहा। और ऐसा करते हुए उसके जब उन्हीं नौकर्म वर्गणाओंका पूर्वोक्त अवस्थाके रहते हुए ग्रहण होता है तब जाकर एक नौकर्म द्रव्य परिवर्तन होता है। इसी प्रकार कर्मद्रव्य परिवर्तनका स्वरूप जान लेना चाहिए। किन्तु इसमें विशेषता है कि कर्मवर्गणाओकी निर्जरा उनको ग्रहण करनेके अनन्तर द्वितीयादि समयसे न होकर एक समय अधिक एक आवलीकालके पश्चात् प्रारम्भ होती है। ये दोनों मिलकर एक द्रव्य परिवर्तन है। इसकी विशेष विधि अन्यत्रसे जान लेना चाहिये।

एक सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव हैं जो लोकाकाशके आठ मध्यप्रदेशोंको अपने शरीरके मध्यमें करके उत्पन्न हुआ और क्षुद्रभव तक जीवित रहकर मर गया। पुनः उसी अवगाहनासे वहां दूसरीबार उत्पन्न हुआ और क्षुद्र भव तक जीवित रहकर मर गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण आकाशमें जितने प्रदेश सामने हैं उतनी बार वहीं वहीं उत्पन्न होकर मरा। तदनन्तर एक एक प्रदेश सरक कर वह उत्पन्न हुआ, और इस प्रकार लोकाकाशके सब प्रदेशोंको अपनी उत्पत्तिसे समाप्त किया। इस प्रकार यह सब मिलकर एक क्षेत्रपरिवर्तन कहलाता है।

एक जीव प्रथम उत्सर्पिणीके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होनेपर मर गया। पुनः दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होनेपर मर गया। पुनः तीसरी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें उत्पन्न हुआ और आयुके समाप्त होनेपर मर गया। इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते हुए वह उत्सर्पिणीके सब समयोंमें उत्पन्न हुआ। तथा इसी प्रकार अवसर्पिणीके सब समयोंमें भी उत्यन्न कराना चाहिये। जो उत्पत्ति क्रम बतलाया है वही क्रम मरणका भी समझना चाहिये। अर्थात एक जीव प्रथम उत्सर्पिणीके प्रथम समयमें मरा, दूसरी उत्सर्पिणीके दूसरे समयमें मरा आदि। इस प्रकार यह सब मिलकर एक काल परिवर्तन कहलाता है।

नरककी जघन्य आयु दस हजार वर्षकी है। इस आयुके साथ एक जीव नरकमें उत्पन्न हुआ। पुनः इसी आयुके साथ दूसरी बार नरकमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दस हजार वर्षके जितने समय हो उतनी बार पूर्वोक्त आयुके साथ ही नरकमें उत्पन्न होता रहा। तदनन्तर एक समय अधिक दस हजार वर्षकी आयुके साथ नरकमें उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार एक एक समय बढ़ाते हुए नरककी तेतीस सागर आयु समाप्त करना चाहिए। तिर्यंचगतिकी जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आयु तीन पल्य है। देव गतिकी जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर है। किन्तु यहां इकतीस सागर तककी आयुका ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि देवपर्यायकी इकतीस सागरसे अधिक आयुवाले जीव सम्यग्दृष्टि ही होते है, जो पांच परावर्तनसे रहित हैं। इन तिर्यंच आदि गतिमें वही क्रम जानना चाहिये जो नरकगतिमें बतलाया है। किन्तु सर्वत्र अपना अपना जघन्य और उत्कृष्ट आयुका विचार करके कथन करना चाहिये। इस प्रकार यह सब मिलकर एक भव परिवर्तन कहलाता है।

एकसंज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवने ज्ञानावरणकी सबसे जघन्य अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थितिका बन्ध किया । उसके उस स्थितिके योग्य सबसे जघन्य कषाय अध्यवसाय स्थान सबसे जघन्य अनुभाग अध्यवसाय स्थान और सबसे जघन्य योगस्थान हैं । अब उसके स्थिति, कषाय, अध्यवसाय स्थान और अनुभाग अध्यवसाय स्थान तो वही रहे, किन्तु योगस्थान दूसरा हुआ। इस प्रकार जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थानोके होनेतक पूर्वोक्त तीनो चीजें वही रहीं। अनन्तर उसके स्थिति और कषाय अध्यवसाय स्थान तो वही रहे किन्तु अनुभाग अध्यवसाय स्थान दूसरा हुआ। यहां जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान हो लेते है। इस प्रकार असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागस्थानोंके होने तक स्थिति और कषाय अध्यवसाय स्थान वही रहते हैं किन्तु प्रत्येक अनुभागस्थान प्रति योगस्थान जगतश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण ही लेते है। अनन्तर स्थिति तो वही रही किन्तु कषाय अध्यवसाय स्थान दूसरा हुआ इस दूसरे कषाय अध्यवसाय स्थानके प्रति भी असंख्यात लोकप्रमाण अनुभाग अध्यवसाय स्थान होते हैं, और प्रत्येक अनुभाग अध्यवसायस्थानके प्रति जगत्श्रेणीके असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थान होते हैं। इस क्रमसे स्थिति तो वही रहती है किंतु कषाय अध्यवसायस्थान असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं। इस प्रकार जब इन तीनोंका घेरा पूरा हो लेता है तब पूर्वोक्त स्थितिसे एक समय अधिक स्थितिका बन्ध होता है। अन्तः कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्रति जो कषाय अध्यवसायस्थान, अनुभाग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्यवसायस्थान और योगस्थानके क्रमका कथन किया है वही क्रम समयाधिक अन्त: कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्रति भी जानना चाहिए। आगे भी क्रमसे ज्ञानावरण क्रमकी तीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति समाप्त करना चाहिए। तथा ज्ञानावरण कर्मकी स्थितिका जो परिवर्तन क्रम बतलाया है उसी प्रकार सब मूल प्रकृति और उत्तर प्रकृतिओंका जानना चाहिए। इस प्रकार यह सब मिलकर एक भाव परिवर्तन होता है।

इस प्रकार ये पांच परिवर्तन हैं। इनमें उत्तरोत्तर अधिक-काल लगता है। इन परिवर्तनोंका कथन करते समय हमारी दृष्टि संक्षपसे इनके स्वरूपके बतलानेकी रही। इनका विशेष खुलासा जो जानना चाहें वे अन्यत्रसे जान सकते है।

[१८] शंका-चक्षु आदि इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है या नियत स्थानमें ?

[१८] *समाधान*-चक्षु आदि इंद्रियावरण कर्मका क्षयोपशम सर्वाङ्ग होता है। नियत स्थानमें तो उनकी निवृत्ति होती है । बात यह है कि एक तो क्षयोपशम नियत स्थानमें बन नहीं सकता। दूसरे आत्माके आठ मध्य प्रदेशोंको छोड़कर शेष सब प्रदेश चलायमान रहते हैं। अब जिन प्रदेशोंमें चक्षु आदि इन्द्रियावरण कर्मका क्षयोपशम है उनके नियत स्थानसे हट जाने पर और उनके स्थानमें अन्य प्रदेशोंके आ जानेपर उनसे रूपादिकका ग्रहण नहीं हो सकता। परन्तु ऐसी बात होती नहीं अत: सिद्ध हुआ कि चक्षु आदि इन्द्रियावरण क्षयोपशम सर्वाङ्ग ही होता हैं।

[१९] शंका-जन्म और योनिमें क्या अन्तर है ?

[१९] *समाधान*-योनि आधार है और जन्म आधेय। योनि उसे कहते है जिसमें जीव उत्पन्न होता है और जन्म नूतन पर्यायके ग्रहणका नाम है। इस प्रकार इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२०] शंका-शरीरके कितने भेद हैं ?

[२०] *समाधान-शरीरके पांच भेद है-औदारिक, वैक्रियिक आहारक, तैजस और कार्मण। किन्तु संयोगसे ये पन्द्रह प्रकारके हो जाते हैं। यथा-औदारिक औदारिक, औदारिक तैजस, औदारिक कार्मण, औदारिक तैजसकार्मण, वैक्रियिकवैक्रियिक वैक्रियिकतैजस वैक्रियिककार्मण, वैक्रियिकतैजसकार्मण, आहारक आहारक, आहारकतैजस, आहारककार्मण, आहारकतैजसकार्मण, तैजसतैजस, तैजसकार्मण और कार्मणकार्मण। औदारिक शरीरके स्कन्धोंका अन्य औदारिक शरीरके स्कन्धोंसे सम्बन्ध होनेपर औदारिक कहलाता है। इसीप्रकार तैजस, कार्मण या इन दोनोंके सम्बन्धके होनेपर कथन करना चाहिये। अन्य संयोगी भंगोमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये।*

यद्यपि औदारिक शरीरके रहते हुए वैक्रियिक शरीर नहीं होता है यह ठीक है, तो भी औदारिक शरीरके सद्भावमें आहारक शरीरतो होता है अतः औदारिक आहारक या आहारक औदारिक इस प्रकार संयोगी भंग कहना चाहिए था, पर नहीं कहा, सो इसका कारण यह है कि आहार शरीरके होनेपर औदारिक शरीरका उदय नहीं होता अतः औदारिक और आहारकका बन्ध नहीं प्राप्त होता।

यहाँ इतना विशेष जानना कि यद्यपि औदारिक वैक्रियिक या आहारक शरीरके रहते हुये तैजस और कार्मण शरीर नियमसे होते है तो भी इनके द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भङ्गोके दिखलानेके लिये पृथक् पृथक् कथन किया।

[२१] शंका-अनपवर्त्य आयुका खास अभिप्राय क्या है ?

[२१] *समाधान-अनपवर्त्यमें अन् और अपवर्त्य ये दो शब्द है इसलिये यह अर्थ हुआ कि जिसकी आयु घटने योग्य नहीं*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वे अनपवर्त्य आयुवाले कहलाते है। ऐसा नियम है कि प्रत्येक कर्मकी स्थिति और अनुभागमें उत्कर्षण और अपकर्षण होता रहता हैं। किन्तु उत्कर्षण बन्धके समय ही होता हैं और अपकर्षण कभी भी हो सकता है। बन्धके समय भी हो सकता हैं और उसके बिना भी हो सकता हैं। यहां आयु कर्मका प्रकरण हैं। पूर्वोक्त नियमके अनुसार चारों गतियोंकी भुज्यमान आयुमें अपकर्षण सम्भव है इस औपपादिक चरमोत्तम इत्यादि सूत्रके द्वारा यह नियम किया गया हैं कि उपपाद जन्मवाले, चरमशरीरी और भोगभूमियां इन तीनों जीवोंकी आयु नहीं घटती। भवके प्रथम समयमें इन्हे जितनी आयु प्राप्त होती है उतने कालतक इन जीवोंको उस पर्यायमें रहना ही पड़ता है।

तीसरा अध्याय-

[२२] शंका-नरकोंमें पटलोंके क्रमसे किस प्रकार आयु बढ़ती है ?

[२२] ***समाधान***-*प्रथम नरकमें तेरह, दूसरेमें ग्यारह, तीसरेमें नौ, चौथेमें सात, पांचवेंमें पांच, छठवेंमें तीन और सातवें नरकमें एक पटल है। इनमेंसे पहले नरकके प्रथम पटलमें जघन्य आयु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नव्वे हजार वर्ष है। दूसरे पटलमें जघन्य आयु नव्वे हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नव्वे लाख वर्ष है। तीसरे पटलमें जघन्य आयु एक पूर्व कोटि है। चौथे पटलमें जघन्य आयु असंख्यात पूर्वकोटि और उत्कृष्ट आयु एक सागरका दसवां भाग हैं। अगले पटलोंमें पूर्व पूर्व पटलकी उत्कृष्ट आयु उस पटलकी जघन्य आयु है और उत्कृष्ट आयुमें प्रत्येक पटलमें एक सागरके दसवें भागकी वृद्धि होती गई है। इस आयु के लानेके लिये यह नियम है कि आखिरी पटलकी उत्कृष्ट आयु में से चौथा*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जो शेष रहे उनमें नौ का भाग दे दो अनन्तर जिस पटलकी उत्कृष्ट आयु जानना हो उसकी संख्या से गुणाकार दो तो उस पटलकी उत्कृष्ट आयु आ जाती है। यहां नौ का इसलिये भाग दिलाया कि प्रारम्भके चार पटलोंकी आयु अलगसे कही है इसलिए पांचवेंसे लेकर तेरहवें तक नौ ही पटल होते हैं। इसी प्रकार अगले नरकोंके प्रत्येक पटलमें जघन्य और उत्कृष्ट आयु ले आना चाहिए। उदाहरणार्थ दूसरे नरकमें ग्यारह पटल हैं।

अब प्रथम नरककी उत्कृष्ट आयु एक सागरको दूसरे नरककी उत्कृष्ट आयु तीन सागरमेंसे घटा दो, शेष बचे दो सागर सो इसमें ग्यारहका भाग दे दो। अनन्तर जिस पटलकी आयु लाना हो तो उससे इस लब्धको गुणा कर दो और उसे प्रथम नरककी उत्कृष्ट आयुमें जोड़ दो तो इस प्रकार उस पटलकी उत्कृष्ट आयु आ जायेगी। मान लो हमें दूसरे नरकके तीसरे पटलकी उत्कृष्ट आयु जानना है तो हम पूर्वोक्त विधिके अनुसार यह क्रिया करेंगे-

३-१-२-सागर १÷ ११= $\frac{३}{११}$ सागर $\frac{३}{११}$x ३= $\frac{९}{११}$ सागर, १+ $\frac{९}{११}$ = १$\frac{९}{११}$ सागर। बस यही तीसरे पटलकी उत्कृष्ट आयु होगी।

इसी क्रमसे सातों नरकोंके सब पटलोंकी उत्कृष्ट आयु ले आना चाहिए, तथा अपनेसे पूर्ववर्ती पटलकी जो उत्कृष्ट आयु है वही उससे अगले पटलकी जघन्य आयु जानना।

[२३] शंका-विदेह क्षेत्रका वर्णन क्या है ?

[२३] *समाधान-* विदेहक्षेत्रका विस्तार ३३६८४$\frac{४}{११}$योजन है और मध्यमें लम्बाई एक लाख योजन है। इसके ठीक मध्यमें सुमेरु पर्वत है। सुमेरुके पाससे दो गजदंत पर्वत गोलाकार निषेधसे मिले हैं। इसी प्रकार उत्तरकी ओरसे गजदंत पर्वत नीलसे मिले हैं। इससे विदेह क्षेत्र चार भागोंमें बट जाता है। दक्षिणकी ओर गजदंतके मध्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्रको देवकुरु और उत्तरकी ओर गजदंतोके मध्यके क्षेत्रको उत्तरकुरु कहते हैं। तथा पूर्व दिशाका सब क्षेत्र पूर्व विदेह और पश्चिम दिशाका सब क्षेत्र पश्चिम विदेह कहलाता है। पहले और तीसरे और चौथे भाग के दो-दो भाग और हो जाते है। इस प्रकार तीसरे और चौथे भागके कुल चार भाग हुए। इन चार भागोमेंसे भी प्रत्येक भागकी नदियों और पर्वतोंके कारण आठ आठ भाग हो जाते हैं। ये कुल बत्तीस हुए। यही बत्तीस विदेह हैं। इनमें भरत और ऐरावत क्षेत्रके समान आर्य और म्लेच्छ खण्ड स्थित हैं। विभूतिवाले नारायण आदि व तीर्थंकर आर्य खण्डोंमें उत्पन्न होते हैं। जम्बूद्वीप में कुल चौतीस ढ़ाईद्वीपमें एकसौ सत्तर आर्यखण्ड हुए। तीर्थंकरोंकी उत्कृष्ट संख्या १७० बतलाई है वह इसी अपेक्षासे बतलाई है। विदेहोंमें जो सीमंधर आदि बीस तीर्थंकर कहे गये हैं वे ढ़ाईद्वीपके बीस महाविदेहोंकी अपेक्षासे कहे गए जानना चाहिए। क्योंकि पूर्वोक्त विभागानुसार जम्बूद्वीपके चार महाविदेह हुए। अतः ढ़ाईद्वीपके बीस महाविदेह होते हैं। विशेष विधि त्रिलोकप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थोंसे जान लेना चाहिए।

[२४] शंका-तीन लोकमें अकृत्रिम चैत्यालय कहाँ कहाँ हैं ?

[२४] *समाधान*-चित्रा पृथ्वीके नीचे भवनवासियोंके भवनोंमें सात करोड बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय हैं। मध्यलोकमें तेरहवें द्वीप तक चारसो अठावन अकृत्रिम चैत्यालय हैं। व्यन्तर देवोंके भवनोंमें और ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें असंख्यात चैत्यालय हैं। और उर्ध्वलोकके चौरासी लाख सत्तानवें हजार तेईस अकृत्रिम चैत्यालय हैं। मध्यलोक चैत्यालय मेरु, कुलाचल, विजयार्ध, शाल्मलीवृक्ष, जम्बूवृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्यवृक्ष, रतिकर, दधिमुख, अञ्जनगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर और इष्वाकार पर्वतों पर स्थित हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२५] शंका-आर्य म्लेच्छोंका विशद वर्णन क्या है ?

[२५] ***समाधान***-जो स्वयं गुणवाले हैं और गुणवालोंकी संगति करते है वे आर्य कहलाते हैं, और शेष म्लेच्छ। आर्योंके मुख्यतः दो भेद है-ऋद्धि प्राप्त और ऋद्धि रहित। आगममें जो बुद्धि आदि ऋद्धियां बतलाई हैं, तप आदिकसे वे जिनके उत्पन्न हो जाती हैं वे ऋद्धिप्राप्त आर्य हैं। तथा ऋद्धिरहित आर्य पांच प्रकारके बतलाये हैं।

क्षेत्रार्य, जात्यार्य, कर्मार्य, चरित्रार्य, और दर्शनार्य। काशी आदि देशोंमें पैदा हुए क्षेत्रार्य हैं। इक्ष्वाकु आदि जातियोंमें पैदा हुए जात्यार्य हैं। असि आदि षट्कर्मोंसे आजीविका करनेवाले कर्मार्य हैं। ये तीन प्रकारके होते हैं-अविरति, श्रावक और मुनि, इनमें मुनि असि आदि कर्म नहीं करते। इसी प्रकार चरित्रार्य और दर्शनार्योंका स्वरुप समझना चाहिए। जो हीन है, जिनमें कर्मादि षट्कर्म व्यवस्था नहीं पायी जाती वे म्लेच्छ कहलाते हैं। ये दो प्रकारके हैं-अन्तर्द्वीपज और कर्मभूमिज। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्रके अन्तर्द्वीपोंमें जो निवास करते हैं ऐसे कुभोगभूमियों मनुष्य अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कहलाते हैं। तथा कर्मभूमिमें पैदा हुए शक, यवनादिक कर्मभूमिज म्लेच्छ कहलाते है। लोकानुयोगके गन्थोंमें म्लेच्छ खण्डोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंको भी म्लेच्छ बतलाया है। इस प्रकार म्लेच्छ मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं।

चौथा अध्याय-

[२६] शंका-अन्यत्र जो बारह स्वर्गोंकी मान्यता है उसका प्रकृत मान्यतासे कैसे मेल बैठता है ?

[२६] ***समाधान***-इन्द्र आदि दस प्रकारके देवोंकी कल्पना होनेसे स्वर्गोंको कल्प कहते हैं। अब जब इन्द्र आदि दस प्रकारके देवोंकी कल्पना है जिनमें, वे कल्प कहलाते हैं यह अर्थ मुख्य रुपसे विवक्षित हो जाता है तो कल्प सोलह प्राप्त होते हैं। किन्तु इन सोलह कल्पोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्र बारह ही हैं। इसलिए जब इनकी मुख्यतासे विवक्षा हो जाती है तब कल्प बारह प्राप्त होते हैं।

त्रिलोकसारकी गाथा ४५२ और ४५३ में जो सोलह और ४५४ में बारह कल्प बतलाये हैं वहाँ भी वही विवक्षा मुख्य रखी हैं। इस प्रकार सोलह स्वर्गोकी मान्यताके साथ बारह स्वर्गोकी मान्यताका सहज मेल बैठ जाता हैं। यह विवक्षाभेद है, मान्यताभेद नहीं।

पांचवा अध्याय-

[२७] शंका-छह द्रव्योंका अस्तित्व किसपर सिद्ध होता है ?

[२७] ***समाधान***-*आत्माका अस्तित्व अनुभवगम्य है। भौतिक या जड़ पदार्थोसे आत्मा भिन्न है यह अनुभवसे जाना जाता है। चेतन और अचेतनका विभाग आत्माके अस्तित्व पर ही निर्भर है। ज्ञान ओर दर्शन आदिका अन्वय आत्माको छोड़कर अन्यत्र नहीं प्रतीत होता, इससे मालूम पड़ता है कि आत्मा है। रुप रस आदि गुणवाला पुद्गल तो स्पष्ट ही है। अब रहे धर्मादिक चार द्रव्य सो इनका अस्तित्व इनके कार्योसे जाना जाता है। धर्म द्रव्यका कार्यगमन करनेवाले जीव और पुद्गलोंके गमनमें सहायता करना है। अधर्म द्रव्यका कार्य ठहरनेवाले जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें सहायता करता है। आकाश द्रव्यका कार्य सबको अवकाश देता है और कालद्रव्यका कार्य सबके परिणमनमें सहायता करना है। कारण दो प्रकारके होते हैं-साधारण कारण और असाधारण कारण। जो सबके लिए समान कारण हो उसे साधारण कारण कहते हैं। और प्रत्येक कार्यके अलग अलग कारणको असाधारण कारण कहते हैं। ये धर्मादिक द्रव्य गति आदि कार्यके साधारण कारण हैं। इसलिए इनका अस्तित्व सिद्ध होता है। इस प्रकार द्रव्य छह हैं यह सिद्ध होता हैं।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[२८] शंका-मूर्ति और आकारमें क्या भेद है?

[२८] *समाधान-रूप रसादिको मूर्ति कहते है और वस्तुके स्वरूपको आकार कहते है। पुदगल द्रव्य मूर्ति भी है और साकार भी। अन्य द्रव्य साकार तो है किन्तु मूर्त नहीं। आकारका अर्थ संस्थान भी है किन्तु यह अर्थ यहां विवक्षित नहीं।*

[२९] शंका-वर्तना और परिणामोमें क्या अन्तर है ?

[२९] *समाधान-बदल करानेको बर्तना कहते हैं। जैसे धर्मादिक द्रव्य पूर्व पर्यायका त्याग करके नवीन पर्यायकी उत्पत्तिके प्रति यद्यपि स्वयं व्यापार करते हैं परन्तु उनका यह व्यापार बाह्य निमित्तके बिना नहीं बनता अत: उसमें बदल कराना काल का कार्य है। इस प्रकार यहां वर्तनाका स्वरुप बदल कराना प्राप्त होता हैं, जो कालका मुख्य धर्म है और परिणाम द्रव्यकी उस अवस्थाको कहते है जो एक अवस्थाका त्याग करके दूसरी अवस्था रुप हो जाती है और हलचल क्रियासे रहित हैं। तात्पर्य यह हैं कि बर्तना कारण है और परिणाम कार्य। बर्तना कालद्रव्यका स्वभाव है और परिणाम प्रत्येक द्रव्यकी प्रति समय होनेवाली पर्याय। इस प्रकार इन दोनोंमें अन्तर है।*

[३०] शंका-परमाणुका क्या स्वरुप है ?

[३०] *समाधान-जिसका आदि, अन्त और मध्य यह कुछ भी नहीं, जिसे इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं किया जा सकता और जो अप्रदेशी है अर्थात् एक प्रदेशको छोड़कर जिसके द्वितीयादिक प्रदेश नहीं पाये जाते उसे परमाणु कहते है। यह द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा परमाणुका स्वरुप बतलाया है। किन्तु पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा विचार करने पर तो परमाणुका भी आदि मध्य और अन्त प्राप्त होता है तो भी उनका विभाग नहीं किया जा सकता इसलिए उनके*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधारभूत द्रव्यको परमाणु कहते हैं। इस लक्षणके करने पर परमाणुके और सब विशेषण पूर्ववत् हैं।

[३१] शंका-द्वयणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ?

[३१] *समाधान*-दो या दोसे अधिक परमाणुओंका संयोग स्निग्ध या रुक्षगुणके कारण होकर द्वयणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति होती है। 'द्वयधिकादिगुणानांतु' इस सूत्रमें गुण शब्द अविभाग प्रतिच्छेदका वाची है। गुणका यह अंश जिसमें बुद्धिसे खण्डकल्पना सम्भव नहीं। अविभाग प्रतिच्छेद कहलाता हैं। जब कोइ परमाणु जघन्य गुणवाला अर्थात् एक अविभाग प्रतिच्छेदवाला होता है तो उसका अन्य परमाणुसे किसी भी हालतमें बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार समान गुणवालोंका परस्पर बन्ध नहीं होता, किन्तु दो अधिक गुणवालेका दो गुणहीन गुणवालेके साथ बन्ध हो जाता हैं।

इससे यह फलित हुआ कि स्निग्ध गुणवालेका रुक्ष गुणवालेके साथ बन्ध होता हैं। स्निग्ध गुणवालेका स्निग्ध गुणवालेके साथ बन्ध होता हैं। रुक्ष गुणवालेका स्निग्ध गुणवालेके साथ बन्ध होता हैं और रुक्ष गुणवालेके रूक्ष गुणवालेके साथ भी बन्ध होता है। किंतु यह बन्ध परस्पर दो अधिक गुणोंके होनेपर ही होता है। और बन्ध हो जानेपर जो अधिक गुणवाला होता हैं तद्रुप दूसरा परिणम जाता है। अब यह प्रश्न होता हैं कि दो परमाणुओंका बन्ध सर्वात्मना होता है या एकदेशसे होता है ? इसका यह समाधान है कि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा कथंचित् सर्वात्मना बन्ध होता है तो भी वे दो परमाणु एक नहीं हो जाते क्योंकि तब वे दो परमाणु द्वयणक स्कन्धके अवयव हो जाते हैं। और पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा कथंचित् एकदेशेन बन्ध होता हैं। यदि सर्वथा सर्वात्मका बन्ध मान लिया जाय तो सब पुद्गल द्रव्य एक परमाणुपनेको प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जायेगा। और सर्वथा एकदेशेन बन्ध माना जाय तो बन्धके होनेपर हीनि गुणवाले परमाणुका अधिक गुणवाले परमाणुरूपसे परिणमन हो जाता है यह कथन नहीं बन सकता है। इस प्रकार द्व्यणुकादि स्कन्धोंकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है संक्षेपमें इसका विचार किया।

[३२] शंका-सूत्रकारके द्वारा उक्त द्रव्यके दोनों लक्षणोंका समन्वय किस प्रकार होता है ?

[३२] ***समाधान***-*जब जिसमें गुण और पर्याय पाये जाते हैं उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका यह लक्षण किया जाता है तब गुण अन्वयी होनेसे द्रव्यके ध्रौव्यभावको सूचित करता है और पर्याय व्यतिरेक होनेसे द्रव्यके उत्पाद और व्ययभावको सूचित करता है। इसी प्रकार जिसका उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य है उसे सत् कहते हैं, सत्का यह लक्षण किया जाता है तब भी उक्त बात ही प्राप्त होती हैं। इस प्रकार तत्त्वतः विचार करनेपर इन दोनों लक्षणोंका अभिप्राय एक ही हैं इसलिए इनका समन्वय हो जाता है।*

छठा अध्याय-

[३३] शंका-द्रव्ययोग और भावयोगका क्या स्वरुप है ?

[३३] ***समाधान***-*आत्मप्रदेशोंके परिस्पन्दको द्रव्ययोग कहते हैं। और इसके पैदा करनेकी शक्तिको भावयोग कहते हैं। यह योग निमित्तके भेदसे तीन प्रकारका है-मनोयोग, वचनयोग और काययोग। वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके रहते हुए शरीर नामकर्मके उदयसे औदारिकादि कायवर्गणाओंमेंसे किसी एक प्रकारकी वर्गणाओंके आलम्बनसे जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है, यह द्रव्य*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काययोग है और आत्मामें जो इसको पैदा करनेकी शक्ति है वह भाव काययोग है। वचनवर्गणाओंका अवलम्बन व वचनलब्धिके रहते हुए वचनोच्चारणके सन्मुख हुए आत्माके जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है वह द्रव्यवचनयोग है और आत्मामें जो इसे पेदा करनेकी शक्ति है वह भाव वचनयोग है। मनोवर्गणाओंके आलम्बनसे मानस परिणामके सन्मुख आत्माके जो आत्मप्रदेश परिस्पन्द होता है वह द्रव्य मनोयोग है और आत्मामें जो इसे पैदा करनेकी शक्ति है वह भाव मनोयोग है।

[३४] शंका-अजीवाधिकरणका रहस्य क्या है ?

[३४] *समाधान*-आत्माके आस्त्रवरूप परिणामोंके होनेमें बाह्य चेतन और अचेतन पदार्थ निमित्त होते हैं। वहां अधिकरणसे इन्हींको ग्रहण किया है। जिससे आत्मा आस्त्रवके सन्मुख होता है वह अधिकरण कहलाता है। वह अधिकरण दो प्रकारका है-जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण। जीवाधिकरणमें जीवकी सब प्रवृत्तियोंको ग्रहण किया है। मुख्यतः उन प्रवृत्तियोंके एकसो आठ भेद हो सकते हैं जो "आद्यं संरम्भ " इत्यादि सूत्र द्वारा गिनाये ही हैं। अजीवाधिकरणमें हिंसादिके प्रयोजन जड़ पदार्थोंको ग्रहण किया है। तात्पर्य यह है कि जिन-जिन बाह्य पदार्थोंके निमित्तसे आत्माके आस्त्रवरूप परिणाम होते हैं या कर्मोंका आस्त्रव होता है वे सब अधिकरणमें लिये जाते हैं। अब यदि वे चेतन होते हैं तो उनका ग्रहण जीवाधिकरणमें किया जाता है। और अचेतन होते है तो उनका ग्रहण अजीवाधिकरणमें किया जाता है। इस प्रकार अजीवाधिकरणसे उन जड़ पदार्थोंका ग्रहण करना चाहिये जो निरन्तर आत्माके परिणामोंका मलिन करते रहते हैं जिससे कर्मोंका आस्त्रव होता है। प्रकृतमें अजीवाधिकरणका यही रहस्य है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३५] शंका-केवलीका अवर्णवाद क्या है ?

[३५] ***समाधान-जिसमें*** *जो दोष न हो उसका उसमें कथन करना अर्वणवाद कहलाता हैं। केवलीके कवलाहार नहीं होता तब भी केवलीके कवलाहारका कथन करना केवलीका अर्वणवाद हैं। बात यह है कि जब यह जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़कर बारहवें गुणस्थानमें प्रविष्ट होता है तब ध्यानरुप वह्निसे इसके शरीरकी शुद्धि हो जाती हैं। शरीरमें सब निगोदिया जीवोंका अभाव हो जाता हैं। तेरहवें गुणस्थानमें तो इसके प्रभावसे एक भी निगोदिया जीव नहीं रहता। इसके प्रवृत्तिका वह भाग समाप्त हो जाता जिससे शरीरमें मलका संचय होकर उसमें निगोदिया जीव पैदा होते है। सातिशय पुरुष विशेषको यदि छौड़ दिया जाय तो यह निश्चय है कि जो आहार पानीको ग्रहण करेगा उसके शरीरमें मलमूत्रका संचय अवश्य होगा और इससे उसके शरीरमें कृमि व निगोदिया जीवोंकी भी उत्पत्ति होगी चूंकि केवलीके शरीरमें इस प्रकारके जीवोंका निषेध किया है।*

इससे ज्ञात होता है कि केवलीके कवलाहार नहीं होता। इस संसारी जीवोंके शरीरमें त्रस और निगोदिया जीव भरे पड़े हैं। वे निरन्तर शरीरका शोषण कर रहे है जिससे शरीरमें उष्णता होकर आहार, पानी आदिकी आवश्यकता पड़ती है। पर केवलीके शरीरमें इस प्रकारकी उष्णताका कारण नहीं रहता। उनके शरीरका शोषण अब अन्य त्रस व निगोदिया जीवोंके कारण नहीं होता। अत: शरीरमें आन्तर उष्णता उत्पन्न होकर उनके शरीरका उपक्षय नहीं होता। और इसलिये प्रति समय उनके शरीरके जितने परमाणु निर्जीर्ण होते हैं उतने नवीन परमाणुओंका ग्रहण हो जानेसे कवलाहारके बिना भी उनके शरीरकी स्थिति बनी रहती हैं। जिस प्रकार कर्मवर्गणाओंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आने और जानेमें कार्मण शरीरकी स्थिति होती है उसी प्रकार अब उनके नोकर्म वर्गणाओंके आने और जानेसे शरीरकी स्थिति होती है। माना कि केवलीके अस्त्राताका भी उदय होता है। भूख या प्यास आदिका पैदा करना असाताका काम नहीं है। ये तो अपने कारणोंसे पैदा होते हैं।

हां असाताके उदय वा उदीरणमें ये भूख व प्यास आदि नोकर्म हो सकते हैं। चूंकि जिन कारणोंसे हम संसारी जनोंको भूख व प्यास आदिकी बाधा होती हैं वे कारण केवली जिनके नहीं पाये जाते अतः उन्हें भूख व प्यास आदिकी बाधा नहीं होती। और चूंकि उन्हें भूख व प्यास आदिकी बाधा नहीं होती। इसलिये उन्हे कवलाहार आदिकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इससे निश्चय होता है कि केवलीके कवलाहारका कथन करना अवर्णवाद है। इसी सबबसे शास्त्रकारोंने कवलाहारको केवलीका अवर्णवाद बतलाया है।

[३६] शंका-अकाम निर्जराका क्या स्वरुप है ?

[३६] ***समाधान***-*कायक्लेश आदिके जिन साधनोंसे कर्मोंकी निर्जरा तो अधिकतासे हो किन्तु आत्माका विकास न होकर वह संसारमें ही परिभ्रमण करता रहे उस निर्जराको अकाम निर्जरा कहते हैं। यह जीव संसारमें अपनी इच्छाके बिना विविध प्रकारके कष्ट सहता है। कभी यह जेलखानेमें डाल दिया जाता है, कभी इसका आहार पानी रोक दिया जाता है। इससे उदयप्राप्त कर्मोंकी तीव्र उदीरणा होकर वे निजीर्ण होने लगते है और अनुदयप्राप्त कर्मोंकी भी यथायोग्य उदयप्राप्त कर्मोंके द्वारा निर्जरा होने लगती है। इस प्रकार बिना इच्छाके जो कष्ट सहा जाता है और उससे जो कर्मोंकी निर्जरा होती है उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[३७] शंका-सम्यक्त्व तो आत्माका गुण है वह आयुकर्मके आस्रवका कारण कैसे हो सकता है ?

[३७] *समाधान-सम्यक्त्वके रहनेपर तिर्यञ्च और मनुष्योंके देवायुका ही आस्रव होता है यह बतलानेके लिये सम्यक्त्वको भी आस्रवके कारणोंमें गिन दिया है। सराग संयम और संयमासंयमको भी आस्रवके कारणोंमें गिनाया है। यहां भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये। अन्यत्र जहां भी आत्मपरिणाम आस्रवके कारण बतलाये हो वहां यही समझना चाहिये कि उन परिणामोंके होनेपर ही जीवके उस प्रकारकी योग्यता होती है।*

सातवां अध्याय-

[३८] शंका-अतिचार और अनाचारोंमें क्या अन्तर है ?

[३८] *समाधान-जिस व्रतकी जो मर्यादा है उसका अतिक्रम करके आचरण करनेको अतिचार कहते हे और व्रतके विरुद्ध आचरणको अनाचार कहते हैं। अतिचारके होनेपर व्रत सदोष हो जाता है और अनाचरणके होनेपर व्रतका भंग हो जाता हैं।*

तात्पर्य यह है कि जब व्रतके रक्षाकी भावना रहते हुए मर्यादाका उल्लंघन होता है तब अतिचार दोष लगता है और जब जीव व्रतकी रक्षाकी भावनाका त्याग करके विरुद्ध आचरण करने लगता है तब अनाचार होता है। अतिचारमें एकदेश व्रतका भंग है और अनाचारमें व्रतका पूरा भंग है। एकदेश व्रतका भंग कभी क्रिया द्वारा और कभी भावना द्वारा होता है और सर्वदेश व्रतका भंग व्रतकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावना और तद्रूप क्रिया इन दोनोंके त्यागसे होता हैं। इस प्रकार अतिचार और अनाचारमें यही अन्तर हैं।

[३९] शंका-उपभोग परिभोग परिणाम व्रत और उसके अतिचारोंका विशद अभिप्राय क्या है ?

[३९] ***समाधान***-*बारह व्रतोंका स्वीकार यावज्जीवनके लिये किया जाता है। इन बारह व्रतोंमें उपभोग परिभोग परिणामव्रतका भी अंतर्भाव हैं इसके स्वीकार करनेके पश्चात् यह सदाकाल रहता हैं यह निश्चित होता हैं। यद्यपि उपभोग परिभोगकी वस्तुओंका त्याग दो प्रकारका होता है-कुछका यावज्जीवनके लिये और कुछका नियतकालके लिये, तो भी उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत यह आत्माका परिणाम हैं अतः उपभोगपरिभोगकी वस्तुओंके नियतकालिक त्यागमें निमित्त पड़ने पर भी वह व्रतरुप परिणाम सदा बना रहता हैं। देशवकाशिकव्रत आदिमें भी यही क्रम जानना चाहिये। अब रही इसके अतिचारोंकी बात, सो इस विषयमें मतभेद हैं तो भी प्रकृतिमें यह विचार करना है कि तत्त्वार्थसूत्रमें इसके अतिचार किस अभिप्रायसे बतलाये हैं। मेरे ख्यालसे एक तो जिस श्रावकके उपभोगपरिभोग-परिमाण व्रतमें सचित्त आहारका त्याग भी गर्भित हैं उसकी प्रमुखतासे ये अतिचार गिनाये हैं। दूसरे श्रावकके घर अतिथि आते भी हैं। अतः यदि श्रावक आहार बनाते समय ये दोष उत्पन्न करता है तो भी ये अतिचार हो जाते हैं, क्योंकि इन दोषोंके कारण वह आहार अतिथिके योग्य नहीं रहता, और ऐसा करनेसे आहार तैयार करनेवाले श्रावकके परिणाम भी निर्मल नहीं रहते। यही सबब है कि सचित्ताहार आदिको अतिचारोंमें गिनाया है। चरित्रसारमें भी यही युक्ति दी है कि इनके कारण अतिथिका उपयोग इन सचित्त आदिके विषयमें जाता हैं।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आठवां अध्याय-

[४०] शंका-बन्धतत्त्वको चार भागोंमें ही क्यों बांटा गया ?

[४०] *समाधान- जब कोइ एक पदार्थ दूसरे पदार्थको आवृत्त करता है या उसकी शक्तिका घात करता है तब आचरण करनेवाले पदार्थमें आचरण करनेका स्वभाव, आचरण करनेका काल, आचरण करनेकी शक्तिका हीनाधिक भाव और आचरण करनेवाले पदार्थका परिणाम ये चार अवस्थाएं एकसाथ प्रकट होती है। यही बात प्रकृतिमें समझना चाहिये। प्रकृतिमें आत्मा आव्रियमाण और कर्म आचरण। अतः कर्मकी भी बन्धके समय उक्त चार अवस्थाएं प्रकट होती है जिन्हें प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध कहते हैं। ये चारों अवस्थाएं कर्मबन्धके प्रथम समयमें ही सुनिश्चित हो जाती हैं।*

उदाहरणार्थ जिस समय हम लालटेनको वस्त्रसे ढ़कते हैं उसी समय वस्त्रमें चार अवस्थाएं स्पष्टतः प्रतिभाषित होती है।

१-वस्त्रका स्वभाव लालटेनके प्रकाशको आवृत्त करना, २-निश्चित कालतक लालटेनके प्रकाशको आवृत किये रहना, ३- लालटेनके प्रकाशको आवृत करनेकी शक्तिका वस्त्रमें हीनाधिक रूपसे पाया जाना और आवृत करनेवाले वस्त्रका परिणाम।

[४१] शंका-विहायोगति नामकर्मका उदय किसके होता है ?

[४१] *समाधान-जिस कर्मके उदयसे जीव आकाशमें गमन करता है उसे विहायोगति नामकर्म कहते हैं। आकाश सर्वत्र है अतः पृथ्वी आदिपर गमन करना भी आकाशमें गमन करना है।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुख्यतः नरकगति आदिके कारण करनेके लिये यहां 'विहायम्' उपपद दिया है। वैसे पर्याप्त हो जाने पर जो प्राणधारीका गमन होता है उसमें विहायोगति नामकर्मका उदय कारण है।

तात्पर्य यह है कि पर्याप्त अवस्थासे त्रस जीवोंके विहाय गति नामकर्मका उदय होता है।

[४२] शंका-बन्धे हुए कर्मोमें अनुभागका विभाग किस क्रमसे होता है ?

[४२] समाधान-घातिया कर्मोका अनुभाग चार भागोंमें बटा है-लता, दारु, अस्थि और शैल। इनमें से लतारुप शक्ति और दारूका अनन्तवां भाग देशघाति अनुभाग है और शेष सर्वघाति अनुभाग हैं। सम्यक्त्वमें प्रकृतिमें देशघाति अनुभाग पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्वमे दारुका अनन्तवां भाग सर्वघाति अनुभाग पाया जाता है मिथ्यात्वमें दारुका अनन्त बहुभाग, अस्थि और शैलरुप अनुभाग पाया जाता है। ज्ञानावरणकी चार देशघाति दर्शनावरणकी तीन देशघाति पांच अन्तराय, चार संज्वलन और पुरुषदेव इनमें लता, दारु, अस्थि और शैल या लता और दारु, या केवल लतारुप चार प्रकारका अनुभाग पाया जाता हैं।

सम्यत्मिथ्यात्वके बिना शेष सब सर्वघाति, प्रकृतियोंमें शैल, अस्थि और दारुका अनन्त बहुभाग या अस्थि व दारूका अनन्त बहुभाग या दारूका अनन्त बहुभाग इस प्रकार तीन प्रकारका अनुभाग पाया जाता है। तथा पुरुषवेदके बिना शेष आठ नौ कषायोंमें शैल, अस्थि, दारु और लता या अस्थि दारु और लता या दारु और लता इस तरह तीन तरह तीन प्रकारका अनुभाग पाया जाता है।

अब रहे अघातिया कर्म, सो इनके पुण्यप्रकृति और पापप्रकृति इस तरह दो भेद हैं। पुण्यप्रकृतियोंका अनुभाग गुड़,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खांड, शर्करा और अमृतके समान माना है, और पापप्रकृतियोंका अनुभाग नीम, कांजीर, विष और हालाहलके समान माना है। यहां भी अनुभागका तीन प्रकारमें परिणमन जानना। अर्थात् पुण्य प्रकृतिसे गुड़ खांड, शर्करा और अमृतरूप या गुड़ और शर्करा रूप या गुड़ और खांड़ रूप अनुभाग होता है। और पाप प्रकृतियोंमें नीम, कांजीर, विष और हलाहल रुप या नीम, कांजीर और विषरूप या नीम और कांजीरका अनुभाग होता है।

[४३] शंका-प्रदेश बन्धका विभाग किस क्रमसे होता हैं ?

[४३] *समाधान*-यदि आयु कर्मका भी बन्ध हो रहा हैं तो आयुकर्मको सबसे थोड़ा द्रव्य मिलता है। नाम और गोत्रमें प्रत्येकको इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इन दोनों कर्मोंका द्रव्य समान रहता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तरायमें प्रत्येकको इससे अधिक द्रव्य मिलता है तो भी इनका द्रव्य परस्पर समान होता है। इससे मोहनीय कर्मसे अधिक द्रव्य मिलता है और इससे वेदनीय कर्मको अधिक द्रव्य मिलता है। घातिया कर्मोंको जो द्रव्य मिलता है उसमें सर्वघाति द्रव्य सब घातिद्रव्यका अनन्तवाँ भाग होता है और देशघाति द्रव्य अनन्त बहुभाग होता है। इससे भी देशघाति द्रव्यका बटवारा देशघाति प्रकृतियोंमें ही होता है, किन्तु सर्वघाति द्रव्यका बटवारा देशघाति और सर्वघाति दोनों प्रकारकी प्रकृतियोंमें होता है। परन्तु नौ नोकषायोंको देशघाति द्रव्य ही प्राप्त होता है, सर्वघाति नहीं। इस प्रकार यह प्रदेशबन्ध विभागका क्रम जानना।

[४४] शंका-कर्मोंके जीवविपाकी और पुद्गल-विपाकी इस प्रकार भेद करनेका कारण क्या है ?

[४४] *समाधान*-जीवविपाकी कर्मोंके उदयसे जीवकी अवस्थाओंका निर्माण होता है और पुद्गलविपाकी कर्मोंके उदयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर और उसकी सब अवस्थाओंका निर्माण होता है। आगममें जो गति आदि चौदह मार्गणारूप भेद किये है वे सब जीवविपाकी कर्मोके उदयादिके कार्य हैं। इसलिए जीवविपाकी कर्मोका नोआगमभाव निक्षेप भी बन जाता है। क्योंकि जो आगमभावमें कर्मफलका भोगनेवाला जीव लिया जाता है, परन्तु पुद्गलविपाकी कर्मोका नोआगम भावनिक्षेप नहीं प्राप्त होता, क्योंकि उनका फल जीवमें नहीं होता है। इसी सबबसे पुद्‌गलविपाकी कर्मोके नोआगमनभावका निषेध किया है। यही सबब है कि कर्मोके जीवविपाकी और पुद्गलविपाकी ये दो भेद किये गये हैं।

नौवाँ अध्याय-

[४५] शंका-समिति संवरका कारण क्यों हैं ?

[४५] *समाधान-समिति अशुभ प्रवृतिके निरोधका कारण है और शुभ प्रवृतिको संकुचित करती है इस प्रकार इसमें प्रवृतिकी अपेक्षा निवृतिकी प्रधानता है अतः समितिको संवरका कारण बतलाया है।*

[४६] शंका-जब परीषहजय निर्जराका कारण है तो परीषहोंको बन्धका कारण मानना पड़ता है और ऐसी हालतमें बन्धके कारणोंमें परीषहोंको अलगसे गिनना चाहिये ?

[४६] *समाधान-बन्धके कारणोंमें योगको छोड़कर शेष सारा परिवार मोहका है। योगको बन्धके कारणोंमें इसलिए गिनाया कि उसके निमित्तसे आत्मा कर्मोको ग्रहण करता है परन्तु कर्मोमें स्थित और अनुभागका मुख्य कारण तो कषाय ही है। अब देखना यह है कि किस कर्मके उदयसे कितनी परीषह होती है। ज्ञानावरणसे*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और अज्ञान परीषह होती है। दर्शनमोहनीयसे अदर्शन परीषह होती है। अन्तराय कर्मसे अलाभ परीषह होती है। चारित्रमोहनीयसे नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार परीषह होती है। तथा शेष परीषह वेदनीयके होने पर होती है। इस प्रकार इन परीषहोंके निमित्त हैं तो भी इनका कार्य मोहनीयके सद्भावमें ही होता हैं, मोहनीयके अभावमें नहीं। इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकारने बन्धके कारणोंमें परीषहका अलगसे निर्देश नहीं किया। और कारणके सद्भावकी अपेक्षा परीषहोंका सद्भाव बतलानेके लिए जहां तक उनके कारण पाये जाते हैं तहां तक उनका निर्देश किया। इस प्रकार सबसे बड़ी परीषह मोहनीयका उदय है।

[४७] शंका-भाषासमिति और सत्यधर्ममें क्या अन्तर है ?

[४७] ***समाधान***-*भाषासमितिमें प्रवृति करनेवाला मुनि, साधु और असाधुमें भाषा व्यवहार करता हुआ हित, मित, और प्रिय ही बोलता है यह तो भाषासमिति है। किन्तु सत्य धर्ममें इस प्रकार बोलनेका कोई नियम नहीं हैं। इसमें तो वे सब बातें समाविष्ट हैं जो दीक्षित और उनके भक्तोंके लिए ज्ञान और चारित्रका शिक्षण देते समय कही जाती है। भाषासमिति और सत्यधर्ममें यही अन्तर है।*

[४८] शंका-जिनेन्द्रदेवमें ग्यारह परीषह बतलानेका क्या कारण है ?

[४८] ***समाधान***-*वेदनीयकर्म मोहनीय कर्मके बिना अपना काम करनेमें पंगु है। आठ कर्मोंमें वेदनीय कर्मका पाठ जो घातिया कर्मोंके मध्यमें किया है, वह इसी प्रयोजनके दिखलानेके लिये किया है। चूंकि मोहनीय कर्मका समूल नाश दशवें गुणस्थानके अन्तमें हो जाता है इसलिए ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें तत्त्वतः कोई परीषह*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं पाई जाती। तब भी जिन परीषहों के कारण ग्यारहवें आदि गुणस्थानोंमें विद्यमान है, कारणकी अपेक्षा सद्भाव वहां बतलाया। चूंकि जिनन्द्रदेवके वेदनीयकर्मका उदय है और वेदनीयकर्मके सद्भावमें ग्यारह परीषह होती है इसलिए जिनन्द्रदेवके ग्यारह परीषह कही।

[४९] शंका-परीषह और उपसर्गमें क्या अन्तर है?

[४९] *समाधान-परीषह व्यापक है और उपसर्ग व्याप्य। उपसर्ग पर निमित्त से ही होता है और परीषहके होनेमें ऐसा कोई नियम नहीं। यही सबब है कि उपसर्गजयको अलगसे संवरका कारण नहीं कहा। उपसर्गको परीषहमें ही सम्मिलित कर लिया गया है। यह दोनोंमें अन्तर है।*

[५०] शंका-परीषह और कायक्लेशमें क्या अन्तर है ?

[५०] *समाधान-जो अन्तरंग या बाह्य निमित्तसे साधु की इच्छाके बिना अपने आप प्राप्त होती हैं वे परीषह है और कायक्लेश स्वयंकृत होता है। इस प्रकार इन दोनोंमें यही अन्तर है।*

[५१] शंका-आलोचना, प्रतिक्रमण और तदुभयमें क्या अन्तर है ?

[५१] *समाधान-आलोचनाके दस दोषोंसे रहित होकर गुरुके समक्ष प्रमादका निवेदन करना आलोचना नामका प्रायश्चित कहलाता है। मेरा दोष मिथ्या होओ इस प्रकार प्रतिकारका व्यक्त करना प्रतिक्रमण नामका प्रायश्चित कहलाता है। और जिसमें आलोचना तथा प्रतिक्रमण ये दोनों किए जाते है उसे तदुभय नामका प्रायश्चित कहते हैं। यद्यपि सभी प्रतिक्रमण आलोचनापूर्वक होते हैं*

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इसलिए प्रतिक्रमण और तदुभयमें कोई भेद नहीं रहता है तो भी इनके भेदका कारण यह है कि प्रतिक्रमण नामके प्रायश्चितको शिष्य करता है जो गुरुके सामने दोषोंके निवेदन कर देनेपर उनकी आज्ञासे किया जाता है और तदुभय नामके प्रायश्चितको स्वयं गुरु कहता है। इस प्रकार इन तीनोंमें अंतर जानना चाहिए।

[५२] शंका-धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहांसे कहां तक ?

[५२] *समाधान*-सर्वार्थसिद्धिमें बतलाया है कि अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके चारों प्रकारका धर्मध्यान होता है। तथा शुक्लध्यानके चार भेदोंमेंसे पृथक्त्व विर्तक वीचार नामक पहला ध्यान उपशम श्रेणीके सब गुणस्थानमें और क्षपक श्रेणीके दशवें गुणस्थान तक होता है। एकत्ववितर्क वीचार नामका दूसरा ध्यान क्षीणमोह गुणस्थानमें होता है। सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपाति नामका तीसरा ध्यान संयोगकेवलीके काययोगके सूक्ष्म हो जानेपर होता है और व्युपरतक्रिया निवृति नामका चौथा ध्यान अयोगकेवलीके होता हैं किन्तु धवल टीकामें बतालाया हैं कि धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे लेकर दशवें गुणस्थान तक होता हैं। शुक्लध्यानका पहला भेद ग्यारहवें गुणस्थानमें होता हैं और दूसरा भेद बारहवें गुणस्थानमें होता हैं। पहला भेद बारहवेंके प्रारम्भमें भी पाया जाता हैं। इतने अन्तरको छोड़कर शेष कथन सर्वार्थसिद्धिके समान हैं। इस मतभेदका कारण यह हैं कि वीरसेनस्वामीने बतलाया हैं कि सकषाय अवस्थामें धर्मध्यान और कषायरहित अवस्थामें शुक्लध्यान होता है किंतु सर्वार्थसिद्धिकारने धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें इस प्रकार अन्तर नहीं माना हैं। उनके मतसे श्रेणी आरोहणके पूर्वतक धर्मध्यान और श्रेणीमें शुक्लध्यान होता है। तत्त्वत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह विवक्षाभेद हैं।

[५३] शंका-गुणश्रेणी निर्जराका क्या कारण हैं ?

[५३] ***समाधान***-*सम्यग्दर्शनादिक गुण, गुणश्रेणी निर्जराका कारण है।*

[५४] शंका-पुलाकादि मुनियोमें किन कारणोंसे भेद होता है ?

[५४] ***समाधान***-*ये सब मुनि निर्ग्रन्थ हैं, केवल चारित्रकी न्युनाधिकताके कारण इनमें भेद हैं। जो उत्तर गुणोंको नहीं पालते किन्तु मूल गुणोंमें भी पूर्णताको नहीं प्राप्त हैं वे पुलाक मुनि कहलाते हैं। पुलाक प्यालको कहते हैं। वह जैसा सार भाग रहित होता है उसी प्रकार इन मुनियोंको जानना चाहिए। जो व्रतोंको तो पूरी तरह पालते हैं किंतु शरीर और उपकरणोंको संस्कारित करते रहते हैं, ऋद्धि और यशकी अभिलाषा रखते हैं आदि वे वकुश मुनि कहलाते है।*

कुशील मुनि दो प्रकारके हैं-प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। जो मूलगुणों और उत्तरगुणोंको पालते तो है पर कदाचित् उत्तरगुणोंकी विराधना कर लेते है वे प्रतिसेवनाकुशील मुनि कहताले हैं। जो ग्रीष्मकालमें जंघाप्रक्षालन आदिके कारण अन्य कषायके उदयके आधीन होते हुए भी संज्वलन कषाययुक्त हैं वे मुनि कषायकुशील मुनि कहलाते हैं। जिनके अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त होनेवाला है वे निर्ग्रन्थ मुनि कहलाते हैं। जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाश कर दिया है वे स्नातक मुनि कहलाते हैं। इस प्रकार उपर जो इनके लक्षण दिये हैं इन्हींसे इनके भेदका कारण ज्ञात हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशवां अध्याय-

[५५] शंका-मोक्षमें भव्यत्व भावका नाश क्यों हो जाता है ?

[५५] *समाधान-भव्यत्व और अभव्यत्व योग्यता-विशेषसे सम्बन्ध रखते हैं। ये जीवके स्वभाव नहीं। यदि इन्हें स्वभाव मान लिया जाय तो जिस प्रकार स्वभाव भेदसे पाँच अचेतन द्रव्य माने हैं उसी प्रकार स्वभाव भेदसे दो अचेतन द्रव्य हो जायेगे। परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि शक्तिकी अपेक्षा सबकी योग्यता समान मानी है। यह भेद तो केवल व्यक्ति होने और न होनेकी अपेक्षा किया गया है। अब जिसके व्यक्ति हो जाती है उसके भव्यत्व भावके माननेका कारण नहीं। जब तक पूर्व अवस्था अर्थात् कारण अवस्था हैं तभीतक भव्यत्व भावका व्यवहार होता है, कार्य अवस्थामें नहीं। उदाहरण विवक्षित मिट्टी घट बननेकी योग्यता अभीतक कही जाती है जबतक उसका घट रुपसे परिणमन नहीं हुआ। घट अवस्थाके उत्पन्न हो जानेपर तो इस मिट्टीमें घट बनने की योग्यता है यह व्यवहार समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिए। भव्यत्व और अभव्यत्व भावको जो पारिणामिक कहा है सो उसका कारण यह है कि इन भावोंके होनेमें कर्मोंके उदयादिकी अपेक्षा नहीं पड़ती। ईसी कारण मोक्षमें भव्यत्व भावका अभाव बतलाया है।*

[५६] शंका-मुक्त जीवोंका निवास कहाँ हैं ?

[५६] *समाधान-लोकाग्रमें मनुष्यलोकके ठीक बराबर उसकी शोधमें सिद्धलोक है इसका ऊपरी भाग अलोकाकाशसे लगा हुआ हैं। और तनुवातवलयसे व्याप्त है वहीं सिद्ध जीवोंका निवास है। आठवीं पृथिवी जिसे सिद्धशिला कहते हैं सिद्धलोकसे बहुत नीचे है। सिद्ध जीवोंका इससे स्पर्श नहीं है।*

समाप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण-संग्रह

शब्द	अध्याय	सूत्र
अकामनिर्जरा	६	१२
अक्षिप्र	१	१६
अगारी	७	२०
अगृहीत मिथ्यादर्शन	८	२
अघातिया	८	४
अङ्गोपाङ्ग	८	११
अचक्षुर्दर्शन	८	७
अचौर्याणुव्रत	७	२०
अजीव	१	४
अज्ञातभाव	६	६
अज्ञान	८	१
अज्ञानपरीषहजय	९	९
अण्डज	२	३३
अणु	५	२५
अणुव्रत	७	२
अतिथिसंविभागव्रत	७	२१
अतिचार	७	२३
अतिभारारोपण	८	२५
अदर्शन परीषह	९	९
अधिगमज सम्यग्दर्शन	१	३
अधिकरण क्रिया	६	५
अधिकरण	६	६
अध्रुव	१	६
अधोव्यतिक्रम	७	३०
अन्तर	१	८
अनिःसृत	१	१६
अनुक्त	१	१६
अनुगामी अवधिज्ञान	१	२२
अननुगामी अवधिज्ञान	१	२२
अनवस्थित	१	२२
अनीक	४	४
अनर्पित	५	३२
अनाभोग	६	५
अनाकाँक्षा	६	५
अनुमत	६	८
अनुभोगनिक्षेपाधिकरण	६	९
अन्तराय	६	१०
अनुबीचिभाषण	७	५
अनृत-असत्य	७	१४
अनगारी	७	२०टि
अनर्थदण्डव्रत	७	२१
अन्यदृष्टिप्रशंसा	७	२३
अन्नपाननिरोध	७	२५
अनङ्गक्रीडा	७	२८
अनादर	७	३३
अनुभागबन्ध	८	३
अन्तराय	८	४
अनुजीविगुण	७	४टि
(टि.) अनंतानुबंधी	८	९
अन्तर्मुहूर्त	८	२०टि
अनुभवबन्ध	८	२१
अनुप्रेक्षा	९	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
अनित्यानुप्रेक्षा	९	७	अर्हद्भक्ति	६	२४
अनशन	९	२५	अल्पबहुत्व	१	९
अनुप्रेक्षा	९	२५	अलाभ परीषहजय	९	९
अनिष्टसंयोगजआर्तध्यान	९	२५	अल्पबहुत्व	१०	९
अनन्त वियोजक	९	४५टि	अवधिज्ञान	१	९
अन्तर	१०	९	अवग्रह	१	१५
अप्रत्याख्यान	६	५	अवाय	१	१५
अप्रत्यवेक्षितनिक्षेपा.	६	९	अवस्थित	१	२२
अपध्यान	७	२१	अविग्रहवती	२	२७
अपरिगृहीतेत्वरिकागमन	७	२८	अवर्णवाद	६	१३
अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितो.	७	३४	अविरति	८	१
अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितादान	७	३४	अवधिज्ञानावरण	८	६
अप्रत्यख्यानावरण	८	९	अवधिदर्शनावरण	८	७
अपर्याप्त नामकर्म	८	११	अविपाक निर्जरा	८	२३
अपर्याप्तक	८	११	अवमोदर्य	९	१४
अपायविचय	९	३६	अवगाहन	१०	९
अब्रह्मकुशील	७	३६	अशुभ योग	६	३
अभिनिबोध	१	१३	अशरणानुप्रेक्षा	९	७
अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग	६	२४	अशुचित्यानुप्रेक्षा	९	७
अभिषयाहार	७	३५	अशुभ	८	११
अमनस्क	२	११	अस्तिकाय	५	१टि
अयशःकीर्ति	८	११	असमीक्ष्याधिकरण	७	३२
अरति	८	११	असद्वेद्य	८	८
अरति परिषहजय	९	९	असंप्राप्तसृपाटिकास.	८	११
अर्थ संक्रांति	९	४४	अस्थिर	८	११
अर्थावगाह	९	१८	अहिंसाणुव्रत	७	२०
अर्पित	५	३२	आक्रन्दन	६	११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र
आक्रोश	९	९
आचार्यभक्ति	६	२४
आचार्य	९	२४
आज्ञाव्यापादिकी	९	३५
आज्ञा विचय	९	३६
आत्मरक्ष	४	४
आतप	८	११
आदाननिक्षेपणसमिति	७	४
आदेय	८	११
आदान निक्षेप	९	५
आनयन	७	१
आनुपूर्व्व	८	११
आभियोग्य	४	४
आभ्यतरोपधि व्युत्सर्ग	९	३६
आम्नाय	९	२४
आयु	३	३६
आरम्भ	६	८
आर्तध्यान	९	३३
आलोकितपानभोजन	७	४
आलोचना	९	२२
आवश्यकपरिहाणि	६	२४
आसादन	६	१०
आस्त्रव	१	४
आस्त्रवानुप्रेक्षा	९	७
आस्त्रव	६	१
आहार	२	२७
आहारक	२	३६

शब्द	अध्याय	सूत्र
इष्टवियोगज आर्तध्यान	९	३१
इन्द्रिय	२	१४
इन्द्र	४	४
ईर्यापथ आस्त्रव	६	४
ईर्यापथ क्रिया	६	५
ईर्यासमिति	७	४
ईर्या	९	५
ईहा	१	१५
उच्छ्वास	८	११
उच्चगोत्र	८	१२
उत्सर्पिणी	६	२७
उत्पाद	५	३०
उत्तम क्षमा	९	६
उत्तम मार्दव	९	६
उत्तम आर्जव	९	६
उत्तम शौच	९	६
उत्तम सत्य	९	६
उत्तम संयम	९	६
उत्तम तप	९	६
उत्तम त्याग	९	६
उत्तम आकिञ्चन्य	९	६
उत्तम ब्रह्मचर्य	९	६
उत्सर्ग	९	५
उदय-औदयिक भाव	२	१
उद्योत	८	११
उपशम औपशमिकभाव	२	१
उपयोग	२	८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र
उपकरण	२	१७
उपयोग	२	१८
उपपाद जन्म	२	३१
उपकरण-संयोग	६	९
उपघात	६	१०
उपभोग परिभोग प.	७	२१
उपघात	८	११
उपस्थापना	९	२२
उपचार विनिमय	९	२३
उपाध्याय	९	२४
ऊर्ध्वव्यतिक्रम	९	३०
ऋजुमति मनःपर्यय	१	२३
ऋजुसूत्र	१	३३
एकविध	१	१६
एकान्त मिथ्यात्व	८	१
एकत्वानुप्रेक्षा	९	७
एकत्ववितर्क	९	४२
एवंभूत नय	१	४३
एषणासमिति	९	५
औपशमिक सम्यक्त्व	२	३
औपशमिक चारित्र	२	३
कर्मयोग	२	२५
कर्मभूमि	३	३७
कल्पोपपन्न	४	१७
कल्पातीत	४	१७
कल्प	४	२३
कषाय	६	४

शब्द	अध्याय	सूत्र
कृत	६	८
कन्दर्प	७	३२
कषाय	८	१
कषाय कुशील	९	४६
काल	१	८
कार्मण शरीर	२	३६
काययोग	६	१
कायिकी क्रिया	६	५
कारित	६	८
काय निसर्ग	६	९
कारुण्य	७	११
कांक्षा	७	२३
कामतीव्राभिनिवेश	७	२८
काययोग दुष्प्रणिधान	७	३३
कालातिक्रम	७	३६
कायक्लेश	९	१९
काल	१०	९
किल्विषक	४	४
क्रिया	५	२२
कीलक संहनन	८	११
कुप्य-प्रमाणातिक्रम	७	२९
कुब्जक संस्थान	८	११
कुल	९	२४
कुशील	९	४६
कूटलेखा क्रिया	७	२६
कृत	६	८
केवलज्ञान	१	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र
केवलज्ञान	२	४
केवलदर्शन	२	४
केवलीका अवर्णवाद	६	१३
केवलज्ञानावरण	८	६
केवलदर्शनावरण	८	७
क्रोध प्रत्याख्यान	७	५
कोड़ाकोड़ी	८	१४टि
कौत्कुच्य	७	३२
क्षय क्षायिकभाव	२	१
क्षयोपशम-क्षयोपशम	२	१
क्षयोपशम दानादि	२	४
क्षायिक सम्यक्त्व	२	४
क्षायिक चरित्र	२	४
क्षायोपशमिक सम्यक्त्व	२	५
क्षायोपशमिक चरित्र	२	५
क्षान्ति	३	१२
क्षिप्र	१	१६
क्षुपापरीषह जय	९	९
क्षेत्र	१	८
क्षेत्र	१०	९
क्षेत्रावस्तुप्रमाणातिक्रम	७	२९
क्षेत्रवृद्धि	७	३०
गर्भजन्म	२	३१
गति नामकर्म	८	११
गन्ध	८	११
गण	९	२४
गति	१०	९
ग्लान	९	२०
गुणप्रत्यय	१	२१
गुण	५	३८
गुण	५	३४
गुण	५	४१
गुणव्रत	७	२०टि
गुप्ति	४	२
गुणस्थान	४	१०टि
गृहीत मिथ्यात्व	८	१
गोत्र	८	४
घातियाकर्म	८	४
चक्षुर्दर्शनावरण	८	७
चर्यापरिषहजय	९	२
चरित्र	९	२
चरित्रविनय	९	२३
चरित्र	१०	९
चिन्ता	१	१३
छेद	७	२५
छेदोपस्थापना	९	१८
छेद	९	२२
जघन्यगुणसहित परमाणु	५	३४
जरायुज	२	३२
जाति नामकर्म	८	३१
जीव	१	४
जीविताशसा	७	३७
जुगुप्सा	८	९
ज्ञातभाव	६	६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
ज्ञानोपयोग	२	९टि	द्रव्य	१	५
ज्ञानावरण	८	४	द्रव्यार्थिक नय	१	६
ज्ञानविनय	९	२३	द्रव्य	५	२९
ज्ञान	१०	९	द्रव्येन्द्रिय	२	१७
तदाहृतादान	७	१७	द्रव्य	५	२९
तदुभय	९	२२	द्रव्य विशेष	५	३९
तन्मनोहरांग निरीक्षण	७	७	द्रव्यसंवर	९	९
तप	९	२२	दातृविशेष	७	३९
तपस्वी	९	२४	दानान्तराय आदि	८	१३
ताप	६	११	दान	७	३८
तिर्यञ्च	४	२७	दासीदास-प्रमाणातिक्रम	७	२९
तिर्यगव्यतिक्रम	७	३७	दिग्व्रत	७	२१टि
तीव्रभाव	६	६	दुःप्रमृष्ट निक्षेपाधिकरण	६	९
तीर्थंकरत्व	८	११	दुःख	६	११
तीर्थ	१०	९	दुःश्रुति	७	२१
तृषा परीषहजय	९	९	दुःस्वर	८	११
तृणास्पर्श परीषहजय	९	९	दुर्भग	८	११
तैजस शरीर	२	३६	दुःपक्वाहार	७	३५
त्रस	२	१४	देव	४	३
त्रस	८	१	देवका अवर्णवाद	६	११
त्रायस्त्रिश	४	४	धन धान्य प्रमाणातिक्रम	७	२९
दर्शनोपयोग	२	९टि.	धर्मका अवर्णवाद	६	१३
दर्शन क्रिया	६	५	धर्म	९	२
दर्शनविशुद्धि	६	२४	धर्मानुप्रेक्षा	९	७
दर्शनावरण	८	४	धर्मोपदेश	९	२५
दर्शनविनय	९	२३	धारणा	१	१५
दंशमशक परीषहजय	२	९	ध्यान	९	२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
ध्यान	९	२७	निर्माण	८	११
ध्रुव	१	१६	निर्वृत्यपर्याप्तिक	८	११टि
ध्रौव्य	५	३१	निर्जरानुप्रेक्षा	९	७
नय	१	५	निषद्या परीषहजय	९	७
नपुँसकवेद	८	९	निदान आर्तध्यान	९	३१
नरकायु	८	१०	निर्ग्रन्थ	९	४६
नरकगत्यानुपूर्व्य आदि	८	११	नीचगोत्र	८	१२
नाम	१	५	नैगम नय	१	३३
नाम	८	४	न्यासापहार	७	२४
नाराच संहनन	८	११	न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान	८	११
नग्न्य परीषहजय	९	९	परोक्षप्रमाण	१	६
निसर्गज सम्यग्दर्शन	१	३	परिणाम	५	२२
निर्जरा	१	४	परिणाम पर्याय	५	४२
निक्षेप	१	५	परिदेयन	६	११
निर्देश	१	७	परोपरोधाकरण	७	६
निःसृत	१	१६	परिग्रह	७	१७
निवृत्त	२	१०	परिग्रहपरिमाणाणुव्रत	७	२०
निश्चय कालद्रव्य	५	४०	परविवाहकरण	७	२८
निसर्ग क्रिया	६	५	परिगृहीतेत्वरिकागमन	७	२८
निर्वर्तना	६	९	परव्यपदेश	७	३६
निक्षेप	६	९	परघात	८	११
निसर्ग	६	९	परिषहजय	९	२
निह्नव	६	१०	परिहारविशुद्धि	९	१८
निदान शल्य	६	१८	परिहार	९	२२
निदान	६	३७	परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
निद्रा	८	७	परत्वापरत्व	५	२२
निद्रानिद्रा	८	७	पर्याप्तक	८	११टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
पर्याप्ति नामकर्म	८	११	प्रतिसेवना कुशील	९	४६
पर्याय	५	३२	प्रत्येकबुद्धबोधित	१०	९
पर्यायार्थिक नय	१	६	परिषद	४	४
प्रमाण	१	५	पाप	६	३
प्रत्यक्ष प्रमाण	१	४	पारितापकी क्रिया	६	५
प्रकीर्णक	४	४	पारिग्रहिकी क्रिया	६	५
प्रवीचार	४	७	पापोपदेश	५	२१टि
प्रदेश	५	८	पात्रविशेष	६	३९
प्रदोष	६	१०	प्रायश्चित	९	२०
प्रवचन भक्ति	६	२४	प्रयोग क्रिया	६	५
प्रवचन वत्सलत्व	६	२४	प्रादोषिकी क्रिया	६	५
प्रमोद	७	११	पारितापिकी क्रिया	६	५
प्रमादचर्या	७	२१	प्राणातिपातिकी क्रिया	६	५
प्रतिरुपक व्यवहार	७	२७	पारिग्रहवी क्रिया	६	५
प्रमाद	८	१	प्रारम्भ क्रिया	६	५
प्रकृतिबन्ध	८	३	पुंवेद	८	९
प्रदेशबन्ध	८	३	पुद्गल	५	२२
प्रतिजीवि गुण	८	४	पुद्गलक्षेप	७	३१
प्रचला	८	७	पुण्य	६	३
प्रचलाप्रचला	८	७	पुरस्कार	९	५
प्रत्या०क्रो०मा०	८	९	पुलाक	९	४६
प्रत्येक शरीर	८	११	पूर्वरतानुस्मरण योग	७	७
प्रदेशबन्ध	९	२४	पृथक्त्ववितर्क	९	४२
प्रज्ञापरिषहजय	९	९	प्रेक्ष्यप्रयोग	७	३१
प्रतिक्रमण	९	२२	पोत	२	२३
प्रच्छना	९	२५	प्रोषधोपवास	७	३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
वकुश	९	४६	भोग	७	२१टि
बन्ध	१	४	मतिज्ञान	१	९
बन्ध	५	३३	मति	१	१३
बन्ध	७	२५	मतिज्ञानावरण	८	६
बन्ध तत्व	८	२	मन्दभाव	६	६
बन्धन	८	११	मनोनिसर्ग	६	१०
बहु	१	१६	मनोवाग्गुप्ति	७	८
बहुविध	१	१६	मनोयोग दुष्प्राणिधान	७	३८
बहुश्रुतभक्ति	६	२४	मनःपर्ययज्ञान	१	९
बादर	८	११	मनःपर्ययज्ञानवरण	८	६
बालताप	६	१२	मनोज्ञ	९	२४
बाह्योपधि व्युत्सर्ग	९	२६	मरणाशंसा	७	३७
बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा	९	७	मलपरीषहजय	७	९
भक्तपानसंयोग	६	९	महाव्रत	७	२
भय	७	९	मायाक्रिया	६	५
भयप्रत्यय	१	२१	मात्सर्य	६	२४
भाव	१	५	मार्ग प्रभावना	७	२४
भाव	१	८	माध्यस्थ्य	७	११
भावेन्द्रिय	२	१८	मायाशल्य	७	१८
भावना	७	३	मात्सर्य	७	२६
भावसंवर	९	१	मिथ्यात्व क्रिया	६	५
भाषासमिति	९	५	मिथ्यादर्शन क्रिया	६	५
भीरुत्व प्रत्याख्यान	७	५	मिथ्यात्वशल्य	७	१८
भूतव्रत्यनुकम्पा	६	११	मिथ्योपदेश	७	२६
भैक्ष्यशुद्धि	७	१६	मिथ्यादर्शन	८	१
भोगभूमि	३	टि०	मिथ्यात्वप्रकृति	८	९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र
मुक्त	२	१०
मुहूर्त	८	१८टि.
मूलगुणनिर्वर्तना	६	९
मूर्च्छा	७	१७
मृषानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
मन्त्री	७	११
मोक्ष	१	४
मोक्ष	१०	२
मोहनीय	८	४
मौखर्य	७	३२
म्लेच्छ	३	३६
यथाख्यात चरित्र	८	९
यथाख्यात चारित्र	९	१८
यशः कीर्ति	९	११
याचना परीषहजय	९	९
योग	६	१३
योग	८	१
योग संक्रान्ति	९	४
रति	८	९
रस	८	११
रस परित्याग	९	१९
रहोभ्याख्यान	७	२६
रुपानुपात	७	३९
रोग परीषहजय	९	९
लब्धि	२	१८
लब्धि	२	४९
लब्ध्यपर्याप्तक	८	११टि.
लिङ्ग	१०	९
लेश्या	२	२टि.
लोकपाल	४	४
लोकानुप्रेक्षा	९	५
लोभ प्रत्याख्यान	७	५
लौकान्तिक देव	४	२४
वर्धमान	१	२१
वर्तना	५	२२
वचन योग	६	१
वज्रर्वृषभनाराच संहनन	८	११
वज्रनाराच संहनन	८	११
वध	८	११
व्रत	७	१
वध	७	२५
वर्ण	८	११
वाङ्निसर्ग	६	९
वाग्गुप्ति	७	४
वामन संस्थान	८	११
वाग्योगदुष्प्रणिधान	८	३३
वाचना	९	२५
विधान	१	७
विपुलमति	१	२३
विग्रहगति	२	१
विग्रहवती	२	२७
निवृतयोनि	२	३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
विमान	४	१६	व्यवहारनय	१	३३
विदारणक्रिया	६	५	व्यय	५	३०
विसंवादन	६	२२	व्युत्सर्ग	९	२०
विनयसंपन्नता	६	२४	व्युत्सर्ग	९	२२
निर्मोचितावास	६	७	व्युपरतक्रियानिवर्ति	९	४३
विचिकित्सा	७	२३	व्यञ्जनसंक्रान्ति	९	४४
विनय	९	२९	शब्दनय	१	३३
विवेक	९	२२	शक्ति त्याग	६	२४
विपाकविचय	९	३६	शक्तिस्तप	६	२४
विरुद्ध राज्यातिक्रम	९	२५	शल्य	७	१८
विधिविशेष	९	३९	शब्दानुपात	८	३१
विपरीत मिथ्यात्व	८	१	शरीर नामकर्म	८	११
विहायोगति	८	११	शय्यापरीषहजय	९	९
विविक्त शय्यासन	९	१९	शङ्का	७	३३
वीर्यभाव	६	६	शिक्षाव्रत	७	२१टि.
वीचार	९	४४	शीलव्रतेष्वनतिचार	६	२४
वृत्तिपरिसंख्यान	९	१९	शीतपरीषहजय	९	९
वृष्येष्टरसत्याग	७	७	शुभोपयोग	६	३
वेदनीय कर्म	८	४	शून्यागारवास	७	६
वेदनाजन्य आर्तध्यान	९	३२	शैक्ष्य	९	२४
वैक्रियिक शरीर	२	३६	शोक	६	११
वैमानिक	४	१६	शोक	८	९
वैयावृत्यकरण	६	४२	शौच	६	१२
वैयावृत्त	९	२०	श्रुत	१	९
वैनयिक मिथ्यात्व	८	१	श्रुतका अवर्णवाद	६	१३
व्यञ्जनावग्रह	१	१८	श्रुतज्ञानावरण	८	६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
श्रेणी	२	१५	सराग संयमादियोग	६	१२
सम्यग्ज्ञान	१	१	संघ का अवर्णवाद	६	१३
सम्यक्चारित्र	१	१	संवेग	६	२४
सम्यग्दर्शन	१	२	सधर्माविसम्वाद	७	६
संवर	१	४	सत्याणुव्रत	७	२०
सत्	१	८	सल्लेखना	७	२२
संज्ञा	१	१३	सचित्ताहार	७	३५
संग्रहनय	१३	३	सचित्त सम्बन्धाहार	७	३५
समभिरुढ नय	१	३३	सचित्त सम्मिश्राहार	७	३५
संयमासंयम	२	३३	सचित निक्षेप	७	३६
संसारी	२	१०	संशय मिथ्यात्व	८	१
समनस्क	२	११	सद्वेद्य	८	८
संज्ञा	२	१४	सम्यग्मिथ्यात्व	८	९
सम्मूर्च्छन जन्म	२	३१	संज्वलमक्रो.मा.मालोभ.	८	९
सचित्तयोनि	२	३२	संघात	८	११
संवृत्तयोनी	२	३२	संस्थान	८	११
समुद्धत	२	१६टि.	समचतुरस्त्र संस्थान	८	११
समय	५	४४	संहनन	८	११
सम्यक्त्व क्रिया	६	५	सविपाकनिर्जरा	८	२३
समादान क्रिया	३	५	संवर	९	१
सत्	५	३०	समिति	९	१
समन्तानुपात क्रिया	६	५	संसारानुप्रेक्षा	९	७
समरम्भ	६	८	संवरानुप्रेक्षा	९	७
समारम्भ	६	८	सत्काम्पुरस्कारपरीशहजय	९	९
सहसा निक्षेपाधिकरण	६	९	सत्कार	९	९
संयोग निक्षपाधिकरण	६	९	संघ	९	२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्द	अध्याय	सूत्र	शब्द	अध्याय	सूत्र
संस्थान	९	३६	स्तेय-चोरी	७	१५
संख्या	१०	९	स्तेनप्रयोग	७	३७
साधन	१	७	स्मृत्यन्तरायध्यान	७	३०
सामानिक	४	४	स्मृत्यनुपस्थान	७	३३
साम्परायिक आस्रव	६	४	स्मृत्यनुपस्थान	७	३४
साधुसमाधि	६	२४	स्थितिबन्ध	८	३
सामायिक	७	२१	स्थानगृद्धि	८	७
साकार मन्त्रभेद	७	२६	स्त्रीवेद	८	९
साधारण शरीर	८	११	स्वरुपाचरण चारित्र	८	९
सामायिक	९	१८	स्वाति संस्थान	८	११
साधु	९	२४	स्पर्श	८	११
सुखानुबन्ध	७	३७	स्थावर नामकर्म	८	११
सूभग	८	११	स्थिर	८	११
सुस्वर	८	११	स्त्रीपरीशहजय	९	९
सूक्ष्म	८	११	स्वाध्याय	९	२०
सूक्ष्मसाम्पराय	८	२८	स्तेयानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
स्थापना	१	५	स्नातक	९	४३
स्वामित्व	१	७	हास्य प्रत्याख्यान	७	५
स्थिति	१	७	हास्य	८	९
स्पर्शन	१	८	हिरण्यसुवर्णप्रमाणातिक्रम	७	२९
स्मृति	१	१३	हिंसा	७	१३
स्थावर	२	१३	हिंसादान	७	२१
स्कन्ध	५	२५	हिंसानन्दी रौद्रध्यान	९	३५
स्पर्शन क्रिया	६	५	हीनाधिकमानोन्मान	७	३७
स्वहस्त्रत क्रिया	६	५	हीयमान अवधि	१	२१
स्त्रीरागकथा श्रवणत्याग	७	७	हुण्डक संस्थान	८	११
स्वशरीरसंस्कार त्याग	७	७			

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नपत्र

दानवीर माणिकचन्द दि. जैन परीक्षालय-बम्बई

(समय ३ घण्टे) मोक्षशास्त्र (पूर्णांक १००)

प्र. १- *निम्नलिखित ५ सूत्रोंका स्पष्ट अर्थ लिखिये।* २०

१-तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।

२-ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः।

३-तदभावाव्ययं नित्यम्।

४-तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।

५-तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।

६-तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।

प्र. २- *निम्नलिखित में से १० शब्दों की परिभाषा समझाकर लिखिये।* २०

अभिनिबोध, अनिःसृत, आहारक शरीर, अभियोग, आसादन, अपायावद्यदर्शनम्, अपरिगृहीतेत्वरिका गमन, अप्रत्याख्यानावरण, अदर्शन, आम्नाय, अपायविचय।

प्र. ३- *४, ७, ११, १३ वें स्वर्गोमें रहनेवाले देवोंकी जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर, तुम्हारे भाव जन्म शरीर, संस्थान व संहनन, कितने २ कौन कौन होते हैं स्पष्ट समझाकर लिखिये।* २०

प्र. ४- *किन्ही ५ के उत्तर समझाकर लिखिये।* २०

१- अनाहारकका लक्षण लिखें, जाब अनाहारक कबतक क्यों रहता है लिखें।

२- देवोंमें प्रवीचार कहांतक कैसे २ सम्भव है ? व कहां तक सम्भव नहीं हैं।

३- रौद्रध्यान का लक्षण लिखें, इसके स्वामी कौन२ हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४- परीषहका लक्षण लिखें, परीषह क्यों सहन की जाती हैं लिखिये।

५- सप्तनयोंपर या सम्यग्ज्ञान पर दो पृष्ठों पर एक लेख लिखिये।

अथवा

जहां तुम रहते हो उस लोकका नकशा खींचकर स्वर्ग-नरक बनाकर, प्रथम नरकके कितने भाग होते हैं और उनमें कौन कौन रहते है ? स्पष्ट लिखें। २०

प्रश्नपत्र

भा. दि. जैन महासभा परीक्षाबोर्ड

मोक्षशास्त्र पूर्ण

(समयो होरात्रयम्) प्रवेशिका तृतीय खण्ड (पूर्णांक १००

प्र.१- *किन्हीं ८ शब्दोंकी परिभाषा लिखिये।* २०

संज्ञा, संग्रहनय, संयमासंयम, सम्मूर्च्छनजन्म, संघात, साकारमंत्रभेद, संहनन, संस्थानविचय, सूक्ष्म साम्पराय चारित्र, सूक्ष्म क्रियाप्रतिपाति ध्यान।

प्र.२- *किन्हीं ५ सूत्रोंका अर्थ करो।* २०

(च) परतः परतः पूर्वापूर्वानन्तरा।

(छ) भेद संघातेभ्य उत्पद्यन्ते।

(ज) परात्मनिन्दा प्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनद्भावन च नीचैर्गोत्रस्य।

(झ) हिंसादिष्विहामुत्रापायवद्य दर्शनम्।

(व) विपरीत मनोज्ञस्य।

(स) वीचारोऽर्थ व्यञ्जनयोग संक्रान्तिः।

(ह) एकाश्रये सवितर्क वीचारे पूर्वे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्र.३- घातियां कर्मोंकी, तथा ३-६-१०-१४ वें स्वर्गमें रहनेवाले देवों की जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर वैमानिक देवोंमें हीनामित्रताके कारण ससत्र लिखो।

प्र.४- अचौर्याणुव्रतकी भावनाएँ व अनर्थदण्डव्रत के अतिचार लिखकर, परमाणुओंमें बन्ध होने के कौन कौन कारण हैं सप्रमाण लिखिये।

प्र.५- किसी एक विषय पर दो पेजका निबंध लिखिये।

सात तत्व अथवा सम्यक्चारित्र।

अथवा

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका

प्र.१- मलयाचरण का अर्थ लिखकर, द्वीन्द्रिय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवके कितने कितने व कौन कौन शरीर, पर्याप्ति व प्राण होते हैं लिखो।

प्र.२- कर्म किसे कहते हैं, वे कितने व कौन कौन हैं, उन सबकी जघन्योत्कृष्ट स्थिति लिखकर सागर व अर्द्धपल्य की परिभाषा समझाओ।

प्र.३- किन्ही ८ शब्दोंके स्वरुप लिखिये।

अनात्ममृत लक्षण, आगम प्रमाण, अस्तित्वगुण, अन्यात्याभाष, अवाय, अर्धनाराच संहनन, अपकर्षण, अविरत, आभ्यान्तर निर्वृति, अप्रतिष्ठित, प्रत्येक।

प्र.४- निम्नलिखित प्रश्नोंके उत्तर दीजिये।

(१) तीर्थंकर पदवीधारी पुरुष कहां२ जन्म लेते हैं ?

(२) अस्थिकाय कौन कौन द्रव्य हैं व क्यों हैं ?

(३) आकाशमें गमन करना, रेलगाड़ीमें बैठना, कमरेमें स्थान मिलना, इनमें किन-किन द्रव्योंकी सहायता मिलती है, स्पष्ट लिखो।

(४) निर्वृत्यपर्याप्तक व लब्ध्यपर्याप्तक जीव कब और क्यों होते हैं? उदाहरण देकर लिखो।

(५) कल्पातीत किसके भेद हैं। खुलासा लिखो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्र.५- किसी एक विषय पर दो पेज में एक लेख लिखो। २०
(१) हेत्वाभास (२) सप्तनय।

प्रश्नपत्र

श्री भा० दि० जैन महासभा परीक्षाबोर्ड

(समय ३ घण्टे) मोक्षशास्त्र (पूर्वार्द्ध) (पूर्णांक १००)

सूचना- छः प्रश्नोंमेंसे कोई पांच प्रश्न हल कीजिये, सबके अंक समान है।

प्र.१. संसारसे मुक्ति किस प्रकार हो सकती है? जीवका स्वतत्व क्या है? नाम गिनाकर स्वरुप बताइये। गर्भ समूर्च्छन और उपपाद जन्म किन प्राणियोंके होते हैं। एक गतिसे दूसरी गतिमें कौन ले जाता है। कुल भूमियां कितनी हैं और वे किनके आश्रित हैं।

प्र.२. प्रमाण, नैगमनय, स्पर्शन, लेश्या, उपभोग, वर्तना, द्रव्य, गुण तत्व और मोक्ष इनसे आप क्या समझते हैं।

प्र.३. निम्नांकितोंमें अन्तर बताइये-
नय-निक्षेप, मति-कुमति, द्रव्यैन्द्रिय-भावेन्द्रिय, मतिज्ञान-श्रुतज्ञान, चिन्ता-अभिनिबोध, संशय-ईहा, लब्धि-उपयोग।

प्र.४. आधुनिक युगमें दुःखोंका कारण बताकर विश्वशांति धर्मके द्वारा किस प्रकार हो सकती है, इस पर निबन्धके रुपमें प्रकाश डालिये।

प्र.५. पुद्गलके उपकार और प्रदेश संख्या बताकर लौकांतिक देव कहां रहते हैं और उनकी विशेषता क्या है, लिखिये। तैजस शरीर और कार्मण शरीर किसे कहते हैं, वे किनके होते हैं?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्र.६. *पांचवें नरक और आठवें स्वर्गमें कितनी जघन्योत्कृष्ट आयु हैं। तीसरे क्षेत्र, पर्वत और तालाबका नाम तथा वहां रहनेवाली देवी और वहांसे निकलनेवाली नदियोंके नाम बताइये।*

प्रश्नपत्र

(समय ३ घण्टे) मोक्षशास्त्र (उतरार्ध) (पूर्णाङ्क १००)

नोट- निम्नांकितोंमेंसे कोई भी पांच प्रश्न कीजिये। सभी प्रश्नोंके अङ्क समान है।

प्र.१. *जबकि सम्यग्दर्शन मोक्षका मार्ग है, तब उसे देव आयुका कारण क्यों कहा? सोलहकारण भावनाओंके नाम लिखकर समझाइये कि मिथ्यादृष्टि जीव विनयसम्पन्नता आदि पन्द्रह भावनाओंका पालन कर तीर्थंकर प्रकृतिका आश्रव कर सकता है? कारण सहित लिखिये।*

प्र.२. *हिंसादि पंच पापोंकी अहिंसा आदि पांच अणुव्रतोंकी व्याख्या कीजिये। अणुव्रतोंके सहायक सात शीलके नाम लिखकर समझाइये कि वे अणुव्रतोंके पालनमें किस प्रकार सहायक है?*

प्र.३. *दानका लक्षण पाठ्यपुस्तकमें आये सूत्र द्वारा स्पष्ट कीजिये व समझाइये कि उस दानमें किन किन बातोंकी विशेषतासे विशेषता आती है।*

प्र.४. *पुण्य और पापकी व्याख्या कर बताईये कि पुण्य प्रकृतियां एवं पाप प्रकृतियां कितनी व कौन कौनसी हैं ? सामायिक व स्वाध्याय पर तुलनात्मक विवेचन कर स्वाध्यायकी उपयोगिता वर्तमानमें क्यों अधिक मानी जाती है, संयुक्तिक विवेचन कीजिये।*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्र.५. *निम्नांकितोंमें किसी एक पर निबन्ध रचना कीजियेः-*
(१) मोक्षशास्त्रकी जीवनमें उपयोगिता (२) जैनधर्म की विशेषता। (३) भौतिक विज्ञान और आत्मज्ञान।

प्र.६. *निम्नांकितोंमें अन्तर प्रदर्शित कीजिए-*
मोक्षमार्ग-मोक्ष, भव्य-अभव्य, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व, तत्व-द्रव्य, कल्पोपपन्न-कल्पातीत, नय-निक्षेप।

प्रश्नपत्र

अ० भा० जैन परिषद परीक्षा बोर्ड

(समय ३ घण्टे) मोक्षशास्त्र पूर्वार्द्ध (पूर्णाङ्क १००)

नोट- कोईभी पाँच प्रश्न कीजिए।

प्र.१. *ग्रन्थकारका नाम लिखकर उसका जीवन परिचय दीजिए।*

प्र.२. *जम्बूद्वीपका चित्र खींचकर इसमें समस्त क्षेत्रोंको अङ्कित कीजिए।*

प्र.३. *मोक्षमार्गके स्वरुपकी व्याख्या कीजिये।*

प्र.४. *प्रमाण और नय से क्या समझते हो? इनकी स्पष्ट व्याख्या कीजिए।*

प्र.५. *"तत्वार्थश्रद्धानम् सम्यग्दर्शनम्" का अर्थ स्पष्ट कीजिये तथा सम्यग्दर्शनके महत्व पर प्रकाश डालिये।*

प्र.६. *आचार्य कुन्दकुन्द अथवा चामुण्डरायका जीवन परिचय दीजिये।*

प्र.७. *देव कितने प्रकारके होते है? लोकान्तिक देवोंमें अन्य देवोंकी अपेक्षा क्या विशेषताएँ हैं ?*

प्र.८. *द्रव्यका अर्थ लिखकर उसके भेद-प्रभेदोंका वर्णन*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कीजिये तथा यह भी बतालाइये कि स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओंकी बन्धकी प्रक्रियाका क्या स्वरूप है?

(समय ३ घण्टे) मोक्षशास्त्र पूर्ण (पूर्णाङ्क १००)

परीक्षक डॉ० राजकुमार जैन, एम० ए०, पी-एच० डी०

नोट- कोईसे पांच प्रश्न कीजिए।

१. सातों तत्वोंके नाम लिखकर उनकी परिभाषा लिखिए।

२. कर्म किसे कहते है? इनके नाम लिखो तथा यह भी बताओ कि ज्ञानावरण और अन्तराय कर्मके बन्धके क्या कारण हैं?

३. देवगति, मनुष्यगति तथा तीर्थंकर प्रकृतिके बन्धके कारण लिखो।

४. समिति किसे कहते हैं? समितिके भेद लिखकर यह बतलाईये कि दैनिक जीवनमें उनका क्या महत्त्व है?

५. व्रतोंके नाम लिखकर ब्रह्मचर्य व्रतपर प्रकाश डालिये।

६. सम्यग्चारित्रसे क्या समझते हो? समझाकर लिखिए।

७. निम्नलिखितमेंसे किसी एक पर निबन्ध लिखिए।

(अ) सम्यग्दर्शनका महत्त्व।

(ब) आत्मविकासकी दृष्टिसे मोक्षशास्त्रका मूल्याङ्कन।

(स) जैन धर्मकी विशेषताएँ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त विद्वत् परिषद साहित्य

विमलज्ञान प्रबोधिनी टीका	६०)
मोक्षशास्त्र-विमल प्रश्नोत्तरी टीका	१००)
शान्तिनाथ पुराण	६०)
नेमिनाथ पुराण	५०)
हनुमान चरित्र	४०)
भरतेश वैभव	१००)
पुण्यास्त्रव कथाकोष	१००)
जिनदत्त चरित्र	२५)
नागकुमार चरित्र	४०)
पार्श्व चरित्र	५५)
न्याय दीपिका	६५)
परीक्षा मुख	४०)
अनुत्तर यात्रा	२५)
प्रशान्त वाणी	४०)
भक्तामर प्रश्नोत्तर	२०)
कल्याण मंदिर विधान	४०)
अनेकान्त बृहद् जिनवाणी	१००)
सम्मेद शिखर विधान	१०)
रत्नकरण्ड श्रावकाचार-प्र.टीका	२५)
आत्मानुशासन	४०)
सुशीला उपन्यास	४०)
श्रेणिक चरित्र	१००)
णमोकार मंत्र कल्प	२५)
नित्य पाठावलि	१६)
जैन सिद्धान्त प्रवेशिका	२०)
अष्टपाहुड	१००)
मूलाचार	१५०)
लघु तत्त्वस्फोट	७०)
रयणसागर	४०)
पञ्चास्तिकाय	१५)
प्रद्युम्नकुमार चरित्र	१००)
मल्लिनाथ पुराण	३५)
पांडव पुराण	१४०)
चौबीसी पुराण	६५)
महावीर पुराण	६०)
सुभौम चक्रवर्ती चरित्र	२०)
धर्म परीक्षा	७२)
क्षत्र-चूडामणि	४५)
आलाप-पद्धति	२५)
चौबीस ठाणा	२०)
मंदिर	२५)
अलौकिक दर्पण	१५)
शांतिविधान (संस्कृत-हिन्दी)	२०)
ऋषिमंडल विधान	३०)
भक्तामर विधान	२०)
सम्मेद शिखर माहात्म्य	१००)
जैन शासन	८०)
आराधना कथाकोश	४०)
भावत्रय फलदर्शी	३५)
मदन युद्ध	२०)
समर्पण (आरती एवं स्तुति)	२०)
तत्त्वानुशासन	२५)
जम्बूस्वामी चरित्र	४०)
वरांग चरित्र	१२०)
रत्नाकरकी लहरें	२५०)
सागर धर्मामृत	६०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अमरसेन चरयू	५०)	छहढाला	२०)
धर्ममार्गसार	५०)	ध्यान सुत्राणि	४०)
पञ्चस्तोत्र	५०)	इष्टोपदेश	२५)
समाधितंत्र	२०)	द्रव्य संग्रह	१५)
लघुपञ्च स्तोत्र	२०)	रत्नकरण्ड श्रावकाचार	५०)
स्वयंभू स्तोत्र	५०)	जीवक चिन्तामणि	५०)
प्रमेय रत्नमाला	५०)	कल्याण मंदिर विधान	४०)

कषायपाहुड़--(जयधवल) भाग १ से १६ (मू. ४०००)

वरांग चरित्र १००) **सत्यार्थ दर्पण**-हीरालाल शास्त्री १५)

पुष्पांजली पूजन संग्रह जिनवाणी संग्रह-- मू. १००)

आदिनाथ स्तोत्र--स्व. पं. हेमराज कृत, मू. १०)

पूजन पाठ प्रदीप--हीरालाल जैन कौशल, मू. ४२)

नित्यम नियम पूजन, चतुर्विंशति जिनपूजा, तीर्थक्षेत्र पूजन व स्तोत्र संग्रह--(जयपुर) मू. ६०)

पू. आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमतीमाताजी द्वारा लिखित पुस्तक

सर्वतोभद्र विधान	१००)	सती अंजना	१०)
मण्डल विधान एवं हवनविधि	२५)	प्रतिज्ञा	१०)
नियमसार हिन्दी टीका	१००)	कल्पद्रुम विधान	८०)
तीनलोक विधान	८०)	त्रैलोक्य विधान	५०)
तीस चौबीसी विधान	५०)	पंचमेरु विधान	१५)
आत्माकी खोज	१०)	जम्बूद्वीप	१०)
बाल विकास भाग-१	१०)	बाल विकास भाग-२	८)
बाल विकास भाग-३	१०)	बाल विकास भाग-४	१५)
धरतीके देवता	१०)	व्रत विधि एवं पूजा	१०)
इन्द्रध्वज विधान	७०)	पंचपरमेष्ठी विधान	१२)
रत्नकरण्ड पद्यावली	१५)	ऋषिमंडल पूजा विधान	१२)
शांतिनाथ पूजा विधान	१२)	सुदर्शन मेरु पूजा	१०)
सोलह कारण भावना	१०)	भगवान ऋषभदेव	१०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकार	१०)	परीक्षा	१०)
कातंत्र व्याकरण	१००)	जिन स्तोत्र संग्रह	६४)
दिगम्बर मुनि	२०)	अभिषेक एवं पूजन	१५)
जैन भूगोल	१०)	आदि ब्रह्मा	१५)
भगवान नेमिनाथ	१०)	मेरी स्मृतियां	१०)
एकांकी नाटक भाग १	१०)	एकांकी नाटक भाग २	१०)
पुरुदेव नाटक	१०)	जैनधर्म	१०)

Jambudeep & Hastinapur -- 10)

जिनगुण सम्पत्तिविधान	१२)	मूलाचार भाग १	१२०)
Jain Geography	15)	मृत्युंजय विधान	१०)
जम्बूद्वीप पूजा	४)	धर्मचक्र विधान	६०)
कुन्दकुन्दका भक्तिराग	१०)	भजन संग्रह	१०)
मातृभक्ति	१०)	आर्यिका रत्नमती	१०)

सुमेरु वंदना २) मूलाचार भा. २) (ज्ञानपीठ प्रकाशन) १२०)

महावीराचार्य १०) भरतबाहुबली चित्रकला (अंग्रेजी) १५)

द्रव्यसंग्रह (पद्यानुवादसहित)१०) भक्तामर मण्डल विधान १५)

Philosopher Mathematicians -- 10)

Philosopher (Liabrary Edition) -- 15)

दशधर्म	१५)	रत्नमती अभिनंदन ग्रंथ	१००)
नियमसार प्राभृत (संस्कत हिन्दी टीका सहित)			१००)
अमृत कलश पद्यावली	१५)	जैन भारती	६४)
जम्बूद्वीप पूजांजलि (जिनवाणी संग्रह)			७५)
गोमटसार जीवकांडसार	१५)	भाव त्रिभंगी	१५)
कर्मकांडसार	१०)	सिद्धचक्र विधान	७०)
चर्चा शतक	१०)	ज्ञानामृत	१००)
अष्टसहस्री भाग १	१५०)	अष्टसहस्री भाग २	१५०)
अष्टसहस्री भाग ३	१५०)	समयसार पूर्वार्ध टीकासहित	१२०)
आ. वीरसागर स्मृति ग्रंथ	१००)	मुनिचर्या	६०)

दिगम्बर जैन पुस्तकालय, गांधीचौक, सुरत - (0261) 2590621

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक ही जगहसे ग्रंथ मंगावे

हमारे यहां धर्म, न्याय ज्योतिष, सिद्धांत, कथा, पुराण षट्खण्डागम, धवल, जयधवलके अतिरिक्त पवित्र काश्मीरीकेशर, दशांग, धूप, अगरबत्ती, कांचकी व चांदीकी मालायें, जनोई, जैन पंचरंगी झंडा, बम्बई (शोलापुर) इन्दौर, दिल्ली तीनों जैन परीक्षालयके पाठ्यक्रमकी पुस्तकें मंगवाकर हमारे लिए सेवाका अवसर दीजिये। ग्राहकोंको संतोषित करना हमारा लक्ष्य है। पर्वके अवसर पर आवश्यक्तानुसार उच्चकोटिके जैन ग्रन्थ रत्न पढ़के मनुष्य जन्मसफल बनाईये। एक पत्र लिखकर सूचीपत्र मुफ्त मंगवाईये।

शैलेश डाह्याभाई कापडिया

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

खपाटिया चकला, गांधीचौक, सूरत ३

: (0261) 2427621

Mob. (0261) 3124727

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org